बुन्देली बसंत

2006



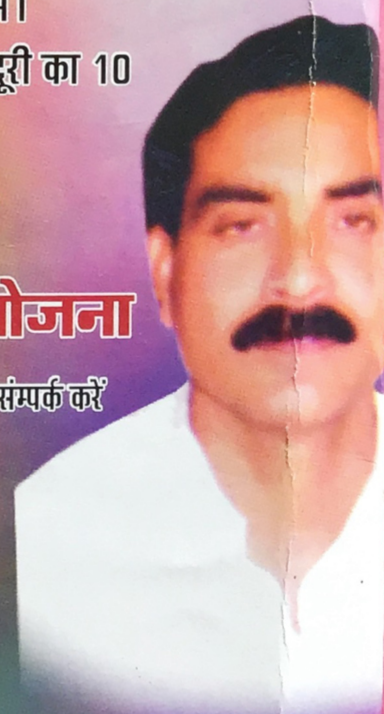
दसवें "बुन्देली उत्सव-2006" के आयोजन

हार्दिक शुभकामनाएं

जिला पंचायत, छतरपुर (म.प्र

अब आपके गांव में हर परिवार को रोजगार की गारं

1. एक परिवार के व्यस्क सदस्यों को एक वर्ष में कुल 100 दिन के श्रम मूलक की गारंटी।
2. ग्राम पंचायत में अपने परिवार का रजिस्ट्रेशन इस योजना में कराएं ।
3. कोई भी परिवार अपनी अवशयकता के अनुरूप स्वयं निर्धारित दिनांक से काम की मांग कर सकता है।
4. इस निर्धारित दिनांक अथवा आवेदन के अगले 15 दिन के भीतर काम की गारंटी, काम नहीं मिलने पर बेरोजगारी भत्ता।
5. एक वार में कम से कम आम तौर पर 14 दिन लगातार काम।
6. काम गांव में पांच किमी के भीतर, दूरी ज्यादा होने पर मजदूरी का 10 प्रतिशत भुगतान अलग से।



योजना का शुभारंभ 2 फरवरी 2006 से

मध्यप्रदेश ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना

ज्यादा जानकारी के लिए अपनी ग्राम पंचायत या जनपद पंचायत के कार्यालय से संम्पर्क करें



रविकांत मिश्रा
मुख्य कार्यपालन अधिकारी

श्रीमती अरुणा राजे

श्रीमती अरुणा राजे
उपाध्यक्ष

वीर सिंह राजपू
अध्यक्ष

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

बुन्देली बसन्त

अंक ७, वर्ष ७, १७ फरवरी २००६

❄

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१२६०, २४१४२६

❄

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : ६४२५४७४६६२

❄

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २०३६२८

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषियाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : ९८२६२८३९८७

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२२२

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  राम कुमार सोनी,
  ग्वालमगरा, छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४३८३९

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर
  ☎ : (०७६८२) २०३२०१

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

- बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

- विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रम

बुन्देली काव्य –

बुन्देली गद्य –

अन्य –

संपादकीय –

लोक मन सहज, सरल व निश्छल होता है। इसमें दुराव–छिपाव व कुंठा नहीं होती है। यह जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। लोकमन से लोककलायें आपूरित होती है। जिससे लोककलाओं में सहजता–सरलता होती है। लोक कलाकार को भी उन तमाम तामझामों की आवश्यकता नहीं होती है, जो एक शास्त्रीय परम्परा के कलाकार को होती है। लोक कलाकार अपनी कला का माध्यम स्थानीय परिवेश में उपलब्ध संसाधनों को बना लेता है। लोक कलाकार अपनी साधना नैसर्गिक प्रकृति की गोद में करता है, उसके प्रशंसक भी अपने आप बनते जाते हैं, उसको विज्ञापनों की या स्टेजों की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु समय बदलने के साथ जीवन में अर्थ का प्रभाव बढ़ गया है जिससे लोक जीवन की दिशा व दशा भी परिवर्तित हो रही है। बुन्देलखण्ड की लोककलाओं पर भी इसका प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। कलासाधकों को अपनी कलाओं के प्रदर्शन के लिए मीडिया का आश्रय लेना पड़ रहा है। लोक कलाओं में व्यावसायिकता आ रही है जिससे ग्रामीण अंचलों के कलाकारों को सही मार्गदर्शन व मंच नहीं मिल पा रहा है, इसी को दृष्टिगत रखकर बुन्देली विकास संस्थान, बसारी ने बुन्देली उत्सव प्रारंभ किया है, जो आप सभी के सहयोग व आशीर्वाद से दसवें पायदान तक पहुंच गया है।

लोक साहित्य की प्रमुख विशेषता उसकी वाचिकता है। लोक साहित्य लोकमुख में रहकर उसी से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। किन्तु कुछ दिनों से यह परम्परा भी क्षरित हो रही है जिससे लोक साहित्य के मूल अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो रहा है। आज इसको संरक्षित करके विश्लेषित करने की आवश्यकता है क्योंकि लोकोपयोगी विचार रूप तो बदलते हैं, मरते नहीं है। लोक सदा से परिवर्तनशील रहा है, जिससे लोक साहित्य में भी परिवर्तन दृष्टव्य होता है। आज बुन्देलखण्ड की लोक साहित्यिक विधाओं के मूल कथानक में वही वीरता, त्याग, परोपकार तथा सहयोग के भाव हैं किन्तु उनके कथानक बदल रहे हैं। विधाओं के स्वरूपों में परिवर्तन आ रहा है, कारण लोकोत्सवों के स्वरूप में बदलाव आ रहा है। आज होरी, वह होरी नहीं रह गई है जो बीस साल पहले थी। आज दिवारी का स्वरूप वह नहीं रह गया है, जो पहले था। पहले के बुड़की के मेले आज बदले हुए रूप में मिलेंगे। परिवर्तन से लोकमन भी प्रभावित होता है। लोकमन का रुझान मूलतः मानवीय तत्वों की ओर सदा रहा है, आज भी है। मान्यताओं मे बदलाव आया है किन्तु स्वभाव में नहीं। आज की बदली राजनैतिक परिस्थितियों में लोक चेतना को अन्याय के खिलाफ लड़ने हेतु झंकृत किया है। लोक अपने

अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा है। शिक्षा व स्वास्थ्य के प्रति वह सचेष्ट हो रहा है। उसे अपने भावी पीढ़ी के निर्माण की चिन्ता है। वह चिन्तित है कि उसके बेटे बेटियों का भविष्य कैसा होगा? इसीलिए वह पेट काटकर भी उन्हें अच्छे विद्यालयों में भेज रहा है। लोक अपने अतीत से प्रेरणा लेकर अपना भविष्य रचता है। बुन्देलखण्ड के अतीत के वे पन्ने आप भी हम सभी को प्रेरक का काम करते हैं, जिन्होंने अन्याय के खिलाफ लड़ना सिखाया है।

लोक साहित्य और लोक संस्कृति में अनन्य सम्बंध है। लोक साहित्य ही लोक संस्कृति को पुष्ट करके पल्लवित करने में सहायक होता है। लोक संस्कृति से ही भारतीय संस्कृति पुष्ट होती है क्योंकि भारत गांवों में बसता है और लोक भी गांवों में रचता–बसता है। इस सम्बंध डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की ये पंक्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे लिखते हैं कि ''लोकसंस्कृति भारतीय संस्कृति की जड़ है। जिस तरह जड़ पूरे वृक्ष और उसके हर अंग को पुष्ट करती है उसी तरह लोक संस्कृति से ही भारतीय संस्कृति पल्लवित, पुष्पित और फलित होती है। वस्तुत: राष्ट्र की अन्दरूनी शक्ति है, जो अन्दर ही अन्दर राष्ट्र को मजबूत करती है और अन्तर्राष्ट्रीय तत्व उसके लौह कवच को भेद नहीं पाते।'' अत: हम सबको संजीवनी रूपी लोक संस्कृति के प्राणतत्व से जीवन शक्ति ग्रहण करके अपने जीवन को मानवीय व तरल बनाने के साथ दुखों से लड़ने की क्षमता विकसित करने लायक बनाना चाहिए।

'बुन्देली बसन्त' के इस अंक में हमने इतिहास के उन पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जिनसे हमारी वर्तमान पीढ़ी को सबक मिले। चाहे वह १८४२ का बुन्देली संघर्ष हो, १८५७ में ओरछा राज्य की भूमिका आजादी की लड़ाई के समय की पत्रकारिता, सभी पर विद्वान लेखकों ने खोजपूर्ण आलेख लिखे हैं। विलुप्त होती परम्पराओं पर प्रकाश डालने हेतु भी विविध पहलुओं को उद्घाटित किया गया है। बुन्देली कथाएँ व कविताएँ भी इसकी रचनात्मकता को अभिव्यक्त करती हैं। विद्वान लेखक साथियों से अपेक्षा है कि वे ऐसे अनछुए पहलुओं पर भी कलम चलायें जिनको उद्घाटित करना वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जरूरी हो। जिन विषयों पर लिखा जा चुका है उससे अलग कुछ लिखें तो हम अपनी बुन्देली माता की सही सेवक कहलाने के हकदार होंगे।

प्रस्तुत अंक के बारे में पाठक अपनी प्रतिक्रियाओं से मुझे अवगत कराने का कष्ट करें जिससे भविष्य में सुधार का मार्ग प्रशस्त हो सके।

बहादुरसिंह परमार

बुन्देलखण्ड के इतिहास का अविस्मरणीय अध्याय –

सन् १८४२ का बुन्देली संघर्ष और ब्रिटिश साम्राज्य

– हरगोविन्द तिवारी

यदि हम बुन्देलखण्ड के इतिहास पर नजर डालें तो दृष्टिगोचर होता है कि जब–जब हमारे देश में विदेशी शिकंजे का दबाव बढ़ा तब–तब बुंदेलखंड के निर्भीक, स्वाभिमानी और स्वतंत्रता प्रेमी, देशभक्त बुन्देली वीरों ने विद्रोह और संघर्ष की लहर पैदा करके विदेशी शिकंजे को चूर–चूर करने का भरसक प्रयत्न किया। इसका जीता–जागता उदाहरण है मुगलिया एवं फिरंगी आतंक व अत्याचारपूर्ण विदेशी सत्ता के सबल शिकंजे को हिलाने वाला बुन्देली इतिहास। इसी तारतम्य में ब्रिटिश साम्राज्य कालीन सन् १८४२ ईस्वी में हुए बुन्देला विद्रोह एवं संघर्ष का उल्लेख यहां किया जा रहा है। इस संघर्ष के प्रमुख बुन्देली देशभक्त वीर बुन्देला मधुकरशाह नाराहट, गणेशजू नाराहट, जवाहर सिंह चन्द्रपुर, दीवान पारीक्षित सिंह गिरार, दीवान बहादुर सिंह अभाना, गणेशजू गूढ़ा, दरयाव सिंह गूढ़ा, पंचम सिंह गूढ़ा, धुरमुंगद चंदेरी, अजीत सिंह खुनेसरा, दहलान सिंह मदनपुर, डेलनशाह मदनपुर, नरवर सिंह ढिलवार, दिलावर सिंह ढिलवार, भूप सिंह घोघरी, नरवर सिंह घोघरी, हिरदेशाह हीरापुर, सावंत सिंह हीरापुर, खानजू हीरापुर, गजराज सिंह हीरापुर, रंजोर सिंह सुआतला, अजीत सिंह नादिया, ठा. सरवत सिंह सुजानपुर, ठाकुर शिवराज सिंह देवरी और बृजभूषण पाठक होशंगाबाद इत्यादि महान् पुरुष हुए हैं। जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह एवं संघर्ष करके आजादी पाने के लिए बुंदेली शंखनाद किया और देश की आजादी के लिए अपने प्राणों का बलिदान किया।

सन् १८४२ में ब्रिटिश साम्राज्याधीन कर्नल ओसले द्वारा घोषित राजस्व नीतियों के परिणामस्वरूप यहां के जमींदार, जागीरदार और राजा लोग शोषण का शिकार हो रहे थे। इस शोषण के लिए अंग्रेजों ने दूरदर्शिता एवं चतुराई के साथ–साथ शक्ति से भी काम लिया। शक्ति से काम लेकर अंग्रेजों ने अनेक जमींदारों से उनकी जमीन या तो लगान का भुगतान न करने पर छीन ली या उन्हें राजस्व नीतियों की सुविधाओं से वंचित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य की राजस्व नीति के तहत् अनेक भूमि स्वामियों की भूमि छीन ली गई तथा अनेक भूमि स्वामियों की भूमि कुर्क कर ली गई। साथ ही अनेक भूमि स्वामियों की भूमि पड़ती पड़ी रही। इसके अलावा अनेक जागीरदारों की जागीरें एवं अनेक राजाओं की रियासतें छीन ली गई। ब्रिटिश साम्राज्य की इस प्रक्रिया से बुन्देली वीरों का खून खौल उठा और भारी उथल–पुथल के साथ विद्रोह एवं संघर्ष का वातावरण निर्मित हो गया। तथा देशभक्त बुंदेली वीर अंग्रेजों के प्रति बदले की भावना से उग्र हो उठे और अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ विद्रोह व संघर्ष शुरू कर दिया।

विद्रोह व संघर्ष की शुरुआत नाराहट के जमींदार वीर बुन्देला मधुकरशाह और इनके भाई गणेशजू तथा चंद्रपुर के मालगुजार जवाहर सिंह द्वारा की गई। इन लोगों का अपने–अपने क्षेत्रों में अच्छा खासा प्रभाव था। इन मालगुजारों–जमींदारों पर कर के रूप में एक बड़ी राशि अंग्रेजों द्वारा थोपी गई। जिसका चुकाना इनके लिये असंभव हुआ। तब कर की राशि के भुगतान को लेकर ब्रिटिश साम्राज्याधीन सिविल न्यायालय सागर ने इनके खिलाफ डिग्री जारी कर कुर्की का नोटिस तामील कराते हुए सारी संपत्ति को कुर्क करने की कार्यवाही की। इतना ही नहीं बल्कि इस दौरान कुर्की का नोटिस तामील करने वाले अंग्रेजी प्रशासकीय कर्मचारियों ने इनके साथ अभद्र व्यवहार भी किया। जिसके परिणाम स्वरूप आजादी के वीर दीवाने स्वाभिमानी मधुकरशाह, गणेशजू, एवं जवाहर सिंह ने अंग्रेजी सरकार के आदेशों की खुली अवहेलना करते हुए प्रारंभिक माह अप्रैल १८४२ में अंग्रेजों पर आक्रमण कर उनके विरुद्ध विद्रोह करते हुए संघर्ष शुरू कर दिया। इसी के साथ बुन्देली संघर्ष की लहर यत्र–तत्र–सर्वत्र दौड़ गई। जिसमें अनेक जमींदार एवं भूमि स्वामी बुन्देली वीर शामिल हो गये तथा जगह–जगह अंग्रेजों के विरुद्ध लूटपाट और मारपीट करके ब्रिटिश साम्राज्य के शिकंजे को हिलाना प्रारंभ हुआ। इस दौरान विद्रोही बुंदेली वीरों ने अंग्रेजों पर अचानक छुटपुट हमला करके गुरिल्ला युद्ध का सहारा लिया। तदानुसार वीर बुन्देला मधुकर शाह, गणेशजू एवं जवाहर सिंह ने अपने सशस्त्र साथियों सहित मालथौन पर हमला करके वहां अपना कब्जा कर लिया। इससे कुपित होकर अंग्रेज अधिकारी एम.सी. ओमेनी ने मधुकरशाह एवं गणेशजू के पिता राव विजय बहादुर सिंह को गिरफ्तार कर लिया तथा मधुकरशाह एवं गणेशजू को गिरफ्तार करने के लिये उनके बगीचे में अंग्रेजी सैनिकों ने अपना पड़ाव डाल दिया। तब मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह, विक्रमजीत सिंह, दीवान हीरासिंह, दुर्ग सिंह, राजधर, चन्द्रभान सिंह एवं क्षमाधर अग्निहोत्री इत्यादि ने अपने साथियों सहित मिलकर इस अंग्रेजी सेना पर हमला कर दिया। जिसमें अनेक अंग्रेज सिपाही मारे गये तथा अनेक सिपाही घायल हो गये। जिससे अंग्रेज सैनिकों को वहां से भागने के लिए मजबूर होना पड़ा। तत्पश्चात्, मधुकरशाह, गणेशजू सहित सभी क्रांतिकारी खिमलासा की ओर रवाना हो गये। वहां पहुँच कर क्रांतिकारियों ने लूटमार करके अंग्रेजों और अंग्रेजपरस्त लोगों को मौत के घाट उतार दिया। जिसमें चार व्यक्ति मारे गये और छः लोग घायल हुए। खिमलासा के रामचंद्रराव ने भी यहां हुई लूटमार में क्रांतिकारियों का भरपूर सहयोग किया।

इसके बाद मधुकरशाह, गणेशजू और जवाहर सिंह सहित सभी क्रांतिकारी बड़ा डोंगरा की ओर चले गये। वहां पहुंच कर इन्होंने कई लोगों से संपर्क किया। जिससे काफी लोग इनके साथ शामिल हो गये। फिर इन्होंने विरमखेड़ी एवं शहपुरा आदि ग्रामों में

अनेक वारदातें करके अंग्रेजों एवं अंग्रेजपरस्त लोगों की नींद हराम कर दी। जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों द्वारा इनके विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही शुरू कर दी गई। जिसमें १५ अप्रैल १८४२ को क्षमाधर अग्निहोत्री और उनके साथियों की हत्या हो गई। जिससे समूचा सागर जिला हतप्रभ हो गया। चूंकि क्षमाधर अग्निहोत्री की एक प्रभावशाली मालगुजार थे और वे क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थे तथा क्रांतिकारियों का वे भरपूर सहयोग कर रहे थे। इसलिए उनकी हत्या हो जाने से लोगों को भारी दुख हुआ। इतना ही नहीं बल्कि इसी के साथ–साथ ३० अप्रैल १८४२ को ओमेनी ने अपनी दमनकारी नीति के तहत् मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह इत्यादि को विद्रोही एवं बागी घोषित करने तथा उनकी संपत्ति जब्त करने के साथ–साथ इन क्रांतिकारियों को जिंदा या मुर्दा पकड़ने वाले को इनाम देने का प्रस्ताव भी शासन के समक्ष रख दिया। जिससे सचेत होकर सभी क्रांतिकारी इमझिरा में एकत्रित हुए। यहां पर राव विजय सिंह तथा विक्रमजीत सिंह के मुख्त्यार के अलावा ठा. इन्द्रजीत सिंह दतिया भी शामिल हुए। कुल मिलाकर यहां दो सौ से अधिक क्रांतिकारी एकत्र हुए। इमझिरा में गुप्त मंत्रणा करके मधुकरशाह सहित सब लोग पांडवों की खोह की ओर बढ़ गये। वहां नाराहट के तीन सौ व्यक्ति और इनके साथ शामिल हो गये। इस समय जवाहर सिंह चंद्रपुर में मौजूद थे। चंद्रपुर से जवाहर सिंह का संदेश आने पर मधुकरशाह अपने समस्त साथियों सहित चन्द्रपुर की ओर बढ़े। वहां पहुंचने पर जवाहर सिंह के करीब एक सौ पचास मशालची भी इनके साथ हो गये। फिर सभी क्रांतिकारी मिलकर एक सैनिक टुकड़ी का रूप धारण करके वहां से रवाना हुए तथा पथरिया होते हुए ईसरवारा पहुंच गये। इस दौरान ७ मई १८४२ को बीना नदी के पास अंग्रेजी सैनिकों से इनकी मुठभेड़ हो गई। इस मुठभेड़ में चालीस–पचास क्रांतिकारी मारे गये तथा उन्नीस–बीस बंदी बना लिये गये, पर इनका कोई भी मुखिया नहीं पकड़ा जा सका।

फिर ९ मई को कुंद्रोगांव में करीब दो सौ पचास क्रांतिकारियों का जमाव हुआ। यहाँ पर लेफ्टीनेंट फारगुशन ने नवाब भोपाल की मदद से इन क्रांतिकारियों पर हमला कर दिया। जिसमें क्रांतिकारियों के एक निर्भीक नायक राजधर सहित कई क्रांतिकारी मारे गये और अन्य सभी क्रांतिकारी बचते हुए यहां–वहां भाग निकले। इसी बीच एम.सी. ओमेनी ने केप्टिन मेकिनटोस को यह खबर दी कि नाराहट से करीब ८ मील की दूरी पर स्थित गोना नामक स्थान पर कुछ क्रांतिकारी एकत्रित हैं। केप्टिन मेकिनटोस ने यह खबर पाकर एक सैनिक टुकड़ी तत्काल गोना की ओर रवाना कर दी किंतु अंग्रेजी सैनिकों के वहां पहुंचने के पूर्व ही क्रांतिकारियों ने नाराहट एवं गोना दोनों गांव लूट लिये। इस समय दीवान हीरासिंह मौजूद थे जिन्होंने क्रांतिकारियों का भरपूर सहयोग किया। इसकी जानकारी मिलने पर सी. फ्रेजर ने हीरासिंह को अपनी गिरफ्त में लेना शुरू कर दिया किंतु वे अंग्रेजों की गिरफ्त में आने से बचते रहे। तब अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों के समर्पण हेतु एक योजना बनाई। जिन्होंने अपनी इस योजना के तहत मधुकरशाह एवं गणेशजू को समर्पण हेतु प्रेरित करने के आश्वासन पर २५ मई १८४२ को राव विजय बहादुर सिंह को जेल से छोड़ दिया। साथ ही अपनी इस योजना को फलीभूत करने के लिए सी. फ्रेजर ने हीरा सिंह, धौकल सिंह, बलवंत सिंह एवं राव विजय बहादुर सिंह के मुड़िया गांव के एक पुराने विवाद को भी सुलझा दिया। साथ ही भविष्य में कभी कोई घटना घटित न होने संबंधी एक इकरारनामा भी किया किंतु अंग्रेजों को इसका वांछित लाभ नहीं मिल सका क्योंकि इस समय चिरगांव के अपदस्थ जमींदार क्रांतिकारी गतिविधियों में पूर्णरूपेण संलग्न थे और जैतपुर के अपदस्थ राजा पारीक्षित सिंह इनका भारी सहयोग कर रहे थे। राजा पारीक्षित सिंह के सहयोग से ९ जून १८४२ को बखत सिंह ने पनवारी के शासकीय कोषालय को घेर लिया। वहां अंग्रेज अधिकारी केपमूर के नेतृत्व वाली आठवीं रेजीमेंट की एक कंपनी से बखतसिंह की मुठभेड़ हो गयी। इस मुठभेड़ में बखतसिंह अपने साथियों सहित मारे गये। साथ ही इस मुठभेड़ में अंग्रेजों के भी काफी सैनिक मारे गये और कई लोग घायल हो गये। इसके बाद क्रांतिकारियों की एक आपात बैठक मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह एवं विक्रमजीत सिंह के नेतृत्व में बण्डा तहसील के बरा ग्राम में सम्पन्न हुई। बैठक में तैयार योजना अनुसर बरा ग्राम में हमला बोलकर काफी धन इकट्ठा किया गया। साथ ही कुछ हथियार बंदूकें इत्यादि भी इकट्ठी कीं। जिसमें राजा पन्ना के लोगों ने भी क्रांतिकारियों का भारी सहयोग किया। यह जानकर अंग्रेजों ने राजा पन्ना से संपर्क स्थापित किया और क्रांतिकारी गतिविधियों को रोकने हेतु उनसे आग्रह किया। जिसका अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं मिला।

क्रांतिकारी अपनी गतिविधियों में यथावत संलग्न रहे। जिसके फलस्वरूप १९ जून १८४२ को मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह एवं विक्रमजीत सिंह सहित सभी क्रांतिकारियों और अंग्रेज अफ्सर केप्टिन मेकिनटोस के नेतृत्व वाली फिरंगी सेना के मध्य पंचमनगर में मुठभेड़ हो गई। पंचमनगर की इस मुठभेड़ में करीब १५–२० क्रांतिकारी मारे गये एवं अनेक घायल हो गये। इसमें कई अंग्रेजी सैनिक भी मारे गये और कई घायल भी हो गये। इस घटना से फ्रेजर काफी क्रुद्ध हो गया। क्रुद्ध होकर उसने पंचमनगर में सैन्य शक्ति को खूब बढ़ाया और अपनी स्थिति को मजबूत किया। इसके बावजूद भी क्रांतिकारी गतिविधियां यथावत चलती रहीं। जून के अंतिम सप्ताह में चंद्रपुर एवं खुरई में अनेक घटनायें हुई। इसी समय जवाहर सिंह ने अपने ७० साथियों सहित ग्राम देवरी पर भी आक्रमण कर दिया। जिसमें अनेक अंग्रेजी सैनिक मारे गये और अनेक घायल हो गये। यहां तक कि क्रांतिकारियों ने वहां आग भी लगा दी तथा इसी दौरान बेसरा ग्राम में भी क्रांतिकारियों ने आग लगा दी। जिससे वहां का थानेदार चोकूलाल घबरा गया और सभी अंग्रेजी प्रशासनिक कर्मचारियों में भय व्याप्त हो गया। उन्हें यह शंका भी घिर गई कि यदि क्रांतिकारियों द्वारा मारे गये तो हमारे परिवार वालों का गुजारा कौन करेगा। कर्मचारियों

की इस आशंका को भांपते हुए फ्रेजर ने यह घोषणा कर दी कि मृतक सैनिक के परिवार वालों को शासन द्वारा आजीवन सुविधा प्रदान की जावेगी। फिर भी इसका वांछित लाभ अंग्रेजी शासन को नहीं मिल सका। क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देते हुए ६ जुलाई १८४२ को जवाहर सिंह एवं उनके साथियों ने ब्रिटिश साम्राज्यधीन अभेद्य दुर्ग धामौनी पर आक्रमण कर दिया। क्रांतिकारियों के साथ अनेक घुड़सवार, चुनिन्दा पैदल वीर तथा सत्तर गोलंदाज बंदूकची शामिल थे। इस संघर्ष में जवाहर सिंह सहित सभी क्रांतिकारियों की विजय हुई। यहां से इन्होंने ७७८० रुपयों की संपत्ति ५ अरबी घोड़े तथा काफी अस्त्र–शस्त्र हथिया लिये। धामौनी के बाद क्रांतिकारियों ने बिनेका पर हमला कर दिया। जिसमें शाहगढ़ के राजा बखतबली शाह के भाई लक्ष्मण सिंह भी शामिल थे। चूंकि बिनेका शाहगढ़ राज्य में सम्मिलित था इसलिए शाहगढ़ के राजा बखतबली ने बानपुर राजा मर्दनसिंह के सहयोग से इन लूटपाट करने वालों से धामौनी एवं बिनेका की लूटी हुई संपत्ति को अपने कब्जे में कर लिया। जिसे बाद में ऐन–केन–प्रकारेण अंग्रेजों ने अपने कब्जे में ले लिया। साथ ही १२ जुलाई १८४२ को सी.फ्रेजर ने शाहगढ़ जाकर राजा बखतबली को उनके चाचा अर्जुन सिंह की मृत्यु होने पर शोक संवेदना व्यक्त की तथा उनसे यह आग्रह भी किया कि वे अपने राज्य में क्रांतिकारी गतिविधियों पर रोक लगावें। किंतु अंग्रेजों को इसका वांछित लाभ नहीं मिला। फिर भी उन्होंने ऐसा ही आश्वासन महाराजा छतरपुर एवं बिजावर से भी लिया। इसी के साथ–साथ एम.सी. ओमेनी ने गिरार के दीवान अजीत सिंह एवं उनके छोटे भाई पारीक्षित से भी संपर्क किया। और क्रांतिकारी गतिविधियों को रोकने हेतु उनसे आग्रह किया। किन्तु अंग्रेजों को इससे कोई लाभ नहीं मिल सका। बल्कि पारीक्षित ने १९ जुलाई ४२ को गांव पर हमला बोल दिया। जिसमें एक व्यक्ति मारा गया। इसके बाद पारीक्षित जवाहर सिंह से जा मिले। पारीक्षित के साथ जवाहर सिंह अपने साथियों सहित गिरार आ गये। इसी बीच गिरार पर अंग्रेजों ने हमला कर दिया। इस हमले में जवाहर सिंह का भतीजा जुझार सिंह मारा गया। जिससे क्रांतिकारियों का खून खौलने लगा। क्रांतिकारियों ने भारी आवेश में आकर दुगाहो पर हमला कर दिया। दुगाहों में भारी लूटपाट और मारपीट की। जिससे वहां भारी भय व्याप्त हो गया। तब १४ अगस्त ४२ को एम.सी. ओमेनी दुगाहो जा पहुंचा और वहां जाकर उसने वहां के निवासियों को सांत्वना देते हुए भविष्य में सुरक्षा व्यवस्था के लिये आश्वस्त किया।

किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध यह बुन्देली विद्रोह जोर पकड़ता गया। इसी क्रम में हीरापुर के लोधी राजा हिरदेशाह की विद्रोही गतिविधियों के परिणाम स्वरूप बहरौल में लोधी ठाकुरों ने क्रांतिकारियों की एक बैठक आमंत्रित की। बहरौल गांव के मुखिया मलखान सिंह लोधी थे, उनके सहयोग से क्रांतिकारियों की बैठक संपन्न हुई। जिसमें करीब ढाई–तीन सौ क्रांतिकारी सम्मिलित हुए। मलखान सिंह हीरापुर के लोधी राजा हिरदेशाह से संबंधित थे। तथा वह लोधी परिवार मुहली के मालगुजार केहरीसिंह लोधी से भी संबंधित था। जो कि परस्पर एक–दूसरे के परम सहयोगी थे और क्रांतिकारियों का भरपूर सहयोग कर रहे थे। साथ ही इस बैठक में मदनपुर के गौंड़ राजा डेलनशाह और ढिलवार के गौंड़ मालगुजार दिलावर सिंह और नरवरसिंह भी सम्मिलित थे। तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में ये सभी लोग संलग्न थे। बहरौल की बैठक की खबर जैसे लेफ्टीनेंट हरबर्ट एवं लेफ्टीनेंट राईकेश को मिली तो वह एक बड़ी सैनिक टुकड़ी के साथ बहरौल रवाना हुआ। गांव की सीमा पर कुछ क्रांतिकारियों ने इन्हें रोकने की पूरी कोशिश की। पर यह किसी तरह गांव पहुंचने में सफल हो गये। मगर जब ये दोनों अंग्रेज अधिकारी वहां आपस में विचार–विमर्श कर रहे थे तभी मलखान सिंह ने अपनी हवेली से एक हथगोला फेंका जो कि हरबर्ट को लगा। जिससे वह घायल हो गया तथा मैदान छोड़ने को मजबूर हो गया। मलखान सिंह ने इसके तत्काल बाद ही हवेली खाली की एवं पहाड़ी पर रुके हुए क्रांतिकारियों से जा मिले और वहां से भी लगातार आग के गोले अंग्रेजों पर बरसाते रहे। जिससे अंग्रेजों को वहां से भागने के लिए मजबूर ही नहीं होना पड़ा बल्कि काफी नुकसान भी उठाना पड़ा। पर तत्काल ही वहां एक बड़ी अंग्रेजी सेना जा पहुंची जिससे सैनिक बल बढ़ गया और अंग्रेजों का बहरौल पर कब्जा हो गया। साथ ही अंग्रेजों ने यहां कुछ क्रांतिकारियों को बंदी भी बना लिया। अंग्रेज अधिकारियों को यहां यह खबर भी मिली कि विगत चार महीनों से मलखान सिंह क्रांतिकारियों की भरपूर मदद कर रहा है। और विजोरडांग तथा पंडवा खोह इनकी शरण स्थली है। यह जानकारी अंग्रेजी सेना द्वारा यहां बंदी बनाये गये लोगों ने दी। बंदियों द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार मधुकर शाह, गणेशजू, जवाहर सिंह को भी बैठक में उपस्थिति होना बताया गया।

यहां हुई लड़ाई में करीब १५ विद्रोही मारे गये तथा कुछेक क्रांतिकारी बंदी बना लिये गये। इसी के साथ–साथ यहां अंग्रेजों को भी भारी नुकसान उठाना पड़ा। क्रांतिकारी लोगों की अचानक घटनाओं से अंग्रेजों में भारी भय व्याप्त हो गया और क्रांतिकारी गतिविधियां दिन पर दिन तेज होती गई। जिससे अंग्रेजों में खलबली मच गई क्योंकि ये क्रांतिकारी अंग्रेजों को अनेक जगह शिकस्त दे रहे थे अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबाने हेतु कोई कसर नहीं छोड़ रखी थी। पर इसके बावजूद भी क्रांतिकारियों ने सारी प्रशासनिक मशीनरी को ध्वस्त कर दिया था। जिससे अंग्रेज अधिकारियों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी नीतियों से बुंदेला, लोधी और गौड़ जमींदारों तथा राजाओं एवं अन्य भूमि स्वामियों में अंग्रेजों के प्रति असंतोष दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था। यह विद्रोह चारों ओर दावानल की तरफ फैल रहा था। जिसमें हीरापुर के लोधी राजा हिरदेशाह और मदनपुर के गौड़ राजा डेलनशाह भी सक्रिय होकर क्रांतिकारियों का भरपूर सहयोग कर रहे थे। इन विद्रोही क्रांतिकारियों ने सागर से अधिक सफलता नरसिंहपुर में पायी। इस जिले में

चांवरपाठा क्षेत्र में क्रांतिकारियों को सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई। इस इलाके के सभी भूमि स्वामी एवं जमींदार और राजा लोग, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में फिरंगियों से अनवरत जूझ रहे थे। क्रांतिकारियों ने चांवरपाठा एवं देवरी पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। इन्होंने नर्मदा किनारे स्थित बरमान के नायब तहसीलदार पर गोली चलाई तथा त्रियम्बकराव को वहां का सक्षम अधिकारी तैनात किया। इनको बरमान के अलावा चांवरपाठा का समूचा इलाका सौंपा गया। क्रांतिकारियों ने महाराजपुर एवं सुआतला पर भी अपना अधिकार जमा लिया। सुआतला में ही बुन्देला ठाकुर रंजोर सिंह भी क्रांतिकारियों के साथ इस विद्रोह में शामिल हो गये। इन क्रांतिकारियों ने नर्मदा के घाटों पर भी अपने व्यक्ति चौकसी के लिये तैनात कर दिए।

नर्मदा के बिलथारी घाट पर क्रांतिकारी चिमनलाल, नैनवारघाट पर अमान पटैल, केसलीघाट पर उसी गांव के झब्बू पटेल, बरियाघाट पर बृजभूषण जामदार, सगोरघाट पर खेतसिंह मालगुजार सुआतला, किरपानी घाट एवं राव मोकम सिंह, कोकलाघाट पर बिचवा के मोहन सिंह, झिराघाट पर सुआतला के निरंजन लोधी तथा लुका राही घाट पर चिरगांव के घनश्याम एवं नादी के उज्जवल सिंह के नेतृत्व में सशक्त सैनिकों को तैनात किया गया। क्रांतिकारियों ने नर्मदा के घाटों पर इस तरह की सैनिक टुकड़ियों को इसलिए तैनात किया ताकि अंग्रेजों की सेना सीधे आकर हमला न कर सके। इसके परिणाम स्वरूप अंग्रेज सरकार के कोई भी कर्मचारियों को इन घाटों पर से आने—जाने की छूट नहीं दी गई। साथ ही सभी घाटों पर स्थित नावों को अपने कब्जे में ले लिया तथा अनेक स्थानों को अंग्रेजों से छीन कर वहां अपने पटवारी, नाजिर एवं सरिश्तादार भी नियुक्त कर दिये। उनको यह शर्त रखी गई कि वे अंग्रेजों के बजाय क्रांतिकारियों के वफादार रहेंगे। तथा इसी शर्त पर लगान की वसूली भी करेंगे। नर्मदा घाटों की व्यवस्था एवं अपने कब्जे वाले इलाकों की व्यवस्था करने के बाद बिना गोलावारी एवं संघर्ष किये ही तेंदूखेड़ा पर भी क्रांतिकारियों का कब्जा हो गया। वहां का तहसीलदार देखते ही भाग खड़ा हुआ। इस तरह क्रांतिकारियों का अनेक इलाकों पर कब्जा हो गया।

मालगुजार दिलावर सिंह, नरवर सिंह गौंड़ एवं बृजभूषण पाठक सहित सभी क्रांतिकारियों की एक बड़ी सेना ने होशंगाबाद जिले के ढिलवार पर भी अपना कब्जा कर लिया। इस तरह बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग पर अपना आधिपत्य जमाकर क्रांतिकारियों ने उन्हें स्वतंत्र घोषित कर दिया। क्रांतिकारियों का यह विद्रोह निरंतर चलता रहा। क्रांतिकारियों ने बहादुरी के साथ अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। राजा हिरदेशाह अंग्रेजों के खिलाफ लोगों को विद्रोह के लिए निरंतर उकसा रहे थे। इनके एक नजदीकी रिश्तेदार कटरा बेलखेड़ा के लोधी ठाकुर राजा हिन्दूपत भी इनके साथ विद्रोह में सम्मिलित हो गये। इन्होंने अपने साथ एक तोप गोला बारूद एवं अन्य शस्त्र संग्रह कर सशस्त्र सहयोगियों को एकत्र किया तथा विद्रोही गतिविधियों में संलग्न हो गये। जिससे राजा हिरदेशाह और राजा डेलनशाह ने अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करते हुए अपने जौहर दिखाकर अंग्रेजों को आश्चर्यचकित कर दिया। इस विद्रोह से अंग्रेज बहुत ही भयभीत हो गये एवं फूंक—फूंक कर कदम रखने को मजबूर हो गये। चूंकि हीरापुर के लोधी राजा हिरदेशाह की बिना स्वीकृति के कोई भी व्यक्ति जंगल से लकड़ी नहीं काट सकता था। किंतु जब अंग्रेजों ने हीरापुर के घने जंगलों की कटाई शुरू की तब राजा हिरदेशाह ने इसका कड़ा विरोध किया। मगर अंग्रेजों ने कोई ध्यान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप राजा हिरदेशाह ने गजराजसिंह के सहयोग से गजपुरा की चौकी पर आक्रमण कर दिया। जिसका सामना करने के लिए अंग्रेज अधिकारी ने जबलपुर से एक सैनिक टुकड़ी हीरापुर एवं गजपुरा की ओर भेजी। मगर सैनिक टुकड़ी वहां पहुँचने में काफी विलंब हो गया इससे राजा हिरदेशाह वहां नहीं मिले। वे चांवरपाठा की ओर बढ़ते हुए दमोह जिले में स्थित तेजगढ़ जा पहुंचे। यह जानकर जनरल टॉमस के निर्देश अनुसार कर्नल वाटसन तेजगढ़ की ओर गया। पर तब तक हिरदेशाह वहां से भी जा चुके थे, और जाते समय उन्होंने वहां पर कुछ अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट भी उतार दिया था। उन्होंने राजा तेजगढ़, राजा अभाना एवं मालगुजार बालाकोट को साथ लेकर अनेक स्थानों पर आधिपत्य कर लिया। कटरा बेलखेड़ा के राजा हिंदूपत ने भी इनका खुलकर सहयोग किया। ये सभी राजा हिरदेशाह के नजदीकी रिश्तेदार थे, और लोधी क्षत्रिय जाति के थे। इन क्रांतिकारियों ने राजा हिरदेशाह के साथ नरसिंहपुर, जबलपुर के नर्मदा पार के एक बड़े भू—भाग पर अपना आधिपत्य जमा लिया तथा विदेशियों से इस इलाके को मुक्त करा दिया। राजा हिरदेशाह के भाई सावंत सिंह, खानजू एवं गजराज सिंह सभी इस विद्रोह में सम्मिलित थे। इस परिवार के सभी सदस्यों को जिंदा या मुर्दा पकड़ने हेतु सरकार ने दो बार इनामों की घोषणा की। चूंकि राजा हिरदेशाह अंग्रेजों की चाल को अच्छी तरह समझते थे इसलिए वे अंग्रेजों से निरंतर जूझ रहे थे। उन्हें एक ही धुन सवार थी कि फिरंगियों को देश से खदेड़ना है। जिससे यह बुन्देली विद्रोह दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा था। राजा हिरदेशाह का दबाव नर्मदा क्षेत्र में ज्यादा बढ़ चुका था। इसलिये जबलपुर जिले में हर १० मील पर एक निगरानी केन्द्र अंग्रेज सरकार द्वारा खोला गया। साथ ही होशंगाबाद, दमोह, सागर, सिवनी, बालाघाट तथा बैतूल में पुलिस बल अधिक बढ़ा दिया गया। जिससे कि विद्रोह की लहर आसपास के जिलों में प्रवेश न कर सके।

इसके विपरीत राजा हिरदेशाह के नेतृत्व में भी जबलपुर के आसपास कई सुरक्षा और विद्रोही केन्द्र बन चुके थे और वे लूटपाट तथा आगजनी में संलग्न थे। राजा हिरदेशाह काफी सक्रिय होकर लोगों से निरंतर संपर्क कर अपने समस्त रिश्तेदारों एवं सभी संपर्क वाले बुन्देला ठाकुरों को लगातार पत्राचार के जरिये और उनसे स्वयं मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध उन्हें संयुक्त विद्रोह करने के लिये प्रेरणा देने में प्राणपण से जुटे हुए थे। परिणामस्वरूप भारी

तादाद में बुन्देला वीर सांठ–गांठ करके उनके साथ शामिल हो गये। उन्होंने संयुक्त विद्रोह के लिए धन–अस्त्र–सस्त्र इकट्ठा करना शुरू कर दिया और अनेक लोगों से मिलकर उन्हें अपने साथ ले लिया। परिणाम स्वरूप उनके साथ हमेशा करीब तीन सौ से अधिक बंदूकची एवं काफी तादाद में अरदली लोग रहा करते। जो कि उनके अति विश्वसनीय व्यक्ति हीरापुर एवं उसके आसपास के इलाके के ही रहा करते। हीरापुर एवं उसके आसपास के इलाके में राजा हिरदेशाह ने काफी रसद भी जमा कर रखी थी। ब्राउन ने संभावित संयुक्त हमले की आशंका से हीरापुर के पास वाले ग्राम सांकल में ४२ मद्रास रेजीमेंट की २ सशक्त टुकड़ियां तैनात की और राजा हिरदेशाह पर कड़ी निगरानी शुरू कर दी। राजा हिरदेशाह पर अपने एक करीबी संबंधी कटरा बेलखेड़ा के राजा हिंदूपत के यहां अस्त्र–शस्त्र एवं सेना जुटाने में लगे थे तब अंग्रेज अधिकारी ब्राउन ने उन्हें समर्पण हेतु कहा किंतु उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। उनके साथ इस समय दीवान ईशरी सिंह, सावंत सिंह, गजराज सिंह, खानजू, बहादुर सिंह आदि प्रमुख क्रांतिकारी थे। इनके साथ ठाकुर जीतसिंह, कुं. मर्दन सिंह मातनपुर–बेलखेड़ा, राजा बलवंत सिंह पिठोरा, राजा सोनीपत दिलहरी, राजा मधुकर शाह हटरी एवं राव बन्नेसिंह नरसिंहपुर भी जुड़ गये।

राजा हिरदेशाह जब दोबारा तेजगढ़ पहुंचे तब अंग्रेज सैनिकों से उनकी मुठभेड़ हो गई। जिसमें राजा हिरदेशाह के काफी आदमी मारे गये। लेकिन वे निराश नहीं हुए। उनके साथ क्रांतिकारी भी अनवरत् रूप से आगे बढ़ते ही रहे और अनेक महत्वपूर्ण ग्रामों पर उन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया। उन्होंने तेजगढ़ पर एक बार पुनः हमले की योजना बनाई पर वे उसमें सफल नहीं हो सके। फिर भी सक्रिय रहते हुए उन्होंने देवरी चौकी पर हमला बोल दिया। इसमें एक कोटवार मारा गया तथा अंग्रेजों के मुखबिर चिंतामन नामक व्यक्ति की क्रांतिकारियों के द्वारा नाक भी काट ली गई। देवरी के मालगुजार पदमसिंह भी इन क्रांतिकारियों के साथ १०० बंदूकची लेकर शामिल हो गये। इस तरह विद्रोह और संघर्ष का यह सिलसिला बराबर चलता रहा। जिसके परिणामस्वरूप हीरापुर के पास वाले सांकल गांव में अंग्रेजों ने मद्रास रेजीमेंट की दो टुकड़ियां और लगा दीं। जिन्हें क्रांतिकारियों द्वारा लूट लिया गया और वहां आग लगा दी गई। यह सब राजा हिरदेशाह के निर्देशन पर उनके समर्थकों ने किया। सांकल के इस हमले में एक हजार व्यक्तियों ने भाग लिया। इसमें गनेश शुक्ल का भी भरपूर सहयोग रहा। क्रांतिकारियों ने पूर्व से ही नर्मदा के प्रमुख घाटों पर अपना कब्जा कर रखा था जिसमें बरमान एवं बिलथारी घाट भी शामिल थे। जैसे ही क्रांतिकारियों को यह पता चला कि लेफ्टिनेंट फ्रेजर बिलथारी घाट की ओर जा रहा है तो उन्होंने मोर्चा सम्हालकर सभी नावों पर अपना कब्जा कर लिया और लेफ्टीनेंट फ्रेजर जैसे ही घाट के सामने आया वैसे ही क्रांतिकारियों ने गोलाबारी शुरू कर दी। जिससे वह घबरा कर बिना प्रत्युत्तर के वापिस लौट गया। क्रांतिकारी सांकल घाट पार करते हुए हीरापुर पहुंच गये। तब क्रांतिकारियों का पीछा करते हुए कर्नल वॉटसन हीरापुर जा पहुंचा किन्तु राजा हिरदेशाह सहित सभी क्रांतिकारी वहां से भाग निकले। इस तरह कर्नल वाटसन उन्हें पकड़ने में असफल रहा। तब अंग्रेजों ने इस विद्रोह के दमन हेतु २४ नवंबर १८४२ को प्रमुख क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी पर इनाम की घोषणा कर दी। तदनुसार मधुकरशाह नाराहट, गणेशजू नाराहट, जवाहर सिंह चंद्रपुर, दीवान पारीक्षित सिंह गिरार, दीवान बहादुर सिंह अभाना, गनेशजू गूढ़ा, लक्ष्मनसिंह शाहगढ़, हिरदेशाह हीरापुर, डेलनशाह मदनपुर इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक दो–दो हजार चांदी के विक्टोरिया सिक्कों के इनाम की घोषणा की तथा धुरमुंगद चंदेरी, दरयाव सिंह गूढ़ा, पंचम सिंह गूढ़ा, अजीत सिंह खुनसरा, दहलानसिंह मदनपुर, दिलावरसिंह ढिलवार, नरवरसिंह घोघरी, रंजोर सिंह मालगुजार सुआतला, अजीतसिंह नादिया, ठा. सरवतसिंह सुजानपुर, ठा. शिवराजसिंह देवरी इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक एक–एक हजार चांदी के विक्टोरिया सिक्कों के इनाम की घोषणा की। बृजभूषण पाठक होशंगाबाद, नरवर सिंह ढिलवार, तथा भूपसिंह घोंघरी इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक पांच–पांच सौ चांदी के विक्टोरिया सिक्कों के इनाम की घोषणा की किंतु वीर बुंदेला मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह, हिरदेशाह और डेलनशाह सहित सभी क्रांतिकारियों की गतिविधियां बराबर चलती रहीं। राजा हिरदेशाह ने एक जोरदार संयुक्त हमले की अपनी पूर्व योजना को मूर्तरूप देने के उद्देश्य से अपने समस्त रिश्तेदारों एवं बुंदेला जमींदारों के यहां स्वयं जाकर सहयोग लेने की बात सोची ताकि समूचे सागर दमोह एवं नर्मदा क्षेत्र को अंग्रेजों के शिकंजे से मुक्त कराया जा सके। इसको कार्य रूप देते हुए वे पहले कटरा बेलखेड़ा पहुंचे। वहां के अभाना गये वहां विशेष चर्चा करने के पश्चात् वे बालाकोट जा पहुंचे। वहां से रवाना होकर वे पंचमनगर होते हुए केरबना जा पहुंचे। वहां उन्होंने संपर्क वालों से विशेष चर्चायें कीं। चूंकि इस ग्राम के लोधीठाकुर विष्णु सिंह हिरदेशाह के रिश्तेदार थे। इसलिए वे उनके यहां रुके थे। इस बात का पता चलने पर एम.सी. ओमेनी ने शासन के समक्ष यह सुझाव रखा कि केरबना पर हमला किया जाए और वहां के लोधी ठाकुरों को बंदी बनाया जावे। क्योंकि वहां के लोधी ठाकुर क्रांतिकारियों को सहयोग दे रहे हैं जिसे रोका जाना जरूरी है। साथ ही क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी कर इनाम की राशि को भी बढ़ा दिया जावे। तदानुसार १९ दिसम्बर १८४२ को प्रमुख विद्रोहियों बागी और क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी हेतु इनाम बढ़ा दी गई। जो कि राजा हिरदेशाह हीरापुर, जवाहर सिंह, चंद्रपुर एवं पारीक्षित सिंह जैतपुर इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक चांदी के दस–दस हजार विक्टोरिया सिक्के इनाम पर रखे गये तथा मधुकरशाह नाराहट, गणेशजू नाराट, दीवान बहादुर सिंह अभाना, पारीक्षितसिंह गिरार, लक्ष्मणसिंह शाहगढ़, सावंतसिंह हीरापुर, पहलवान सिंह जैतपुर इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक चांदी के पांच–पांच हजार विक्टोरिया सिक्के इनाम पर

रखे गये। धोकल सिंह, दरयाव सिंह, पंचम सिंह, गणेशजू गूढ़ा इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक चांदी के तीन–तीन हजार विक्टोरिया सिक्के इनाम पर रखे गये। दहलान सिंह मदनपुर, धुरमुंगद चंदेरी, खानजू हीरापुर, गजराजसिंह हीरापुर इत्यादि लोगों पर प्रति व्यक्ति के मान से तात्कालिक चांदी के दो–दो हजार विक्टोरिया सिक्के इनाम पर रखे गये। किंतु क्रांतिकारी गतिविधियां निरंतर बढ़ती रहीं। इसके इलावा ब्रिटिश साम्राज्य के आतंक और अत्याचार के विरुद्ध अफगानिस्तान में भी संघर्ष छिड़ा हुआ था। जिसमें अंग्रेजों को वहां करारी हार का सामना करना पड़ रहा था। यहां भी बुन्देली विद्रोह के क्रांतिकारी वीर, अंग्रेजों को निरंतर शिकस्त दे रहे थे जिससे अंग्रेज काफी भयभीत थे और यहां हमला करने में डर रहे थे।

राजा हिरदेशाह केरबना से कूच कर पन्ना राज्य की ओर प्रस्थान कर गये। इस दौरान उन्होंने दो दिन चरखारी में लोगों से संपर्क किया। फिर सिमरिया ग्राम जा पहुंचे और वहां भी काफी लोगों से संपर्क किया। तत्पश्चात् वे हिनौतिया गये और वहां भी बहुत से लोगों से संपर्क किया। फिर वे जैतपुर जा पहुंचे। राजा हिरदेशाह के जैतपुर पहुंचने की खबर पाकर दीवान बहादुर सिंह ६ गन्स, १२५ घुड़सवार तथा दो हजार पैदल सैनिकों सहित उनसे मिलने जा पहुँचे। जिससे राजा हिरदेशाह बहुत ही प्रसन्न हुए तथा काफी समय तक उनसे संपर्क किया और क्रांतिकारी गतिविधियों एवं संयुक्त विद्रोह के बारे में बहुत सी चर्चायें कीं। इस तरह राजा हिरदेशाह निरंतर क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न रहकर लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध संयुक्त हमले की तैयारी में लगे हुए थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। उधर मधुकरशाह, गणेशजू, जवाहर सिंह और डेलनशाह इत्यादि सभी बुन्देली वीर क्रांतिकारी भी अपने–अपने साथियों सहित क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थे। मगर इसी बीच फरवरी १८४३ में मधुकरशाह अस्वस्थ होने के कारण अपने घर पर इलाज और आराम ले रहे थे। तभी कैप्टिन हेमिल्टन को यह खबर मिली कि मधुकर शाह घर पर मौजूद हैं। इस समय वे अपने घर पर अकेले ही हैं, इसलिए उन्हें गिरफ्तार किया जाना आसान है। कैप्टिन हेमिल्टन ने जैसे ही यह खबर पाई वैसे ही तुरन्त वह नाराहट जा पहुंचा और मधुकरशाह को धर दबोचा। मधुकरशाह इस समय घर पर ही मौजूद थे और वे सो रहे थे। तभी कैप्टिन हेमिल्टन ने वहां पहुंच कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। मधुकरशाह के गिरफ्तार होने की खबर सर्वत्र आग की तरह फैल गई। यह खबर पाकर राजा हिरदेशाह जैतपुर से तुरंत सागर की ओर रवाना हुए। वे वहां पहुंचते कि इसके पूर्व ही मधुकरशाह को सागर में अंग्रेजों द्वारा फांसी दे दी गई। राजा हिरदेशाह को भी सागर जाते समय शाहगढ़ के समीप गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ मेहरबानसिंह, ईशरी सिंह, राव अमानसिंह, केसरी सिंह, अनिरुद्ध सिंह, धीरज सिंह, सावंत सिंह, गजराज सिंह, खानजू सहित अन्य बहुत से लोग थे।

मधुकरशाह को फांसी दिये जाने और हिरदेशाह को गिरफ्तार किये जाने से सभी क्रांतिकारियों को बड़ा धक्का लगा। हालांकि हिरदेशाह और उनके साथियों को इस शर्त पर छोड़ दिया गया कि वे भविष्य में कभी भी विद्रोहीगतिविधियां पैदा नहीं करेंगे। बल्कि वे विद्रोही गतिविधियों को रोकने और विद्रोहियों को समर्पण करने हेतु प्रयास करेंगे। जिसके परिणामस्वरूप फरवरी १८४३ में ही मदनपुर के गौंड़ राजा डेलनशाह एवं दिलवार के मालगुजार दिलावर सिंह और नरवर सिंह ने चांवरपाठा के तहसीलदार रामचरन के समक्ष समर्पण कर दिया। यह समर्पण उन्होंने अपने एक नजदीकी रिश्तेदार के कहने पर किया। इसी तरह जैतपुर के राजा खेतसिंह की सलाह पर पारीक्षित सिंह ने ए. स्लीमेन के समक्ष समर्पण कर दिया। मधुकरशाह के भाई गणेशजू ने तालवेट के रामप्रसाद तिवारी की प्रेरणा से समर्पण कर दिया। समर्पण का यह क्रम चलता रहा जो कि फरवरी १८४३ से मार्च १८४३ तक चला। अंत में बुन्देली विद्रोह के प्रचण्ड क्रांतिकारी चंद्रपुर के मालगुजार जवाहर सिंह ने भी अपने चचेरे भाई जैतपुर के राजा खेतसिंह की प्रेरणा से समर्पण कर दिया और जो भी शेष बचे उन्होंने भी अपना–अपना समर्पण कर दिया।

इस तरह अप्रैल १८४२ ईस्वी से प्रारंभ होकर मार्च १८४३ ईस्वी तक यह बुन्देली संघर्ष निरंतर चलता रहा। इस संघर्ष में अनेक बुन्देली वीरों ने आजादी की अलख जगाते हुये अंग्रेजों से लड़कर अपने प्राणों का बलिदान दिया। सन् १८४२ ईस्वी का बुंदेली संघर्ष और ब्रिटिश साम्राज्य बुन्देलखण्ड के इतिहास का एक प्रमुख अविस्मरणीय अध्याय है।

– शाहगढ़, जिला सागर म.प्र.

बुन्देली चौकड़ियाँ

– डॉ. एन.डी. सोनी

मउआ खाबौ जो कोउ जानें, आँय बुन्देला स्यानें।
खाँय गरीब भूँज के ऐसई, देशी मेवा मानें।
रित अनुसार बनत हैं विंजन, जाड़न मुर्का खानें।
गर्मी में डुबरी कौ मौका, वर्षा लटा बनानें।
मुर्का लगत खात में नोंनों, स्वाद बड़ौ अनहौनों।
मउआ तिली डारकें कूटो, सोंदौ और मिठौनों।
सस्तो मेवा बुन्देलन कौ, खानें जीनें जौनों।
खाव अगर घिऊ डार तनक सौ, लागै भाइ मिठौनों।

डुबरी इक बुन्देल मिठाई, मउअन खीर बनाई।
डरें सिमइयाँ ताजीं बरकें, मउअन संग खौलाई।
गरी चिरौंजी डार पकाकें, ठन्डी कर थरक्याई।
मों में धरतन रस घुर जैहै, जीनें डुबरी खाई।
जो कोउ लटा कभउँ खा लैहै, बेरई बेर मंगैहै।
मउअन के जे बनें दोबन्नी, स्वाद दोबन्नी रैहै।
मउआ तिली भूँज कें कूची, गोल कुचइया रैहै।
खोबा गरी मिले गर खालये, स्वाद न कभउँ भुलैहै।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ म.प्र.

गोदना परम्परा – कल और आज

– डॉ. मधु श्रीवास्तव

आदिकाल से ही मानव कलाप्रिय रहा है। आदिमानव द्वारा रचित गुहा एवं शैल चित्र इसके उदाहरण हैं। कलाप्रियता की पराकाष्ठा है – अंगचित्रांकन अर्थात् 'गोदना'। गोदना प्रकृति और मानव के मिथकीय सम्बन्धों को प्रदर्शित करते हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष में गोदना परम्परा आदिवासी जनजातियों के साथ क्षेत्रीय परिवेश तक समान रूप से प्रचलित है। गोदना से सम्बन्धित अनेक लोक–विश्वास, आस्था, संस्कृति, मानवीय संवेदनायें, दैवीय प्रेरणायें तथा मिथक हैं। गोदना परम्परा युगों से रही है। शरीर के अंगों पर असहनीय कष्ट सहन करते हुये महिलायें पीढ़ी–दर–पीढ़ी गुदने धारण करती आई हैं। बुन्देली लोकगीतों में गोदना का उल्लेख भी आता है – 'धीरे गोद गुदनारी तोरी सुइयां लगत है'

साहस, धैर्य, कामेच्छा पूर्ति करने वाले, सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले, पराशक्ति से सुरक्षा प्रदान करने वाले, सौन्दर्य वृद्धि कर निरोगी काया रखने में सहयोगी, आभूषणों के अभाव में मानसिक संतोष प्रदान करने वाले, प्रजनन व कामेच्छावर्धित तथा जाति विशेष के पहचान चिन्ह माने जाने वाले 'गोदना' सर्वप्रिय रहे हैं।

'गोदना' परम्परा केवल भारत में ही नहीं वरन् विश्व की अनेक जनजातियों में अविच्छिन्न रूप से पाई जाती रही है। यह परम्परा आसाम, दक्षिण भारत, मध्य भारत, अण्डमान निकोबार, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, पोलीनेशिया आदि अनेक स्थानों पर कलाप्रियता के आधार पर चर्मोत्कर्ष रूप में पाई जाती है। आदिवासी जनजातियों में ऐसा विश्वास है कि भौतिक जगत में सम्बन्धित आभूषण तो इसी मृत्यु पश्चात् यहीं रह जाते हैं किन्तु गोदना आत्मा के साथ परलोक तक जाता है। इसे 'जन्म सिंगार' के रूप में जाना जाता है। गोदना जन्म जन्मान्तर तक साथ रहता है।

''मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया'' में वेरियर एल्विन के अनुसार गौड़ जनजाति में प्रचलित पौराणिक कथा से गोदने की उत्पत्ति ज्ञात होती है। महादेव शंकर ने एक बार सभी देवताओं को भोज पर आमंत्रित किया। भोज में गोंड देवता भी अपनी पत्नी सहित गये। सभी देवियाँ एक स्थान पर बैठी थी। जब गौंड देवता जाने लगे तब अपनी पत्नी समझ देवी पार्वती के कंधे पर हाथ रखकर चलने को कहा। उनकी इस भूल पर देवी पार्वती क्रोधित हो गई। महादेव शंकर यह भूल जानकर हँसने लगे किन्तु पार्वती जी का क्रोध शान्त नहीं हुआ अन्त में उन्होंने युक्ति सोची कि यह भूल दोबारा न हो। पार्वती जी ने प्रत्येक जाति के लिये पृथक–पृथक गोदना अभिप्राय निर्धारित किये इन अभिप्रायों को देवियों के अंगों पर गुदवाया जिससे उनकी पृथक पहचान हो सके। तभी से सभी जाति की देवियाँ गोदना गोदवाने लगीं। इस प्रकार संसार में गोदने का प्रचलन हुआ।

आदिवासियों में गोदना से सम्बन्धित अनेक अवधारणायें हैं। डॉ. विश्व बन्धु शर्मा के अनुसार पुरुष गोदना के सम्बन्ध में एक मिथकीय धारणा है कि – संस्कृति की प्रथम पहचान तथा संसार का प्राचीनतम प्रसाधन है। इसका सम्बन्ध बहादुरी से जोड़ा जा सकता है। कभी–कभी युद्ध करते समय प्रारंभिक मानव बहुत घायल हुआ होगा और उसने अपने सौभाग्य से विजयश्री प्राप्त कर ली होगी, कालोपरान्त उसका शरीर अनेक घावों से सुशोभित हुआ होगा जिसे अन्य साथियों ने बड़े सम्मान व आदर से देखा होगा। बस यहीं से आने वाली पीढ़ी ने अपने शरीर को विभिन्न खरोंचों से सजाया होगा। जो पुरुष गोदना के रूप में प्रचलित हो गया।

आदिम जनजातियों में क्वांरी तथा विवाहित दोनों स्त्रियां गोदना गुदवाती हैं। पुरुष केवल अपना नाम, फूल या देवता की आकृति चित्रित करवाते हैं। विवाह के पश्चात् पतिगृह में किया जाने वाला गोदना पति के परिवार द्वारा प्रदत्त माना जाता है।

आदिवासियों में गोदना से सम्बन्धित कई किंवदंतियां भी प्रचलित हैं। एक किंवदंती इस प्रकार है कि एक स्त्री अपने पति की प्रताड़ना और तानों से तंग आ गई थी और उसने भूखे रहने का निश्चय किया और जब उसको भूखे रहते हुये पूरे सात दिन हो गये तब आठवें दिन देवी ने दूतों से उसे अपने पास बुलाया और सरई के वृक्ष से एक काला पदार्थ निकालकर बांस की सीखों से उसके गालों पर गोदने बना दिये और कहा कि जिस तरह मैंने तुम्हें गोदा है – ठीक उसी प्रकार जनजातियों की स्त्रियों को गोदना गोदा करो, जिससे उनमें सहन शक्ति उत्पन्न हो और वे वैवाहिक जीवन के संघर्षों की पीड़ा को सहज ही झेल सके।

गोदना केवल शरीर के खुले भागों में गुदवाया जाता है। कपड़े से ढके भागों में गोदना गोदवाना निषेध है। गोदना गोदने वाली को गुदनारी कहा जाता है। आदिवासी जन जातियों में विभिन्न अंगों में गोदना गुदवाने के सम्बन्ध में अनेक विश्वास प्रचलित हैं। जो स्त्री पैरों में गोदना गुदवाती है उसे स्वर्ग की सीढ़ी मिलती है। पैरों के तलवों में 'पद्म देव' का निवास होने से ऐसा विश्वास है कि गोदने की पीड़ाहारी माना जाता है। पाँव की एड़ी में 'गजकरन देव' का निवास है – इस लोक मान्यता के आधार पर एड़ी से गोदा गया गोदना शरीर के भार से पैरों की रक्षा करता है। घुटने के ऊपर सामने की ओर गोदा गया गोदना स्त्री के पैरों में अश्व–शक्ति प्रदान करता है। मुख के पास ठोड़ी का गोदना विष बाधा से रक्षा करता है। छाती और उरोजों के मध्य गुदवाये गये मोर–पपइया, पति प्रेम के प्रतीक माने जाते हैं। भील जनजाति में ऐसा विश्वास है कि जो स्त्री जितने अधिक गोदने गुदवायेगी उसका परिवार उतना ही कृषि सम्पन्न होगा। जो स्त्री अपनी कलाई हाथों और अंगुलियों में पति, भाई–बहन, प्रिय सखी का नाम गुदवाती

है। तो मृत्यु के बाद स्वर्ग में उनसे मिलने का विश्वास रखती है। गोदना सामाजिक व धार्मिक आस्थाओं के अतिरिक्त यौन भावना भी जागृत करता है। बिच्छू, मधुमक्खी, मुर्गा–मुर्गी, हिरण–हिरणी, अश्व युगल आदि प्रजनन क्षमता को जागृत करने के उद्देश्य से अंकित किये जाते हैं। गोदना अलंकरण में पाये जाने वाले अभिप्रायों में से अनेक 'टोटकों' से सम्बन्धित होते हैं। जिनका अभिप्राय अभिचार के प्रतिरोध के रूप में किया जाता है। यदि गोदनों का वर्गीकरण किया जाये तो उन्हें चार भागों में विभाजित किया जा सकता है – १. मांगलिक, २. सुरक्षात्मक, ३. टोटमिक या जादू परक, ४. जाति परक या पहचान चिन्ह।

मांगलिक में – कमल, मोर, मछली, सिंहासन, सूरज, फूल, देवी–देवता, स्वास्तिक, घट, अन्न के दानें, त्रिकोणात्मक, आकृतियाँ आदि। सुरक्षात्मक में – चक्रव्यूह, अँगूठी, नक्षत्र चिन्ह, पाँची आदि। जादूपरक में – सर्प, अश्व, शंख, मकड़ा, मछली का काँटा, बिच्छू आदि। पहचानपरक गोदना में अपना या प्रिय का नाम, इष्टदेव तथा जनजाति के चिन्ह आदि होते हैं। गोदना गोदने की परम्परा आदिम जनजातियों में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है। गोदनाहारी पारम्परिक तरीकों और साधनों से गोदना गोदती है। जिन साधनों का प्रयोग किया जाता रहा है। उनमें प्रथम संकेत दूधी पौधे का दूध है। इसी तरह सरई वृक्ष के काले गोंद से भी गोदना लिखने के प्रमाण सरई वृक्ष के काले गोंद से भी गोदना लिखने के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक गोदने अस्थाई प्राकृतिक साधनों से शुरू हुये। बाद में अकोय, तोरिया, बियां, भिलवां, काजल आदि के रसायन को सुइयों के माध्यम से त्वचा की प्रथम सतह के नीचे तक प्रवेश कराने की क्रिया का आविष्कार हुआ। सुई से गोदना गोदते समय गोदनारी तीन या अधिक सुइयों को बांधकर सरसों के तेल से चिकना कर लेती है। सरसों या जटंगी के तेल से बना काजल, पानी में घोलकर रख लिया जाता है। गोदना की आकृति या चिन्ह सींक द्वारा अंग पर बना दिये जाते हैं। तत्पश्चात् गुदनारी सुई को त्वचा पर चुभाते हुये आकृति को गोद देती है। उस गुदी हुई आकृति में काजल में डूबी जखनादार सुई से रंग भर दिया जाता है। त्वचा पर सुई की चुभन की जलन और सूजन को दूर करने के लिये गुदनारी गोबर–पानी और सरसों के तेल का प्रयोग करती है। गोदना पकने न पाये इसके लिये हल्दी और सरसों का तेल पकाकर ठंडा करने के बाद लगाया जाता है। लगभग सप्ताह भर बाद त्वचा सामान्य हो जाता है। गोदना गोदने के लिये शीत ऋतु अच्छी मानी जाती है। वर्षा या ग्रीष्म ऋतु में गोदना पकने का भय रहता है। कभी भी पूरे शरीर में गोदना एक साथ नहीं गोदे जाते, एक गोदना पूर्ण होने पर ही दूसरा 'गोदना' गोदा जाता है। ग्रामीण अंचलों में गुदनारी को पारिश्रमिक के रूप में अन्न, वस्त्र अथवा नगद धन दिया जाता है।

बुन्देलखण्ड की जनजातियों तथा ग्रामीण अंचलों में गोदना से सम्बन्धित अनेकों लोक विश्वास होते हैं गोदना गुदवाये स्त्री पुरुष पवित्र माने जाते हैं। गोंड़ जनजाति में मान्यता है कि गोदना काला कुत्ता है जिसकी कोई परछाई नहीं होती है और उन्हें कोई नहीं चुराता है। गौड़ जनजाति की युवतियाँ पहले नाक के ठीक ऊपर माथे पर फिर जाँघों पर गुदवाती हैं। यह भावी मातृत्व के प्रतीक माने जाते हैं। गोड़ स्त्रियों जट गुदवाती हैं इसमें पहले 'करेला चानी' फिर ऊपरी सतह पर 'डोरा' तत्पश्चात् दोहरा जट गोदा जाता है। अगल–बगल फूल बनाये जाते हैं।

सौंर और सहारिया जनजाति में महिलायें माथे पर अर्द्धचंद्र और बीच में बिंदी, नाक के बाँयें नथुने पर चार दाणा, त्रिभुजाकार, ठुड्डी पर एक गोलदाणा गाल पर तिल, हाथ की मुट्ठी पर सीता चौक, सूरज, चाँद–तारा, सीता, बाबड़ी या रसोई, मोर, बाँहों पर चुटिया, सिंहासन, सूरज, फूल, छत्र, घोड़े और दाने और पैरों की पिंडलियों पर मछली गुदवाती है।

आधुनिकता के प्रभाव और विज्ञान के विकास के साथ 'गोदना' गोदने की प्रक्रिया को सरल बनाने के उद्देश्य से बिजली से चलने वाली सुई से गोदना गोदा जाता है। किन्तु गोदना के प्रति स्त्रियों का प्रेम और आकर्षण उसकी गोदवाने की पीड़ादायक प्रक्रिया के कारण कम हो गया। गोदने का स्थायित्व भी आकर्षण की कमी का एक कारण और है।

आधुनिक नारी और पुरुषों ने सौंदर्यवर्द्धक गोदना को 'टैटू' के रूप में अपना लिया है जिन्हें नित नवीन रूप दिया जा सकता है। विश्व के अनेकों देशों के पॉप गायक और संगीताकार अपने शरीर पर टैटू या गोदने का प्रयोग करते हैं। इटली, जर्मनी, पोलीनीशिया में गोदना कला की उन्नति हुई। अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की जनजातियों में गोदना अपने मूल रूप में विद्यमान है। अरब में स्त्रियों ने इसे शौक के रूप में अपनाया, तो जापान में कलात्मक अभिरुचि का परिचायक बना। गोदने का नवीनतम स्वरूप बेथलेहम में देखने को मिला जहाँ जार्ज रीगर ने अपने पूरे शरीर पर डिल्जीलैंड के सभी कार्टूनबाजों से सम्बन्धित लगभग ८५० गोदने गुदवा लियो। 'गोदना' का प्राचीनतम लाभ शारीरिक स्वास्थ्य भी है, जिसका परिवर्तित स्वरूप वर्तमान में 'एक्यूपंचर चिकित्सा पद्धति' में देखा जा सकता है। संभवत: शरीर के अंग विशेष पर गोदना के सुई की चुभन नहीं स्वास्थ्य लाभ देती होगी तो 'एक्यूपंचर निडिल' से मिलता है।

अंतत: गोदना कला परम्परा, आस्था, लोक विश्वास का ऐसा चित्रित पक्ष है जिसको भूलना या समाप्त करना जनजातियों के वश की बात नहीं है। विकास का प्रभाव तो हो सकता है किन्तु मानस परिवर्तन असम्भव है क्योंकि गोदने से लौकिक एवं पारलौकिक शक्तियों का जुड़ा होना इस बात का द्योतक है कि इसकी अमिट छाप मानव शरीर पर ही नहीं वरन उसके अन्तस पर भी सदैव रहेगी और होठों पर गुदवाने की टीस के साथ गुदगुनाये जायेंगे।

''जो कोउ मन के गुदना गूद दै,
तो, पैरत की दैहो मैं सारी।''

– सी–६७, आवास विकास
शिवाजीनगर, कानपुर रोड, झांसी २८४००१

बुन्देली लोककथा –

गुनौर की गुनियाँ

– अश्विनी कुमार तिवारी 'रिंकू'

भौत दिना पैलऊँ की बात है गुनौर गाँव में एक डुकरा–डुकरिया रत ते। उनकें गुनियां नाव कौ एकई लरका हतो। अकेलौ लरका तौ आय, बाप–मताई खाँ ऊ भौतऊ प्यारौ हतौ। एक दिना डुकरा सैं डुकरिया नैं कई कै "अरे सुनों हो तुमसें आज एक गौं की बात कत। मौंड़ा कौ ब्याव अबई हलके में कर डारौ। ई देह कौ का ठिकानौ न जानैं कबै का हो जाय। आज की तौ काल नईं पाई। फिर काल का हुईये सो भगवान जानें।" डुकरा नैं कई कै ऐंसी का उलात परी। कऊं की नौनी नतैती तौ आऊन दै सो कर लैबी। डुकरिया फिर बोली कै चाय तुम ई कान सुनों चाय ऊ कान। इतै के भान चाय उतै ऊंग जायें पै हम तो ऐई साल अपने मौंड़ा की चाईंमाईं पारे बिना नैं रैयें। डुकरा बोलो कै ठीक है तो करौं डारत लरका कौ ब्याव। संजोग सैं गुनियां कौ पन्ने ब्याव हो गव।

भगवान की मरजी। ब्याव के कछू दिना पाछें डुकरा मर गव। लरका कौ चौक–दूसर तो कछू हो नैं पाव पर डुकरा हतो सो भगवान खाँ प्यारौ हो गव। अब तो मताई–बेटा रै गए। बखत जातन कछू देर नईं लगत। कछू बरसन में लरका सियानौं दिखान लगो। सो एक दिना डुकरिया नें गुनियां सें कई कै बेटा अब तैं सियानौं हो गव है, का ऐसई फिरत रैय, जा बऊ खाँ लुवा ल्या। सुनकैं गुनियां सरम के मारैं कछू नै बोलो। फिर का भव कै एक दिना एक गैलारे नैं डुकरिया खाँ खबर दई कै गुनियां के ससुर भौतई बीमार हैं। खबर सुनकैं डुकरिया मनई–मन गुनन लगी कै अब तो गुनियां खाँ पन्ने जानेई परै। पीर–पिराते में नतैत की खबर नैं लेय तौ चार जनें का कैयें। डुकरिया नें तुरतईं लरका खाँ बुलाव और ऊसैं कई कै बेटा पन्ना सैं खबर आई है तुमाये ससुर बीमार हैं। सो जाकैं माते जू की खबर लै आव। उर पौनई कर आव, नैं होये तो संगै बऊ खाँ लिवा लियाईयौ। तुम ऐसे बखत में नैं जैव तौ चार जनैं नाव धरैं। मैं आज रात कै कलेऊ बना धरौं। बेटा तुम भियानैं बड़े भुनसारैं उठकें चलेई जईयौ। सो डुकरिया सैं गुनियां नें कई कै मैं नैं तौ कभऊं पौनई खाँ गव उर नैं मोरी गैल जानी, फिर मैं जावों तौ कैसें जावों? मोये तो बड़ी आफत दिखात कां ठैरों मैं की सैं पूंछों? डुकरिया बोली – बेटा पन्ना खाँ तो तकुआ–सी सूदी गैल लगी है। कोऊ सें नई पूछने आय फिर पन्ना कौन बड़ी दूर है। बड़े भोर तैं निंगै सो अथय नौं तौ पौंचई जैय। उतै सियात है जो नैं पौच पाय तौ जां दिन बूड़ जाय मईं बस रईयै। दूसरे दिना कोरे दुपर नौं तो तैं पौचई जैय। बेटा अब की नाईं नैं करौ करौं जी करकैं चले जाव। मताई के समझायें–बुझायें गुनियां राजी हो गव, उर ऊ डुकरिया सैं बोलो कै हव मताई ठीक है मैं चलो जैंवों।

दूसरे दिना गुनियां भुनसारें बड़े तड़कें उठकैं तैयारी करन लगौ। छांटी की ऊजरी फक सफेद परदनियां उर मिरजाई पैरी, तेल डारो, ककई काड़ कैं बार ऊँछे, ऐना में मों देखो, आंखन में सुरमा लगाव, एक बटुवा में पान–तमाखू, बिड़ी–चकमक धरी, दुपल्लियाऊ करिया उन्ना की टोपी लगाई, एक उन्ना में कलेऊ की पुटरिया बांदी, हाथ में कान बरोबर ऊचीं एक तेरा गांठ की लठिया लई, गोड़न में अच्छी चरटिदार झब्बियाऊं पनईयां पैरीं। फिर मताई के पांव परकैं गुनियां ससरार पौनई खाँ निंग चलो। दिन भर चलत–चलत दिन डूबबे की बिरियां ऊए कछू दूर तक गांव दिखानौं। सो ऊने एक गैलारे सें पूंछी – भैया जौ कौन गांव दिखात, इतै सैं कित्ती दूर हुईये? गैलारे ने कई – पन्ना आय, चले जाव तनकई दूर है। गुनियां आंगें चलो सो का देखत है कै गैल के लिंगा एक खेत में चार पांच गदा चर रये थे। गुनियां नें मनई–मन धोकी के ससरार कौ गांव आय, इतै कछू हँसी–मसखरी सोऊ करौ चईये। गुनियां नें मनई–मन कछू गुनकैं उन सब गदन खाँ उतई गांव के बायरैं बनी देवी माता की मड़िया में पेंड़ दव, उर उतै की किवरियां हन दईं। जब गदा घरै नें पौंचे सो गदन वारे धोबी नैं जानी के मोरे गदा तो कऊं हिराय गये। गुनियां जौ औटपाव करकैं आगैं बड़ो। सो घरन के लिंगा पौंचत–पौंचत लौलईया लग गई। गुनियां नें धोकी कै मताई नैं कई ती कै जितै दिन बूड़ जाय उतई बस रईये रात कैं आगें नें जईये। सो गुनियां नें मताई की बात खाँ गुनकैं एक घर के पछीतें रूख के नैंचें चौंतरा पै डेरा जमा दव। जौन घर के पछीतें गुनियां ने डेरा जमाव हतो ऊ घरै एक मौंड़ी नें अपनी मताई सैं पूंछी – ओरी! ब्यारी सें दो रोटी उर तनक–सी भाजी बची है, कां धर दऊं। मताई बोली –कैले तरें ढांक दै बिन्नू। गुनियां नें चौंतरा पै परैं–परैं जा बात सुन लई उर फिर ऊ सो गव। दूसरे दिना सौकारूं गुनियां नें उठकैं हात – मौं धोव, बटुवा खोल कैं ककई निकारी वार ऊंछे, ऐना में मौं देखो उर बन–ठन कैं पूंछत–तांछत ससरारै जा पौंचो। संजोग सें जौन घर के पछीतें गुनियां नें रात कैं डेरा जमाव तो बोई ऊ की ससरार कौ कड़ौ। पाउनन खाँ देख कैं सास–ससुर उर सब लोगन खाँ भौत खुशी भई। दोऊ घरन की खबर–दबर पूंछी गई, भेंट कुंवारें भई। माते जू नें कई–पाउनें मैंने तौ बड़ी पटक खाई तुमारे सबके पुन्न परताप सें अब उठकैं ठांड़ौ हो गव हों, दुबरई सो है हौलें–हौलें जा सोई दूर हो जैय। गुनियां नैं कई – हव जू भगवान चाहे तो लगे हांत सब ठीक हो जैय। पाउनन की अवाई सुनकैं चार जनें लोग–लुगाई पुरा–परोस के जुर आये। इतै–उतै की बातें हौन लगीं। काऊ नें कछू कई, काऊ ने कछू बताव। बातन–बातन में खात–पियत की बातें हौन लगीं। सो औसर देख कें गुनियां नें मातेन जू सें कई – हम बतावें मातेन जू तुमारें काल रात कै का बनो तो। मातेन ने कई – हां पाउने बताव। गुनियां बोलो – काल रात कै तुमारैं घरै भाजी रोटी बनी ती, खात–पियत सें रोटी–रोटी उर तनक सी भाजी बच रई ती। कव सांची आय। पाउनन की बात सुनकैं सब खाँ बड़ौ अचरज भव। सब धोकन लगे कै पाउनन नें जा बात कैसें जान लई? धोकत–धोकत एक जनें बोले के पाउनें जरूरई बड़े गुनियां हैं। बड़े–बड़े गुनियन के कान काटत हैं। जो कछू पूंछो ऐसें बताऊत हैं जैसे उनकी आंखन देखो होये। जा खबर ऊ धोबी नें सुनी जी के गदा हिरानें ते। तुरतईं ऊनें

गुनियां के लिंगा आकें हात जोर कैं बिनती करी – पाउनें मोरे बार–पांच गदा काल सें हिराने हैं। मैं तो दूर–दूर नौं ढूंढ़ आव, पै कछू पतौ नईं लगो। अपुन गुनकें देखो तो बड़ी किरपा होय। गुनियां ने थोरी देर आंखें मींच कैं मनई–मन कछू गुन कैं ऊतर दव – अबई पूरब दिसा खाँ चले जाव परबस में गदा गांव के बायरें कौनऊं घर में छिपे हैं। उतै पौंचतई धोबी खाँ देवी माता की मड़िया में गदा मिल गये। अब तो सब जनन खाँ पूरौ–पूरौ जौ भरोसौ हो गव कै माते कौ दमाद सांचऊं बड़ौ गुनियां है।

संजोग सें ओई दिना राजा की बेटी कौ नौलखा हार हिरा गव। खूब पतौ लगाव पै कछू सुराग न लगो। गुनियां की खबर राजा खाँ लागी। राजा ने गुनियां खाँ बुलाबे अपनों एक सिपाई पठेव। गुनियां अपने सास–ससुर के घरै बैठो तमाखू पी रव तो कै राजा कौ सिपाई जबई उतै पौंच कैं गुनियां सें कन लगो – चलो तुमें राजा साब बुलाऊत हैं। महलन में चोरी हो गई है ऊ को पतौ लगाऊनें है। जा बात सुनकैं गुनियां घबरा गव। माथे पै पसीना आ गव। गोड़न सें धरती खिसकन लगी। मनई–मन गुनियां घोकन लगो कै ई चोरी कौ पतौ कैसें लगायें। अब तो बुरये फंसे बच्चू। गुनियां मनई–मन भौत घबरा रव तो। जबई सिपाई फिर बोलो – चलत काये नईयां उलायते चलौ। नातर राजा साब नाराज हुईयें। जा बात सुनकैं गुनियां की सास सोऊ कन लगी कै संकुचत काये खाँ हो, चले जाव पाउनें ऐंसई बड़ी जांगा तो करतब दिखाव जात। गुनियां बड़े चक्कर में फंस गव। हड़बड़ा कैं ऊ उठ ठांड़ो भव उर सिपाई के संगै निंग चलो। तुरतई राजा के महलन में पौंच गव। राजा ने देखतई गुनियां सें कई कै बेटी कौ नौलखा हार हिरा गव है, सुन कैं तुमई बताव कै हार कां है, उर कीनैं चुराव है। गुनियां ने पैलें तौ भौत टालन चाई उर राजा सें कई कै मैं कौनऊँ गुनियां–मुनियां नौंईं ऊंसई दो–एक बातें बता दई तीं सो लोगन नें झूठौ हल्ला कर दव। मनों राजा नें एकऊ बात नें मानी और गुनियां सें फिर कई कै जो तुन चोरी कौ ठीक पतौ बता देव तौ मौं मांगो इनाम मिलै, उर जो नें बता पैव तौ तुमाई घिंची काट लई जैय। जा सुनकैं गुनियां नें राजा सें एक दिना की मौलत मांग लई। उर मौलत लैकें गुनियां अपने डेरन में आ गव। रात की समैया हती सो गुनियां खटिया पै पर रव। परो–परो उसांसें लै–लै कैं उर करौंटा लै–लै कैं गुनियां कन लगो – आजा री आजा मोरी निदिया अब तो कटै भोर भयें चिंचिया। सजोग सें गुनियां की लुगाई कौ नाव हतो निदिया। उर बा राजा के इतै काम करत ती। ऊने राजा की बेटी खाँ सपराती बेरां नौलखा हार चुरा कैं सपरना में एक पथरा के नैचें लुका दव तो। जब ऊखों गुनियां की गुनियाई कौ पतौ चलो उर जौ पतौ लगो कै गुनियां खाँ राजा ने बुलाव हतो सो जौ सब जानकें निदिया के पिरान सटकन लगे। ऊनें विचार करो उर मनई–मन घोकी कै अब तो मैं बिना मौत की मरी, कछू बचबे कौ उपाव जरूर करौ चाईये। उतै गुनियां खटिया पै परो–परो उसांसें लै–लै कैं उर करौंटा लै–लै कैं कैबे लगो तो कै आजा री आजा मोरी निदिया अब तो कटे भोर भयें चिचिया। सो जा बात सुनकें निदिया की अक्कबक्क भूल गई। बा घोकन लगी कै जा नें तो मोरो नाव जान लव, उर देखो सब बातन को ईखौं पतौ लग गव। घोकत–घोकत निदिया हड़बड़ा कें दौरी, उर जा कें गुनियां के गोड़न पै गिर कैं कन लगी – तुमारई सरन हों, चाय बचाव चाय फांसी पै टंगवाय तुमसें का छिपी है। हार तौ मैनें चुराव है। महलन के सपरना में पथरा के नैचें धरो है। तुम खाँ तौ सब पतौ है। कसूर तो मोसें हो गव। अब तुमई खाँ बचाउनें है। तुम तो मोरे सुवामी आव। सो मोरी लाज राखियौ। इत्ती बिनती है अपुन से मोरी। उर बा रोऊन लगी। सौ गुनियां नें निदिया सें कई कै तैं काये खाँ रो रई। मो खाँ सब पतौ है तैं तो मोरी घरवाई आय। तो खाँ थोरई फंसेवों जा बेखटकें रै। निदिया चली गई। उर ऊ गुनियां बा रात चैन सें सो गव।

भोर भयें सिपाई गुनियां के घरे फिर आ गव। उर गुनियां सें बोलो – चलौ राजा के इतै बुलऊवा है। गुनियां नें अकड़ कैं ऊतर दव – तुमाये राजा के का हम चाकर थोरई आयें, तनक बैठो चलत हों अबई। इत्ती कै कैं गुनियां उठो हात–मौं धोव, पान खाव, बारन में तेल डारो, बटुवा सें ककई निकार कैं बार संवारे। टुपिया लगाई उर ऐना में मौं देख कैं चल परो। राजा की कचैरी में पौंच कैं तुरतई बोलो –सरकार अपुन खाँ आम खाने कै पेड़े गिनने। मैं चोरी कौ माल तौ अबई बतायें देत। मोखाँ ऐसौ लगत है कै महलन के सपरना में पथरा के नैचें हार धरो है, कोऊ से दिखवाव तो। राजा नें सिपाई खाँ सपरना में पौंचाव सो सिपाई नें सपरना में जा कैं पथरा के नैचें सें हार उठाव उर फिर राजा खाँ दै दव। राजा नें हार लैकें गुनियां सें कई कै चोरी गव हार तौ मिल गव, मनों चोर को कछू पतौ नई लगो। चोरी करबे बारौ फिरकऊँ चोरी कर सकत है। ईसें चोर कौ पतौ लगाबौ भौत जरूरी है। गुनियां नें कछू देर गुन कैं कई कै राजा साब हार तौ महलन मेंई हतौ, कोऊ ने हार चुराव नईयां तो चोर कौ पतौ का लगाऊनें। सपरतन बेटी नें पथरा तरें धर दव हुईये फिर खबर नें रई हुईये। गुनियां की जा बात सुनकें राजा साब खाँ खुंस चड़ आई। सो खुंसियाकें उनने गुनियां सें कई कै चोरी के मामले खाँ गोलमाल करबे तुम चोरी करबे बारे कौ नाव जानबूझ कैं बता नई रये हो, ईसें तुम दंड के भागी हो रये हो। सो दंड भोगबे तुम तैयार हो जाव। नई तो फिर चोरी करबे बारे को नाव बताव। राजा की बात सुनकैं गुनियां सोस में पर गव, और मनई–मन कछू गुनन लगो। कछू देर गुनकें ऊने कई कै राजा साब दंड दैबे के पैलऊ बेटी खाँ बुलाकैं तनक पूंछतांछ कर लई जाय। सो बेटी खाँ बुलाव गव और ऊसं पूंछतांछ करी गई। बेटी नें कै दई कै हमें निदिया नें सपरावतो और ओईन्नें हमाये गरे सें हार उतारौ तो। सो हो सकत है कै हार पै निदिया की नियत आ गई होये, और ऊने हार खाँ पथरा तरें लुका दव होये। ईसें निदिया खाँ बुलाकें ऊसें पूछतांछ करी जाय। बेटी के कतन तुरतई निदिया खाँ बुलाव गव, और ऊसें पूंछ–तांछ करी गई। सों ऊनें सांची–सांची अपनी सब करतूत उगल दई। अब का कानें सबरी पोल खुल गई। सो गुनियां खाँ लै डूबी ऊ की गुनियाई। चोरी–बदमाशी के जुरम में दंड दैकें राजा साब नें निदिया और गुनियां खाँ कारागार में डार दव। ऐसें गुनौर को गुनियां हतो सो निदिया के संगै कारागार में जा पौंचो। किसा हती सो सुना दई कव बड़ेदा कैसी कई?

– इंदिरा प्रियदर्शनी वार्ड ६,
शाहगढ़, (सागर)

ओरछा राज्य के अन्तिम नरेश महाराजा वीरसिंह देव

– चिन्तामणि वर्मा

२ मार्च सन् १९३० के पहले तक ओरछा राज्य के राजा महाराजा प्रतापसिंह थे। इस राज्य की राजधानी सन् १७८३ में तत्कालीन महाराजा द्वारा ओरछा से टीकमगढ़ बदल दी गई थी। महाराज प्रतापसिंह टीकमगढ़ राज्य के ग्राम दिगौड़ा के साधारण ठाकुर थे। जब महाराजा टीकमगढ़ का निस्सन्तान निधन हो गया तो अपनी चतुरता से विधवा राजमाता लड़ई सरकार द्वारा गोद लिए जाकर टीकमगढ़ के राजा बनाए गए थे।

महाराजा प्रतापसिंह के दो पुत्र थे। बड़े का नाम भगवन्त सिंह था जो राजबहादुर कहलाते थे तथा छोटे का नाम सावन्तसिंह था। महाराजा प्रतापसिंह की चतुरता से सावन्तसिंह बिजावर में गोद लिए जाकर बिजावर के राजा बन गए थे। भगवन्तसिंह जिनसे महाराजा प्रतापसिंह असन्तुष्ट रहते थे का निधन प्रतापसिंह के ही कार्यकाल में हो जाने के कारण भगवन्तसिंह के ज्येष्ठपुत्र वीरसिंह को २ मार्च सन् १९३० को ओरछा राज्य का राजा बनाया गया था। वीरसिंह देव के व्यक्तित्व में कुछ अनोखी विशेषताएं थीं। जिससे वे आज भी जनता के मानसपटल पर अंकित हैं।

उनकी सबसे बड़ी विशेषता देशभक्ति तथा दूरदर्शिता थी। जब बुन्देलखण्ड के लगभग सभी राजा देश–भक्तों के कट्टर विरोधी थे उस समय वीरसिंह के हृदय में एक सीमा के अन्दर देश–भक्तों के प्रति सम्मान तथा उनकी सहायता करने की भावना थी। महान् क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद साधू वेश में ओरछा के जंगलों में सातार नदी के किनारे एक कुटी बनाकर वर्षों रहते रहे। जहां देश के अनेक क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद से मिलने जुलने आते रहे। वीरसिंह को यह तो मालूम था कि एक क्रान्तिकारी साधु वेश में ओरछा के जंगलों में रह रहे हैं। लेकिन उनको उनका नाम मालूम नहीं था। इन बातों की जानकारी जब ब्रिटिश सरकार को गुप्तचरों द्वारा मिली तो उसने झांसी के कलैक्टर द्वारा राजा को लिखा कि आपके राज्य में कुछ क्रान्तिकारी क्रांति की गतिविधियाँ चला रहे हैं उन्हें तत्काल झांसी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जावे। वीरसिंह यह सच जानते हुए भी सदैव यही उत्तर देते रहे कि यहां किसी प्रकार की ऐसी गतिविधियाँ नहीं चल रही है और न मेरे कठोर शासन में इस प्रकार की गतिविधियां चलाने का किसी में साहस ही हो सकता है। ऐसा लिखना उस समय अपूर्व साहस तथा देशभक्ति का काम था। क्योंकि यदि ब्रिटिश सरकार को सच्चाई का पता लग जाता तो महाराजा वीरसिंह और उनके राज्य की कितनी दुर्गति होती इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। सन् १९४२ और उसके बाद प्रसिद्ध साहित्यकार जो महाराजा वीरसिंह के डेली कालेज इन्दौर के भूतपूर्व शिक्षक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का कुंडेश्वर (टीकमगढ़) का निवास महाराजा वीरसिंह की जानकारी में क्रान्तिकारियों का अड्डा रहा।

महाराजा वीरसिंह की सहमति से ही राज्य में 'ओरछा सेवा संघ' जो कांग्रेस का परिवर्तित नाम था तथा 'बुन्देलखंड सेवा संघ' नामक संगठनों की स्थापना की गई थी। इन संस्थाओं के माध्यम से सारे राज्य में खुलकर जन–जागृति की गई और इन संस्थाओं में श्री लालाराम बाजपेयी, चतुर्भुज पाठक तथा लक्ष्मीनारायण नायक आदि ऐसे लोकनायक हुए जिन्होंने केवल बुन्देलखंड और भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश का ही नेतृत्व नहीं किया वरन् समस्त मध्यप्रदेश की राजनीति पर व्यापक प्रभाव डाला।

महाराजा वीरसिंह के मन में जितना देश से प्यार था उससे कहीं ज्यादा बुन्देलखण्ड से प्यार था। वह तत्कालीन संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रान्त और बरार के बुन्देलखण्डी जिलों तथा बुन्देलखंड की छत्तीसों रियासतों को मिलाकर संयुक्त बुन्देलखण्ड बनाने के लिये प्रयत्नशील रहे। इसके लिए उन्होंने नवम्बर सन् १९४३ में 'बुन्देलखंड सेवा संघ' के माध्यम से टीकमगढ़ में एक विराट सम्मेलन कराया, जिसमें उत्तर प्रदेश के पं. गोविन्द वल्लभ पन्त, मध्यप्रान्त के पं. द्वारिका प्रसाद मिश्रा, ब्यौहार राजेन्द्र सिंह आदि बड़े बड़े कांग्रेसी नेता तथा बुन्देलखण्ड की रियासतों के राजाओं ने भाग लिया।

जब महाराज वीरसिंह का भाषण चल रहा था तो किसी ने प्रश्न किया 'यदि बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण के लिए आवश्यकता पड़ी तो क्या आप अपने राज्य में जनता को उत्तरदायी शासन दे देंगे?' महाराजा का उत्तर था 'अवश्य!' अधिकांश राजाओं तथा उत्तरप्रदेश के जन–नेताओं के विरोध के कारण यह सम्मेलन किसी प्रकार का निर्णय नहीं ले सका। राजाओं ने यह कहकर विरोध किया कि महाराजा ओरछा सभी राजाओं का अस्तित्व ही समाप्त करना चाहते हैं। कुछ ने कहा कि महाराजा ओरछा सारी रियासतों को हथियाना चाहते हैं। उत्तर प्रदेश के जनप्रतिनिधियों ने अपने प्रदेश के किसी भी भाग को संयुक्त बुन्देलखण्ड में शामिल करने को तैयार नहीं थे। जब नौगांव के पौलीटिकिल एजैन्ट को इस बात का पता लगा तो उसने राजा वीरसिंह की काफी लानत मलामत की लेकिन उन्होंने इसकी थोड़ी भी कभी चिन्ता नहीं की। यह विचारधारा इस सम्मेलन से चालू हो गई और परिणाम स्वरूप सन् १९४८ में बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड की रियासतों को मिलाकर विन्ध्यप्रदेश का निर्माण किया गया तथा बाद में १ नवम्बर सन् १९५६ को वर्तमान मध्यप्रदेश का गठन किया गया और महाराजा का स्वप्न उनकी मृत्यु के दो सप्ताह बाद पूरा हो गया।

एक बार राजाओं के वृहद सम्मेलन में प्रान्त निर्माण के आन्दोलन पर काफी बाद विवाद हुआ। कुछ राजाओं ने वैधानिक अधिकारों की दुहाई देकर कहा ''हमारे पास ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई सन्धियां सुरक्षित हैं और उनके आधार पर हम अपने अस्तित्व को कायम रखेंगे।'' महाराजा वीरसिंह ने जनवादी भाषा में उत्तर दिया ''उन सन्धियों और सनदों का पुलन्दा बनाकर...रख

लीजिये।'' महाराजा वीरसिंह के द्वारा सन् १९३४ में ''मौडर्नरिव्यू'' के सम्पादक श्री रासानन्द चटर्जी से कलकत्ते में यह कहना, ''राजा महाराजाओं का युग तो अब समाप्त होने को है। जनता को ही आगे बढ़कर शासन सूत्र संभालना होगा। इसमें कुछ विलम्ब लग सकता है परन्तु यह अवश्यम्भावी है।'' उनकी राजनैतिक सूझबूझ और दूरदर्शिता की परिचायक है।

सम्पूर्ण देश की पांच सौ बासठ देशी रियासतों के राजाओं में वीरसिंह ही ऐसे तीसरे राजा थे जिन्होंने एक दिसम्बर सन् १९४७ को जनता को उत्तरदायी शासन दे दिया था तथा लालाराम बाजपेयी को राज्य का प्रधानमंत्री तथा चतुर्भुज पाठक और अन्य दो को मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया था। जो विन्ध्य प्रदेश बनने तक राज्य शासन का स्वतंत्रतापूर्वक संचालन करते रहे। वीरसिंह ने उनके किसी काम में कभी कोई हस्ताक्षेप नहीं किया। वे केवल वैधानिक अध्यक्ष ही बने रहे। वीरसिंह अपने राज्य में मतदाता सूची बनवाकर जनता के द्वारा चुने हुए जनप्रतिनिधियों की सलाह देने के लिए सन् १९४० में धारा सभा का गठन कर चुके थे जो विन्ध्य प्रदेश बनने तक राज्य की विधान सभा की तरह काम करती रही।

सन् १९४७ की स्वतंत्रता के बाद जब भारत के तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपने गृह सचिव वी०पी० मैनन को भारत संघ में बुन्देलखण्ड की रियासतों के संविलयन के लिए राजाओं की सहमति प्राप्त करने के लिए नौगांव भेजा। वहां बुन्देलखंड के सभी राजा उपस्थित हुए। वीरसिंह सबसे पहले संविलयन दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने को तैयार हो गये। शेष राजाओं ने यह कहकर वीरसिंह का विरोध किया ''आप बुन्देलखण्ड की सबसे बड़ी रियासत के राजा होने के नाते आप हमारे अधिकारों के रक्षक हैं। पर आप यह क्या कर रहे हैं?'' वीरसिंह ने उत्तर दिया ''समय को पहचानिए। मैं अपने राज्य की रक्षा नहीं कर सकता, यदि आप अपने राज्य की रक्षा कर सकते हैं तो जो चाहे कीजिए और यह कहकर उन्होंने तुरन्त संविलयन पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। बाद में सभी राजाओं ने भी हस्ताक्षर कर दिए।

इस पर सभी राजा लोग वीरसिंह से नाराज हो गए तो सन् १९४८ में विन्ध्यप्रदेश बनने पर जब राजाओं की सहमति से राजप्रमुख और उपराज्यप्रमुख की नियुक्ति की जाना थी तो राजाओं में वीरसिंह के पक्ष में मत न देकर महाराजा पन्ना के पक्ष में मत दिए। परिणामस्वरूप महाराजा रीवां को राजप्रमुख तथा महाराजा पन्ना को उपराज प्रमुख बनाया गया। जो सन् १९५६ तक बने रहे। यह पद राज्यपाल तथा उपराज्यपाल की तरह थे।

वीरसिंह ने इसकी थोड़ी भी चिन्ता नहीं की। वीरसिंह उपराजप्रमुख भले ही नहीं बन सके लेकिन उनका सम्मान भारत की राष्ट्रीय सरकार में उनकी मृत्यु पर्यन्त बना रहा। भारत के प्रथम राष्ट्रपति, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सन् १९५३ में टीकमगढ़ आकर जनसभा में महाराजा वीरसिंह की प्रशंसा की। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी महाराजा की प्रशंसा की। विन्ध्यप्रदेश बनने के बाद महाराजा वीरसिंह किले का निवास छोड़कर टीकमगढ़ से लगभग दो किलोमीटर दूर सड़क के किनारे एक छोटी सी रमणीक कोठी ''बैकुण्ठी''' में शेष जीवन सादे रहन सहन में रहते रहे।

महाराजा वीरसिंह में प्रजावत्सलता व प्रगतिशीलता कूट–कूट कर भरी थी। उन्होंने २ मार्च सन् १९३० को राजगद्दी पर बैठते हुए जो प्रथम आदेश प्रसारित किए उनमें से मुख्य हैं (अ) राज्य की भाषा उर्दू के बजाय हिन्दी होगी। (ब) राज्य में छुआछूत दंडनीय अपराध होगा। (स) बिना मजदूरी अथवा कम मजदूरी देकर बेगार में काम लेने की प्रथा समाप्त की जाती है। (द) हरिजन महिलाएं पैरों तक में सोने चांदी के आभूषण पहिन सकती हैं (य) राजा के सामने लोग किसी भी पोशाक में नंगे सिर तक आ सकते हैं, छाता लगा सकते हैं तथा कुर्सी पर बैठ सकते हैं। (फ) बाल विवाह करना राज्य में दंडनीय अपराध होगा।

यह केवल कागजी कानून नहीं थे वरन् राजमहल में सवर्ण, हरिजन, मुसलमान के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। यह उस समय की बात है जबकि इस तरह के अधिकांश राज्यों में रूढ़िवादी सामन्तों और नरेशों के शासन में जनता अशिक्षित, भयभीत और कूप मंडूक थी। ब्रिटिश राज्य तक में उस समय बालविवाह कुकर्म नहीं माना जाता था।

उनका विचार था कि छोटे–छोटे राज्यों में न ठीक प्रशासन व्यवस्था चल सकती है और न ही जनता की आर्थिक उन्नति ही हो सकती है। इसके लिए उन्होंने भाषा और संस्कृति के आधार पर बुन्देलखंड प्रान्त निर्माण का भरसक प्रयास किया। इसके प्रथम चरण में बुन्देलखंड के सभी नरेशों को राजी कर नौगांव में एक मिली जुली हाई कोर्ट तथा पुलिस आयुक्त मुख्यालय स्थापित कराया था। जिसमें ब्रिटिश राज्य के अनुभवी, सेवानिवृत्त, ईमानदार अधिकारी हाई कोर्ट जज तथा पुलिस आयुक्त नियुक्त किए गए थे।

वे अक्सर कहा करते थे ''मैं अपनी जनता के हृदय का राजा बनना चाहता हूँ'' वे प्राचीन रूढ़ियों के कायल नहीं थे। एक बार जनता द्वारा चुने हुए मंत्री चतुर्भुज पाठक की लड़की की शादी में प्राचीन रूढ़ि को तोड़कर वे उनके घर गए। जब बारात शामयाने में आई तो महाराज उस समय राजगद्दी पर बैठे थे। दूल्हा को देखकर वह उठकर उसका स्वागत करने लगे और स्वयं अपनी गद्दी खाली कर दूल्हे को उस पर हाथ पकड़कर बैठा दिया और स्वयं बगल में पड़ा साधारण कुर्सी पर बैठ गए। जब लोगों ने यह देखकर आश्चर्य किया तो वे बोले ''इसमें आश्चर्य की क्या बात है? मैं तो केवल राजा ही हूँ, दूल्हा तो ढाई दिन का बादशाह होता है, बादशाह का गद्दी पर बैठने का पहला हक है।''

एक बार टीकमगढ़ में भयंकर हैजे का प्रकोप हुआ। लोगों ने राजा से टीकमगढ़ छोड़कर बाहर कहीं चले जाने को कहा उन्होंने उत्तर दिया ''ऐसे घोर संकट में मैं अपनी प्रिय प्रजा को असहाय छोड़कर नहीं भाग सकता हूँ।'' उनके राज्य में डाक्टरों को सदैव यह अनिवार्य रहा कि असमर्थ रोगियों को बिना किसी भेद भाव के प्रतिदिन उन्हें घर जाकर उनका समुचित मुफ्त इलाज करें। इसके लिए डाक्टरों को वेतन के अतिरिक्त भत्ता और सरकारी गाड़ी घूमने को दी जाती थी।

भूमि पर पहले कृषि कर राज्य की आवश्यकतानुसार

मनमाने तरीके से लिया जाता था। किसान जब कृषि कर नहीं दे पाते थे तो वह भूमि को त्याग पत्र देकर छोड़ देते थे। वीरसिंह ने सन् १९३९ में ब्रिटिश शासन के अनुभवी सेवानिवृत्त अधिकारी डी०आर० डाँगरे को सैटिलमैन्ट अधिकारी नियुक्त कर सैटिलमैन्ट कराया और उनसे यह भी कहा गया 'सैटिलमैन्ट कराने का यह उद्देश्य नहीं है कि कृषि कर बढ़ाकर प्रजा पर और अधिक आर्थिक भार डाला जाय। कृषिभूमि की उपजाऊ क्षमता के आधार पर ब्रिटिश राज्य की अपेक्षा दो पैसा रुपया कम कर निर्धारित किया जावे।''

सैटिलमैन्ट के परिणामस्वरूप राजस्व आय में लगभग बारह तेरह प्रतिशत की कमी आई जिसे महाराज ने स्वीकार करने में थोड़ा भी संकोच नहीं किया। किसानों को उनकी भूमि पर लगे वृक्षों को पूरा अधिकार दे दिया। उन्होंने अनेक प्राचीन कर जजिया, व्याई, झरी, आदि समाप्त कर दिए। इतना ही नहीं जागीरदारों पर भी टांका, उवाही आदि करों का इतना ऋण हो गया था कि उनकी इस ऋण को चुकाने की क्षमता तक नहीं थी। उसे भी महाराज ने माफ कर दिया वास्तव में महाराजा साम्यवादी विचारों के थे। जिनका प्रयोग ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत सीमित अधिकार होने के कारण नहीं कर सके। फिर भी राज्य में साम्यवादी पार्टी के गठन की उन्होंने स्वीकृति उस समय दी जबकि ब्रिटिश राज्य में साम्यवादी पार्टी का गठन इने गिने स्थानों पर ही हुआ था। इस पार्टी के प्रमुख नेता नारायणदास खरे और अमृतलाल फणीन्द्र आदि थे। नारायण दास खरे उत्तरदायी शासन की लड़ाई में शहीद हो गये थे। कुछ सामन्तों ने बड़ागांव धसान से लौटते समय मार्ग में नरौसा नाले पर उनकी हत्या कर दी थी।

महाराजा वीरसिंह की हिन्दी तथा बुन्देली भाषाओं की सेवा को भुलाया नहीं जा सकता। राजगद्दी पर बैठते ही उन्होंने उर्दू के बजाय हिन्दी को राज्य भाषा घोषित किया तो राज्य के सभी काम हिन्दी में होने लगे। १५ अप्रैल सन् १९३० को 'वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद' तथा संस्कृत के प्रचार प्रसार के लिए ''देवेन्द्र संस्कृत विद्यालय'' राज्य शासन द्वारा स्थापित किए गए वीरसिंह ने देश के सर्वश्रेष्ठ बहुमूल्य ''वीरसिंह देव पुरस्कार'' दो हजार रुपया देने की घोषणा की जो प्रतिवर्ष बसन्तोत्सव के अवसर पर प्रदन किया जाता रहा। आज भी यह पुरस्कार म.प्र. हिन्दी साहित्य परिषद द्वारा 'देव पुरस्कार' के नाम से दिया जा रहा है। उसके मूल्य में भी वृद्धि कर दी गई है। इस पुरस्कार को महाराजा साहब के कार्यकाल में ही देश के श्रेष्ठतम साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा, श्यामनारायण पाण्डे, गोपालशरण सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी यशपाल आदि को प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ ह। दु:ख है कि आज इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले लोग न तो इस पुरस्कार का नाम वीरसिंह देव पुरस्कार जानते हैं और न ही इस पुरस्कार के जनक वीरसिंह को ही जानते हैं।

इनके कार्यकाल में हाई स्कूल टीकमगढ़ से 'वीर बुन्देल' नामक मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन किया गया। वीरसिंह ने भारत के तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, लोकनाथ सिलाकारी तथा कृष्णानन्द गुप्त को अपने राज्य में बुलाया और उन्हें राज्य के दीवान की तरह सुख सुविधाएं और सुन्दर कोठियां प्रदान की। वे लोग वर्षों टीकमगढ़ में रहकर साहित्य सेवा करते रहे। चतुर्वेदी जी ने राज्य शासन के व्यय पर 'मधुकर' नाम की पाक्षिक तथा कृष्णानन्द जी गुप्त ने 'लोककर्ता' मासिक पत्रिका का प्रकाशन वर्षों तक किया। इन पत्रिकाओं ने हिन्दी तथा बुन्देली के प्रचार प्रसार का अच्छा काम किया। सिलाकारी जी ने बुन्देलखण्ड के जनप्रिय कवि बिजावर के बिहारीलाल भट्ट जी की कविताओं का सम्पादन ''साहित्यसागर'' के नाम से किया।

टीकमगढ़ में प्रतिवर्ष बसन्तोत्सव के अवसर पर एक भव्य समारोह होता था जिसमें देश के प्रसिद्ध कवि अपनी कविताओं का जनता को रसास्वादन कराते थे तथा साहित्य गोष्ठियां हुआ करती थी। इन सबके आयोजन का भार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का होता था तथा व्यय भार राज्य शासन वहन करता था। इतना सब होते हुए भी वीरसिंह चापलूसी पसन्द बिलकुल नहीं थे। उन्होंने साहित्यकारों को यह निर्देश दे रखा था कि उनकी प्रशंसा में न कुछ कभी लिखा जावे और न ही पढ़ा जावे। एक बार हिन्दी की उत्कृष्ट सेवा करने के उपलक्ष में 'साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष पद पर वीरसिंह को सुशोभित करने का प्रस्ताव लेकर स्वयं मैथिलीशरण गुप्त टीकमगढ़ आए जिसे वीरसिंह ने सविनय सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। उनके राजमहल में एक विशाल पुस्तकालय था जिसमें अनेक भाषाओं में अनेक विषयों की पुस्तकें संग्रहीत थीं। वीरसिंह जी स्वयं पुस्तकें पढ़ने के शौकीन थे। टीकमगढ़ राज्य में हाई स्कूल तक शिक्षा नि:शुल्क थी तथा स्कूल से बोर्ड परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले राज्य के निवासी विद्यार्थियों को उनकी इच्छानुसार राज्य शासन के व्यय पर उच्च शिक्षा के लिए राज्य से बाहर भेजा जाता था।

वीरसिंह ने अनेकों बगीचों को जीवनदान दिया। जिनमें महेन्द्रबाग, जुगलनिवास, विनोद कुंज तथा जतारा के अमृतवान नामक स्वादिष्ट केलों के बगीचे दर्शनीय थे। इनमें सैकड़ों माली काम करते थे। जतारा और बल्देवगढ़ को तो उस समय बुन्देलखण्ड के काश्मीर कहा जाता था। महाराजा साहब को हाकी का विशेष शौक था। इसके लिए भगवन्त क्लब नाम से राष्ट्रीय स्तर की हाकी टीम का गठन किया गया। जिसमें राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को टीकमगढ़ बुलाकर उन्हें हर प्रकार की सुख सुविधाएं देकर वर्षों टीकमगढ़ में रखा। इस टीम में उस समय किशनसिंह, रिजारियों, फसाद सरीखे देश प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। हाकी के जादूगर ध्यानचंद तक इस टीम को प्रशिक्षण देने आया करते थे। भगवन्त क्लब ने अनेक बार लखनऊ का रामलाल कप, ग्वालियर का सिन्धिया कप, बम्बई का आगा खां कप, कलकत्ता का बाइरन कप, पटियाला का राघवेन्द्र कप तथा टीकमगढ़ का करणसिंह कप आदि जीतकर देश की टीमों पर विजय प्राप्त की।

आज महाराजा वीरसिंह नहीं है लेकिन उनकी यश—गाथा बुन्देलखण्ड के लोगों की जवान पर कायम है।

— चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर

मन कौ मैल

– डॉ० दुर्गेश दीक्षित

लम्बरदार के दोरैं भारी भीर जुरी ती। पुरा–परोंस के लोग, लुगाईं बारा बन्नी बातें कर रयेते। कछू जनें तौ कक्का जू खों दोष दै रये ते उर कछू जनें बउवने पै तानें कस रयेते। घर में रोबा पोंकी मची ती। गैलारे रुक–रुक कै तमाशौ देख रयेते। कक्का जू की पूरी इज्जत पै पानी फिर रओ तो। अकेलैं ऐसी कानात कन लगत कैं 'माते दुके पिऑंर में, को कयें को बैरी होय' उर कछू जनें जा सोऊ कन लगत 'साँसी कयें मौसी कौ काजर'। इतै कई कै क्याऊँ सै गुटनिया टेकत गाँव के मुखिया जू आ धमके। उतै उनकौ बड़ौ नाती ठाँढ़ो–ठाँढ़ो तमाशौ देख रओ तौ। उयै देखतनई मुखिया जू बोले कैं कायरे रामदीन इतै जा काय की आ भीर जुरी। कछू नईं बब्बाजू, लम्बरदार के दोई लरकन में धिंगानौ आ मचो, धिंगानौ। पैलां तौ उनकी दोई बऊयें भीतरई भीतर किटाकिट करत रत्तीं, अब तौ वे खुटीं खुर्स कै बायरैं हुन हल्ला मचावन लगीं। उर उनके दोई लरका हुद्दम जिद्दी करन लगे। उर बब्बा जू सुनत कै उनकी बड़ी बऊ तौ तीन दिना सैं लाँगी डरी, लाँगी। कै रई कै हमें तौ तुम न्यारौ कर दो, न्यारौ। हम तौ न्यारई में अपनौ चूलौ परचैंय। हल्की बऊ मौसें तौ कछू नई कै रई अकेलैं ऊके मन में सोऊ न्यारे होबे की ललक है। मुखिया जू टिरकत–टिरकत उनई के दोरैं पौंच गये। देखतनई पुरा–परोंस की लुगाँईं घूँघट घाल–घाल कैं एक तरपै ठाँढ़ी हो गईं। उर लरका बिटियाँ देखतनई डेरे दाँयने हो गये।

गाँव के चौकीदार कड़ोरे ने बब्बा जू सैं झुक कैं जै राम जी की करी। मुखिया जू खौं देखतनई लम्मरदार ने कई कैं अबाई होय बब्बा जू। अपुन की क्याँय सै अबाई हो रई है। कछू नईं भइया, तनक अथाई कोढुँआ जा रये, पटवारी ने। तिहाई के लाने सख्ती हो रई है सख्ती। गाँव वारन ने बिजली के बिल नई चुकाये, तिहाई नई दै रये। बड़ी आफत आ गई भइया का बतायें मुखिया जू। आँसो अच्छी फसल नईं भई। पानी कम बरसो। नरवा, नदियाँ उर कुआ सूक चले। बताव अब कैसे गुजारौ होत। उर घर–घर में दाँता किट्टी मची रत। अरे, बऊयें तौ पराये घर की आँय, भईयन–भईयन में तक सुर नइयाँ।

हओ भइया। अपुन कै तौ साँसी रये। सुनी कै अपनई घर में कछू फूंसा–फासी होंन लगी। अरे, फूंसा–फासी का? दोई लरका उर दोई बऊयें न्यारे होबे खौं बिरजे हैं। अरे भइया। तुम काय खौं सोसन दूबरे हो रये। घर–घर मटया चूले हैं। अब तौ कछू विपरीत सी हो गई विपरीत सी कुजानें का ई जुग कौ प्रभाव है कै पूरी की पूरी मान–मर्यादा बिला गई। कोऊ काऊ की आकन्न नईं करत। सब अपने मन के राजा हैं राजा और तौ और लरका उर बऊयें अपने बाप मताई पै शक करन लगे। बड़ो लरका तौ नाँय–माँय कन लगत कै हमाये बाई दादा तौ हल्के भइया खौं जादा चाऊत। कऊँ ऐसौ नई होय कै अपनी सबई गोदन पिन्डी ओइयै सौंप दैंय। उर जौ मजा देखो कै हल्को कबहुं सूदैं बात नईं करत। अब तुमई बताव कै हम का करें मुखिया जू।

भइया! उनें दोष नइयाँ, जा जमाने की हवई ऐसी चल गई। अरे, मताई बाप खौं तौ पाँचई उगइयाँ प्यारी हैं। अपने हाँतन ऐसौ को हुइयै जो अपनी कोंनऊ उगइयाँ खौं काट डारैं। भइया! अब तुम एक काम करो कै उनन खौं न्यारओ कर दो। घर–बखरी जमीन जागा गानौं गुस्तौं सब बाँट कैं, बिरोबर कर दो। उर तुम डुकरा डुकरिया अलग रैकैं भगवान कौ भजन करो। ऐई में सार है। नईंतर बुढ़ापे में ऐसई बेइज्जती होत रैंय। मुखिया जू की बात लम्मरदार के गरें उतर गई। कान लगे कैं कालई चार जनें जोर कै हँसा–बांट कर दैंय। दूसरे दिना लम्मरदार ने दोई लरकन खौं न्यारौ कर दओ। दोई जनें अपने अलग घरन में रैकैं अपनी–अपनी घर गिरस्ती समारन लगे। उर डुकरा, डुकरिया तीरथ करबे चले गये। दोई भईयन कौ चूलौ चकिया उर घर गिरस्ती अलग हती। कोऊ काऊ खौं, काऊ सैं मतलब नई रै गओ तो। हराँ–हराँ एक दूसरे के नाँ आबऊ जाबौ बन्द हो गओ। लम्मरदार खौं अब का लैने दैनें। हरिद्वार में डेरा डार लओ। ऐसई ऐसी कैऊ बरसैं कड़ गई।

एक दिनाँ बड़े भइया कौ बड़ों लरका सख्त बीमार हो गओ। इलाज करा करा कैं हार गये। ठीकई नईं होबैं। पूरी गिरस्ती बरबाद हो गई दवा दारू में। वे लरका के इलाज कराबे खौं बम्बई चले गये। डॉक्टर ने कई कै ईकौ दस दिन बाद उपरेशन हुइयै। दस हजार रुपइया उर पांच बोतल खून की जरूरत परें। सुनतनई बड़े भइया के प्रान सूक गये। अब बताव घर में फूटी कौंड़ी नइयां। दस हजार रुपइया उर पाँच बोतल खून कौ इंतजाम अब काँसैं करबैं? घरवारी सूक कैं तिनूका हो गई। मताई बाप की हर–हर बेरऊ खबर आवन लगी। हल्कौ भइया दस वर्ष सैं तौ बोलो नइयाँ अब हमाई को मदद करैं? बड़े भइया ने अपने गाँव के सेठ खौं चिट्टी डारी उर लिखीं कै साव जू, हम अपनी पूरी गिरस्ती आपके नाँ गाने धर रये। अपुन हमें दस हजार रुपइया उर पाँच बोतल खून कौ इन्तजाम करकैं भिजवा दिइयौ। हम जनम भर तुमाव ऐसान नईं भूलैं। तुमाये ई लतरौंदा के प्रान बच जैंय।

हराँ–हराँ जा बात पूरे गाँव में फैल गई। उनके हल्के भइया उर बहू खौं सोऊ खबर मिल गई। उनन नें पैलां तौ कई कैं न्यारौ पूत परोसी बिरोबर। हमें का कन्नें भोगन दो करमन के फल। अकेलैं भीतरई भीतर कछू घुना बीदी सी होन लगी। दो तीन दिना में हल्के की घरवारी कन लगी कै काय हो! तुमने का सोसी अपने भतीजे के काजै। वे बोले कै तुमई बताव कै अब हम का करें? करें का? कबहु अपन पै ऐसियई आफत आ सकत। आँयतौ आखिर अपने

घरई के। अब का भओ चइये? उन्नें तौ अपुन खौं खबर तक नई दई। बताव, दस साल सैं तौ बोला चाली नइयाँ फिर वे का चर्चा करते। देखौ, एक काम करौं कै जो हमाओ हार बेंच कै दस, ग्यरा हजार रुपइया कौ इंतजाम कर लो उर देखौ तुम अपनऊ खून दै दिइयौ अपने भतीजे के प्रान बचाबे खौं। सुनतनई हल्के भइया के होश उड़ गये, घरवारी की एक–एक बात करेजे में घर कर गई। रात भर नींद नईं आई। ऐसौ लगौ कै पंखा होते तौ अब्बई उड़कै बम्बई पौंच जाते। भुन्सराँ होतनई रुपइया जोर जार कै सूदे बम्बई खौं भगे। बिना खांय पियैं सूदे अस्पताल की तरपै भगे। उतै भइया उर भौजी की हालत देख कैं सनाकौ खाकै रै गये। बेहोश होकैं गिर परे। भतीजौ तौ खाट में मिल गओ तो।

दो तीन जनन ने हल्के भइया खौं उठाकैं ठाँढ़ौ करौ। हल्के भइया ने सबसैं पैलां पुटरिया छोर कै ग्यारह हजार रुपइया काड़कै भौजी के हाँत में गुआ दये। उर बोले कैं अपने प्यारे पन्धोले खौं खून हमई देय, हमाओ भतीजौ अपने कक्का कौ खूनई आय। हमाव उर ऊकौ खून कछू जुदौ नइयाँ। कक्का कौ प्रेम देख कैं पंधोले की आंखन में चमक आ गई, चमक। भौजी उनके मौं कुदाँउ देख कैं रै गई। बड़े भइया सन्न होकैं रै गये। उनें बड़ौ अचम्भौ हो रओ तो। भइया कौ ऐसौ बदलाव देखकैं। बताव तौ दस साल सै तौ बोला चाली नइयाँ उर अंत में मौका पै घरई कौ भइया कामैं आव। नाँय–माँय के तौ तमाशो दिखइया आय होत। बड़े भइया ने उठकैं हल्के भइया खौं अपने गरे सै लगा लओ। दोई भइया बड़ी देर तक रोऊत रये। बड़े भइया उर भौजी के मन कौ पूरी मैल धुल गऔ। भतीजे कौ अपरेशन भओ उर कक्का ने बड़े प्रेम सैं अपनौ खून दओ। कछू दिनन में पंथोले चंगे हो गये। उर बम्बई सैं अपनें घरैं पौंच गये। सबसे पैलां अपनी काकी के गोड़न पै गिरे। अपनी बैन के पाँव परे। काकी ने भतीजे खौं गरे सैं लगाकैं प्यार करो।

बड़े भइया उर भौजी अब सोसन लगे कैं एक न एक दिन घरई कौ भइया कामैं आऊत। कबहुं कबहुं स्वारथ के कारण भले बुरे की पैचान नई रत। कन लगत कैं जाके पाँवन फटी बिमाई, वौ का जानें पीर पराई। समय पै भइया ने साँसे भइया कौ कर्त्तव्य निभाव। भियानें जब मौका परें सो हम अपने प्रान गदिया पै धरकैं, भइया की मदद करें। अपुन सब जने मिल जुलकैं हल्के भइया की मौड़ी कौ ब्याव करबू उर हल्के भइया करोड़े लाल अपने भतीजे पंथोले की सगाई करबे जैंय। अपने मताई बाप खौं कित्ती हाल फूल हुइयै अपनें दोई लरकन कौ मेल जोल देखकैं। उनकी आबरदा बढ़ जैय।

चलो भइया! हरिद्वार सें अपने दद्दा–बाई खौं लुआबे चलिये। उर उदनई सैं दोई भइया अलग अलग रैकैं, एक दूसरी की हीर पीर में शामिल रन लगे। बाढ़ई ने बनाई टिकटी उर हमाई किसा निपटी।

– कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) म.प्र.

गुनसागर की फागें

– पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

टेसू अलबेले फगुवारे, रँग बरसाबे वारे।
रस–रँग लैकें खेलत होरी, मधुबन में मतवारे।
तन–मन मों रये मदन सरीखे, करकें वारे–न्यारे।
भर–भर मुठी अबीर उड़ा रये, सबै लाल कर डारे।
मनमोहन से गुनसगर तुम, कै फिर रंग फुआरे।

महुआ होरी खेलन आए, रस–गागर भर ल्याए।
छैल–छबीली धरनी पै रंग, भुका–भुकें बगराए।
घाल रए ऐसी पिचकारी, सब खों नसा चढ़ाए।
कुंजगलिन में ब्रज रसिया से, फागें बनकें छाए।
फागन में तुम पूरे फागुन, गुनसागर गुन गाए।

सुरतन फाँस आँस गई मन में, हिरा गऔ मन वन में।
भरें चौकड़ी हिन्ना–हिन्नी, झरत छेवलौ छिनमें।
वन में देख बसन्त सुहानों, जेठ मास भये तन में।
पतझर होकें गए दिना वे, सुरत भरी कन–कन में।
मेला में ठाँड़ी गुनसागर, तौऊ लगे निरजन में।

तुम फिर मामुलिया सी आईं, फूलन सजी सजाईं।
अंग–अंग सब खिले फूल से, रस–रँग रंगी रंगाई।
मुसक्यातन वेला की कलियाँ, साँसँडं हैं बगराईं।
कमल–कली से अधर सुहावें, पंखरिन खसबू ल्याई।
डग–डक कांटिन के झकरा पै, गुनसागर खों भाई।

– कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)

दारू

– हरीबाबू गंधी 'सरल'

पियो न दारू सुआमी, जौलत, जग ने बुरी बताई।
ई को जी ने पिइ मिट गई साखन जुरी कमाई।
विनती करों परों मैं पइयां हाहा मोर थराई।
वइयर आई पड़ोसिन कय रइ मानत नहीं हमाई।
ठेका पै जा जुरें कुचाली सबकी जूठी धरीं प्यालीं।
पी कें दें आपुस में गायीं बातन में ही लड़े लड़ाईं।
थाने ले जायें मार लगावें देखें लड़त सिपाई।
बीच सड़क में कोउ डरेहैं कोउ गड़ा में सने परे हैं।
कूकर कबहुं मूत रय मों में सुन सुन के घर सबइ हड़े हैं।
उंकाई ओंठन माछीं हैं सूरत बुरी बनाई।
कबसे फटी पहिर रइ धुतिया बासन बिके बची न लुटिया।
जानें कबसें तेल न पारो लटें बन रईं हैं जो चुटिया।
उन्ना बिना उघारे वारे देखत आय रुआई।
राजन ने ऊ पैज न पाई जौ दारू ऐसी हरजाई।
कैऊ राजघराने मिट गये बिक गई भूमें बची न पाई।
रानी रनवासिन में मर गईं बरकें उन आवरू बचाई।
करें मजाकें आआ छैला पिया पियें वे डरे मिगैला।
कपड़ा कबहुं मिठाई दिखावें रुपयन को दें लोभ थुकैला।
लैन आवरू तुले रहें वे नौवत दारू से जौ आई।

– लहार, जिला भिण्ड (म.प्र.)

कौवा की चालाकी

– रीता तिवारी 'रजनी'

एक बेर का भव कै एक दिना बड़े भुनसारें एक कौवा उड़त–उड़त एक पेड़ पै पौंचो। उतै एक चिरईया कौ घौंसला बनौ तो। घौंसला में चिरईया के चैनुवां धरे ते। सो बौ कौवा उतै जा कैं चौंच मटकाउन लगो। चिरईया सोई उतई हती। सो बा कौवा खाँ देख कैं बोली कै इतै काये खाँ आये? कौवा बोलो कै हम तुमाये चैनुवां खाबे आये हैं। चिरईया घबरा गई। उर मनई–मन घोकन लगी कै चैनुवन खाँ बचाबे कछू उपाव करो चईये। कछू देर नौं घोक–घाक कैं चिरईया नें कौवा सैं कई कै भुनसारे सैं बासे मौं कछू नईं खाने आउत। जाव पैलें कुआ पै मौं धो आव, फिर मजे सैं खईयौ उर नोनें चौंच मटकईयो। कौवा बोलो कै जा कौन बड़ी बात हम अबई जात कुआ पै उर मौं धौयें आऊत। अब बौ कौवा उड़त–उड़त एक कुआ नौं जा पौंचो, उर कुआ सैं बोलो –

कुअल–कुअल तुम कुअल जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
कुअल–कुअल तुम सुनों कुअल मोरी इक बिनती।
तुम देव पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोनें चौंचुल्ला।

कुआ बोलो – तुम ऐंसौ करौ कै कुमार के इतै सैं एक घड़ा लै आव, उर बा में पानी भर लै जाव। जा सुन कैं कौवा हतो सो कुमार कैं जा पौंचो। उर बौ कौवा कुमार सैं बोलो –

कुमर–कुमर तुम कुमर जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
कुमर–कुमर तुम सुनों कुमर मोरी इक बिनती।
तुम देव घडुल्ला भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोनें चौंचुल्ला।

कुमार बोलो – तुम ऐंसौ करौ कै जा कैं पैलें माटी की खदान सैं माटी खोद लैं आव, सो हम घड़ा बना दै हैं। इतनी सुन कैं कौवा माटी की खदान पै जा पौंचो। उर बौ कौवा माटी की खदान सैं बोलो –

खदुन–खदुन तुम खदुन जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
खदुन–खदुन तुम सुनों खदुन मोरी इक बिनती।
तुम देव मटुल्ला बनैं घडुल्ला भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोनें चौंचुल्ला।

माटी की खदान बोली – तुम ऐंसौ करौ के पैल हिन्ना कौ सींग लै आव, फिर सींग सैं माटी खोद लै जाव। जा सुन कैं कौवा डांग में जा कैं एक हिन्ना नौं पौंचो। उर बौ कौवा हिन्ना सैं बोलो–

हिन्न–हिन्न तुम हिन्न जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
हिन्न–हिन्न तुम सुनों हिन्न मोरी इक बिनती।
तुम देव सिंगुल्ला खुदै मटुल्ला बनैं घडुल्ला भरे पनुल्ला
धुबै मुमुल्ला खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोंनें चौचुल्ला

हिन्ना बोलो – तुम ऐंसौ करौ कै पैलैं एक कुत्ता खाँ लुवा लियाव बौ हमसैं लरकैं हमाव सींग खैंचै सो तुमें ऊ सैं सींग मिल जैय। जा सुनतनई बौ कौवा उड़त–उड़त एक कुत्ता नौं पौंचो। उर बौ कौवा कुत्ता सैं बोलो –

कुतुल–कुतुल तुम कुतुल जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
कुतुल–कुतुल तुम सुनों कुतुल मोरी इक बिनती।
तुम लड़ो हिन्न सैं मिलै सिंगुल्ला
खुदै मटुल्ला बनै घडुल्ला
भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोनें चौंचुल्ला।

कुत्ता बोलो – तुम ऐंसौ करौ कै पैलैं जा कैं हमें भैंस को दूद लै आव। दूद पी कैं कछू ताकत पाकैं हम हिन्न सैं लड़ैं। सो जा सुन कैं कौवा हतो सो भैंस नौं आ पौंचो। उर बौ कौवा भैंस सैं बोलो –

भिंसुल–भिंसुल तुम भिंसुल जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करें उर करें मौज मस्ती
भिंसुल–भिंसुल तुम सुनों भिंसुल मोरी इक बिनती।
तुम देव दुदुल्ला पियै कुतुल्ला
लड़े हिन्न सैं मिले सिंगुल्ला खुदै मटुल्ला
बनैं घडुल्ला भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोंनें चौचुल्ला।

भैंस बोली – तुम जा कैं पैलें चारौ लै आव, सो हम चारौ खा कैं दूद दै हैं। इत्ती सुन कैं कौवा उड़त–उड़त हार में चारे नौं पौंचों। उर बौ कौवा चारे सैं बोलो –

चरुल–चरुल तुम चरुल जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करें उर करें मौज मस्ती
चरुल–चरुल तुम सुनों चरुल मोरी इक बिनती।
तुम देव चरुल्ला खायै भिंसुल्ला मिलै दुदुल्ला
पियै कुतुल्ला लड़ै हिन्न सैं मिलै सिंगुल्ला
खुदै मटुल्ला बनैं घडुल्ला भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोनें चौंचुल्ला।

जा सुनकैं चारौ बोलो – भईया। परमेसुर नें हमें तौ बनाऊ

बुन्देली कहानी –

बड़ी भौजी

– डॉ. प्रेमलता 'नीलम'

कण्डा की थाप के संगे भौजी गुनगुना रई ती 'कढ़ गये बारह मास, आये ने वादो धरकें।' ऊंसई में मैने जाकें भौजी की आंखें दोऊ हाथन से मूंदी सो भौजी ने झटइं पेचानो के बिन्ना आयें। मैंने कइ बड़ी भौजी कण्डा पाथ रइं ती के गाना गाऊती सो हैसन लगीं खिलखिलाकें। बड़ी भौजी को व्याओ भयें पच्चीस बरस हो गये। पैलऊँ जैसो बोल–चाल, ऊंसई काम–काज की छनक। नई नवेली दुल्हन जैंसो श्रृंगार। बड़े बुजुर्ग दिखाने सो हाथ भर–को घूंघट डारने। इते लौ के रसोई में कऊं सास जू रइं तो मूढ़ सें धुतिया को उन्ना नइं खिसक सकत। मैंने एक बेरें चुटकी लेत भये कइ, काय भौजी तुमें देख कें कबऊं नइं लगत के तुमायें तीन मोड़ा–मोड़ी हो गये। रामधई भौजी तुमाओ रूप रंग ज्यां को त्यों धरो पैलऊ जैसो, जा तो बताओ कोन चक्की को आटो खाती के भैया कछु खबात हैं। और मैने भौजी खाँ एक लोकगीत की लाइन सुनाई 'गेंदा कैंसो फूल, कब लौ खिलीं रेहो रानी।' सुनतऊं भौजी खिलखिलाकें हंस परी जैसें हँसी को फोहारो फूट परो होय, तनक में कक्का जूँ को ऐरो मिलो सो भौजी चंदा कैंसी मुइयाँ ढाँक के एक कुदाऊँ ठाड़ी हो गईं। भौजी सासरे–मायके सें बड़ी और समझदार ऊ जमाने की मैट्रिक आज के बी.ए., एम.ए. के कान काटत। भौजी खाँ नीति–रीति, मान मर्यादा को बरोबर ध्यान रैत। घर में कोनऊ नें टेरो 'भौजी' बड़ी बहु सो झट्टइं बोलीं आउत हैं। कऊं ओई समय भइया ने टेरो सो बड़ी भौजी चकरी सी नचत हाजिर हो जात, हँसकें काने भइया सें – ''कहो काय खाँ बुला रय ते।'' भइया मजाकिया सो उन्हे मजाक सूजत ती बे कहत – तोखाँ ई लाने बुलाओ के तें तनक मोरे ढिंगा बैठ जा सो तोय तनक आराम मिल है, सबेरे सें तें काम–काज में लगी, सुनतऊँ भौजी ने कइ सो का हो गई अबइं मोरे काम करबे के दिना हैं, हँसत भइ उठकें अपने कामों में फिर लग गई। मोय लगो के ई नये युग की लरकियन में और भौजी तें कितनो अंतर है। आज के जमाने में कहाँ धरीं ऐंसी लक्ष्मी बहुयें जैंसी ई घर में ई सबइ देवरानी बड़ी भौजी के पदचिन्ह पे चलतीं फिर ऊ घर स्वर्ग सें कहाँ कम है। मैने कइ भौजी तुम सही बुंदेलन हो वे कन लागीं – कैंसे, मैने कइ काँच लगी धुतिया पाँव में रूले, टोड़ल, हाथन में चंदौरी, चूरा, बाँके कम्मर में करधनी, गरे में ठुसी तिदानों, हमेल कानों में करनफूल, आज जो पहनावो कहाँ दिखात। बुन्देली भेशभूसा की ठसक अपने आप में अनोखी है। देखतइ सें मन मोह जात। जैंसे अकती की पुतरिया होय। सास–ससुर को अथाह सुख मिलो भौजी खाँ और भौजी ने कक्का जू, बऊ खाँ अपने मात–पिता सें बढ़कें प्रेम दओ। जवइं तो कक्का जू बड़ी बहु – बड़ी बहु केत नइं थकत। और बऊ खाँ जबसें लकवा लगो सो खटिया पे परीं रेंतीं। बड़ी बहु सास–ससुर की सेवा करत रेंतीं। बखरी की देवरानियों खां काम काज करबे को तरीका बताउतीं जैसे कलेबा में का बन है, दुपारी की रसोई कैंसी तपने। बियारी में का बन हैं सबई की रुचि को पूरौ ध्यान धरो जावे जा विशेषता जेवनार की रेहबे।

एक दिना मोंदयारें सें भौजी उठीं और गइयन की गोआसली करन लगीं झारा पोंछी पर गोवर की हेल उठाई टुकनियां में धरी, ओई समइया परोस की मिसरान अपनो औगन बुहारत ती, जबइं बड़ी बहु गोबर को टुकना लेंकें बाहरें कड़ी सो ऊ मिसरान को आँगन बड़ी बहु के आँगन सें जुरो तो उतइं पथरा डरो तो सो बड़ी बहु को पाँव उपट्टा खा गओ गोवर को टुकना मिसरान के आँगन में जा गिरो। अब आहै सो जेहै कहाँ – मिसरान ने चिल्ला कें कइ – ''कायरी बड़ी बहु तोय दिखात नइंया का फुटइ गईं का तोरी दोई आँखें।'' तेने मोंरे झरे पुछे आँगन गोबर बगरा दओ। बड़ी बहु ने उरंतइ आँगन पांछ कें जैसइ को तैसइ कर दओ और चुपइ–चाप मसकइं से अपने भीतरे आ गई। कोनऊ और बहुरिया होती सो आव देखती न ताव पचास बातें पकराती मिसरान खाँ। मोय लगो, सांचऊ बहु होय तो बड़ी बहु घांई, धन्य हैं ऊंके बऊ दद्दा जिन्ने ऊखां जनम दओ। सांसऊ संस्कानवान मोड़ी कबऊं अपने घरन में बिगार नइं करनी, कऊं बिगरे घर सुधारतीं।

– एच/२७, लॉ कॉलेज के पास, दमोह म.प्र.

ई खाँ है। ऐन खुशी सैं ले जाव, अकेलैं तुम एक हंसिया–मसिया लै आव बा सैं काट लै जाव। कौवा नें पूछी कै हंसिया कौन नौ मिलै। सो चारे नें कई कै लुहार दद्दा लौं। इत्ती सुन कैं कौवा उतै सैं चल दव। उर उड़त–उड़त बौ कौवा अपने मनई–मन घोकत जाय कै अब तो बस चैनुवां खाबे खौं मिलई जै है। होत–करत बौ कौवा एक लुहार नौं पौंच गव। बा बेरैं लुहार एक हंसिया की धार बना रव तो। तबई कौवा नैं अपने राग में लुहार सैं कई –

लुहर–लुहर तुम लुहर जती हम काग जती
ऊपर अम्बर नैंचें धरती तापै अपनी बस्ती
इक–दूजे की मदद करैं उर करें मौज मस्ती
लुहर–लुहर तुम सुनों लुहर मोरी इक बिनती।
तुम देव हंसुल्ला कटै चरुल्ला खाये भिंसुल्ला
मिलै दुदुल्ला पियै कुतुल्ला लड़े हिन्न सैं मिलै सिंगुल्ला
खुदै मटुल्ला बनैं घडुल्ला भरै पनुल्ला धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चैनुल्ला मटकावें नोंनें चौंचुल्ला।

जा सुन कैं लुहार बोलो – भैया! तुम हंसिया कैसें लै जै हो। कौवा बोलो – हंसिया हमाये गरे पै धर दो। लुहार नें हंसिया कौवा के गरे पै धर दव। हंसिया के धरतनई बा कौ गरौ खरसई कट गव, उर ऊ कौवा के दो टूंका हो गये। सो धरी रै गई ऊ कौवा की चालाकी।

– वार्ड ६, शाहगढ़ (सागर)

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कुल व लोक देवता

– राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

यूँ तो हिन्दू धर्म में चौसठ करोड़ देवताओं के होने का उल्लेख मिलता है, लेकिन इनके अलावा भी कुछ प्रसिद्ध प्राचीन लोक देवताओं भी बुन्देलखण्ड में बड़े आदर के साथ पूजा जाता हैं। गांव के साथ–साथ ये लोक देवता शहरों में भी हर समाज के लोगों द्वारा पूजे जाते हैं। किसी भी मांगलिक कार्य विशेषकर त्यौवहारों एवं शादी–विवाह के अवसर पर इन लोक देवताओं की पूजा का विशेष ध्यान अवश्य रखा जाता है। ऐसी मान्यता है कि इन मांगलिक मौके पर यदि इनकी पूजा न की गयी तो ये लोक देवता नाराज हो जाते हैं और फिर घर–परिवार में कुछ न कुछ अनिष्ट हो ही जाता है। इसीलिए ऐसा अक्सर लोगों के द्वारा देखने एवं सुनने में मिलता है कि, आज हमारे घर में हमारे कुलदेवता या लोक देवता की पूजा होना है। यह पूजा बुन्देलखण्ड के लगभग प्रत्येक परिवार में वर्ष के कम से कम एक वार तो जरूर देखने को मिलती है, और इस पूजा की खास बात यह है कि इस पूजा में घर का प्रत्येक सदस्य जरूर शामिल होता है चाहे वह घर से कितनी दूर क्यों न रहता हों, वह इस पूजा के लिए घर जरूर आता है। बुन्देलखण्ड में इन लोक देवताओं के नाम का एक चबूतरा बनाया जाता है और इसी चबूतरे का प्रतीक मानकर इनकी पूजा अर्चना की जाती है तथा प्रसाद चढ़ाया जाता है। अपने परिवार को मुसीबतों से बचाने के लिए इन लोक देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तरह–तरह के रीति रिवाज प्रचलित हैं कुछ लोग तो इनसे मनौती मांगते हैं एवं मनौती पूरी होने पर लोक देवताओं के चबूतरे के सामने उनकी पूजा दी जाती है। कोई भी ग्रामीण तो क्या, शहर तक के लोग भी अपनी तो खूब झूठी कसमें तो खा सकते हैं परन्तु कभी भी किसी भी कीमत पर इन लोक देवताओं की झूठी कसमें नहीं खा सकते।

बुन्देलखण्ड के लोग अपनी सम्पन्नता, तरक्की और प्रसिद्धी को अपने लोकदेवता की कृपा एवं आशीर्वाद मानते हैं इसीलिए तो उनके घरों एवं वाहनों पर उनके कुलदेवता का नाम जरूर लिखा देखा जा सकता है। पूरे बुन्देलखण्ड के हर जिले में एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अपने–अपने क्षेत्र विशेष के कुल देवता प्रसिद्ध है। कुछ प्रसिद्ध देवताओं की ख्याति तो बहुत दूर–दूर तक है। एक अनुमान के मुताबिक इनकी संख्या सौ से ऊपर है। वैसे इन लोकदेवताओं का कोई प्रमाणित चित्र नहीं है और ना ही इनके जन्म–मृत्यु संबंधी कोई जानकारी का कहीं भी उल्लेख हमें देखने को मिलता है। लेकिन गाँव में खेत या घर के आँगन आदि पवित्र स्थान में इनका एक चबूतरा बनाकर उनका अदृश्य रूप ही पूजा जाता है। कहीं–कहीं पर उस चबूतरे पर कोई गोल सा छोटा–बड़ा पत्थर रखकर उन्हें इन देवताओं का प्रतीक मान लिया जाता है और उसी रूप में इनकी पूजा–अर्चना की जाती है। शहरों में आँगन आदि स्थानों की कमी रहती है तो वहाँ पर उन्हें एक अलग कमरे में या फिर पूजाघर में स्थापित कर दिया जाता है। और वहीं पर उनके नाम का स्मरण करते हुए पूजा अर्चना आदि की तथा हवन आदि में उनके नाम की कुछ आहुतियाँ दी जाती है। वैसे मुख्य रूप से अगरबत्ती हल्दी, चावल एवं खड़ा धनिया का 'अरछट' आदि देकर उन्हें नारियल ही चढ़ाया जाता है। घर पर कोई भी मांगलिक कार्य होने पर अपने कुल देवता को स्मरण करते हुए उनके नाम की छिटकी जरूर चढ़ाई जाती है वर्ना ये कुलदेवता बहुत जल्दी नाराज भी हो जाया करते हैं।

साल में एक बार एक विशेष प्रकार की पूजा भी की जाती है जिसे बुन्देलखण्डी में 'मेर' की पूजा कहा जाता है यह पूजा प्रायः हर हिन्दू घर में अवश्य की जाती है जिसमें प्रसाद के रूप में एक विशेष प्रकार की आटे की छोटी–छोटी गोली होती है जिसे आम बोलचाल में :'गुलेरी' कहा जाता है। वह भी अवश्य बनायी जाती है जो कि घर की बड़ी बुर्जग महिला के द्वारा ही बनायी जाती है। जिसे पूजा पूरी होने पर प्रसाद के रूप में घर में प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक कटोरी भर कर या एक मुट्ठी भर दिया जाता है। यह गुलेरी का प्रसाद केवल घर के सदस्यों को ही दिया जाता है अन्य किसी बाहर के आदमी को यह प्रसाद नहीं दिया जाता है चाहे वह कितना ही घनिष्ठ क्यों न हो। वैसे कहीं–कहीं पर इस पूजा को 'बाबू की दोज' भी कहा जाता है।

आटे की छोटी–छोटी गोली बनाने के बाद इन :'गुलेरी' को कढ़ाई में तेल में निकाला जाता है उसे कढ़ाई में तलने का काम हर कोई के बस की बात नहीं होती है, उसे घर की बुर्जग महिला जो घर की मालकिन भी होती है वह ही निकाल पाती है और कभी–कभी तो शुद्धता आदि का ध्यान नहीं रखा गया तो तो ये गुलेरी कढ़ाई में डालते ही दूर–दूर तक छिटक जाती है तब ऐसा माना जाता है कि कुछ न कुछ गलती जरूर हो गयी है, और कुल देवता नाराज हो गये हैं, इसे 'मेर फूटना' कहा जाता है। इसे बड़ा ही अशुभ माना जाता है फिर कुल देवता से अज्ञानता वश हुई भूल के लिए माफी माँगी जाती है तथा फिर से नये तेल में उन्हें पूरी शुद्धता के साथ घर के किसी दूसरे के हाथ से गुलेरी निकालने का कार्य कराया जाता है।

कुछ लोग गाँव में अपने कुलदेवता के नाम का 'गढ़ा' (एक प्रकार का काला या लाल रंग का धागा) भी बाँधते हैं जो कि खास तौर पर जब बाँधा जाता है जब घर में किसी की तबियत अचानक खराब हो गयी हो या कोई ऊपरी हवा आदि का चक्कर हो या फिर किसी महिला के बच्चे होना हो, तब उस महिला को ये गढ़ा इस उम्मीद से बांधा जाता है कि हमारे कुल देवता जच्चा और बच्चा दोनों की रक्षा करेंगे। कभी–कभी घर के किसी सदस्य की अचानक रात में बहुत तबियत खराब हो जाती है या पेट आदि में तेज दर्द

होने लगता है तो इतनी रात में डॉक्टर के पास नहीं जा सकने के कारण घर के लोग अपने कुल देवता के नाम की 'भभूत' उस पीड़ित को थोड़ी खाने को दे देते हैं और थोड़ी सी उके सर पर भी लगा देते हैं। हमे आश्चर्य तो तब होता है जब कोई हमें यह सुनाता है कि हमें उस भभूत से उसे आराम मिल गया था। गाँवों में तो ऐसा अक्सर ही सुनने में मिल ही जाता है।

बुन्देलखण्ड के कुछ प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय लोक देवता या इन्हें कुलदेवता भी कहा जाता है जो इस प्रकार है – १. बीजासेन, २. घटौरिया बाबा, ३. पीर बाबा, ४. पठान बाबा, ५. मेहतर बाबा, ६. रक्कस बाबा, ७. नट बाबा, ८. कारस देव, ९. खाती बाबा, १०. कुलदेवता, ११. गौड़ बाबा, १२. सती चौरा, १३. कल्याण सिंह बाबा, १४. वरम देव, १५. हरदौल, १६. भैसासुर, १७. आसमाई, १८. दरयाव सिंह बाबा, १९. गेंवड़े के देवता, २०. खैरापति, २१. गौसाइन माता, २२. गौसाई बाबा, २३. वर्वरीक, २४. गौड़देव, २५. मेहर बाबा, २६. बड़ी माता, २७. छोटी माता, २८. भगवंतपुरा के बब्बा, २९. अब्दापीर, ३०. खेरे वारे आदि।

कुछ तो सत्यता इन लोक देवता एवं कुल देवताओं में अवश्य है तथा उनका भी कोई न कोई वजूद अवश्य है तभी तो वे आज भी हमारी अनेक पीढ़ियों से निरन्तर पूजे जा रहे हैं। ये कुल देवता हमारे आस्था के केन्द्र बने हुए हैं आज भी प्रत्येक घर में ये आदर के साथ पूजे जाते हैं और गाँवों में तो इन्हें सबसे पहले ही पूजा जाता है फिर अन्य प्रमुख देवताओं को। हम प्रत्येक शुभअवसर पर उन्हें याद करते हुए उनका आशीर्वाद अवश्य लेते हैं।

– शिवनगर कॉलोनी, टीकमगढ़

है ईश्वर धौं काय करइयाँ

– चन्द्रिका प्रसाद सक्सेना 'कीर्ति'

घरइ में भैयइ भैया लड़ रये, है ईसुर धौं काय करइयाँ।
जिन बातन में कुतर देश खाँ, कटुता की कैंची से काटो।
भारत माँ की दोउ बहियन खाँ, हिन्दू–मुसलमान में बांटो।
वेई अपघातें अभऊँ चलत हैं, जाति–पाँति की बढ़ीं कुरइयाँ।
है ईसुर धौं काय करइयाँ।।१।।

घूस घुसी है दीवारन में, भितरइ–भीतर पोल करत है।
हत्यारन कौ मूंड़ न टभकत, होम करत में हाथ जरत है।
मिट गई कनिकायदा सबरी, भये कोतवाल सबइ के सइयाँ।
है ईसुर धौं काय करइयाँ।।२।।

जी की लाठी भैंस उन्हइ की, सब कोउ बस पैसइ खाँ चीन्हत।
ककरी के चोरन खाँ फाँसी, हर्षद सबरी बखरी लीलत।
लुंगरन की मूंछें तिईयानी, दिल्ली के डारे गरबहियाँ
है ईसुर धौं काय करइयाँ।।३।।

बक्का भये तला के राजा, भूखे हंसा काई खाबें।
शीश उठावे जोइ मछरिया, कौवा छीन झपट लै जावैं।
घामन मरै कोयरिया प्यासी, बैठे बाज बरा की छहियाँ।
है ईसुर धौं काय करइयाँ।।४।।

– बाँदा (उ.प्र.)

बुन्देली कटाक्ष

– कल्याण दास साहू 'पोषक'

भ्रष्टो के ही सामने, झुकत 'हमाओ' सीस।
भौत मिलत है सान्ती, पा 'उनकी' आसीस।।
पा 'उनकी' आसीस, व्यर्थ है, करबौ तीरथ।
गारण्टी सें मिलत, मोक्ष! बढ़जातइ कीरत।।
'पोषक' पारय पुन्न, पाँव पर–पर दुष्टों के।
कररय जीवन सफल, खलीता भर भ्रष्टों के।।

गुटका कभउँ न छोड़ियौ, भौत फायदेमन्द।
इसीलिए नइं लग रऔ, गुटकन पै प्रतिबन्द।।
गुटकन पै प्रतिबन्द, 'न' लगबै सबकी इक्षा।
बच्चन खों भी खूब, मिलै खाबै की शिक्षा।।
'पोषक' मद्दो–जहर, रोज गुटकौ बेखटका।
अस्पताल कौ डोल, करौ खा–खा कें गुटका।।

दारू पीकें बेफिकर, डरे रहौ माँ बाँय।
चाहे कुत्ता मौंइ पै, लघुशंका कर जाँय।।
लघुशंका कर जाँय, घिनापन तुमें पुसावै।
रइओ इतनें धुत्त, 'कोउ भी' पार न पावै।।
'पोषक' सीख न मान, झगड़बे रऔ उतारू।
लरकन खों भी खूब, सिखै दो पीबौ दारू।।

रिश्वत कभउँ 'न' छोड़ियौ, बेफिकरी सें खाव।
बेदर्दी सें चींथिओ, लगा–लगा कें दाव।।
लगा–लगा कें दाव, कभउँ 'ना' करिओ नागा।
बनिओ टाड़ी, गीद, चोंखरे, मच्छर, कागा।
'पोषक' मानौं सीख, सुदारौ अपनी किस्मत।
'जा–मानव' की जौंन, मिली है खाबे रिश्वत।।

दहेज के सम्बन्ध में, है विशेष अनुरोध।
दैबे कौ जब टैम हो, जमकें करौ विरोध।
जमकें करौ विरोध, बनों सई आदर्सवादी।
लेती बैराँ माँग, बिना करिओ 'ना' शादी।।
'पोषक' पैल धराव, रकम मय साज–सेज के।
मौका–चौंका देख, विरोधी रऔ दहेज के।।

ओरे लल्ला! बुरऔ है, जौ कुरसी कौ रोग।
मछरी–से तलफन लगत, अच्छे–खासे लोग।।
अच्छे–खासे लोग, पटी–पाला सें नबरे।
जितै बरत है उतइं, तापबे ठाँड़े सबरे।।
तज भ्राता कौ संग, अनुज भी झाड़त पल्ला।
कैसौ आगव बखत, देखलो! ओरे लल्ला।

शिक्षा चौपट कर दयी, रच–रच कें षड़यन्त्र।
चौतरफा सें कर दियौ, शिक्षक खों परतन्त्र।।
शिक्षक खों परतन्त्र, सत्रा खसम बनादय।
करदव इतनौं व्यस्त, सैकरन काम हनादय।।
शिक्षक पढ़ा न पाय, जेइ शासन की इक्षा।
राजनीति की सौत, मताई होगई शिक्षा।।

– किले के पास, पृथ्वीपुर (टीकमगढ़)

एक भूली–बिसरी बुन्देली लोक कथा –

मऊरानीपुर के ठग

– डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे

भौत दिना पैलऊं की बात है। मऊ गांव में एक आदमी हतो ऊ कौ नाव हतौ सुकैयां। ऊ के इतै थोरी–सी किसानी की जांगा हती सो ऊ किसानी करत तो उर अपने घर कौ गुजारौ करत तो। ऊ के घर में ऊ और ऊकी घरवारी संगै एक बिटिया हती। जब ऊकी बिटिया सियानी हो गई सो ऊ अपनी बिटिया के लानें घर–वर ढूंड़न लगो। ढूंड़त–ढूंड़त ऊखौं पतौ लगो कै रानीपुर के रंखैंया को लरका ब्याव जोग है। सो सुकैयां रंखैयां के इतै रानीपुर खाँ निग चलो। रानीपुर कौ रंखैयां सोऊ किसानी करत तो। थोरी–सी किसानी की जांगा ऊके लिंगा सोई हती। सो ऊ सोई उत्तई में अपने घर की गुजर–बसर चलाऊत तो। ऊके घर में ऊ उर ऊकी घरवारी संगै एक लरका हतो। लरका ब्याव जोग हो गव तो। सो ऊ येई बाट में हतो कै कौनऊं नौनी बिटिया बारौ और पईसा बारौ घर मिल जातो तो लरका कौ ब्याव हो जातो। पै रंखैयां हतो भौत चतुर आदमी। ऊ दो ठऊ आ खरा पालैं तो। सो एक खरा खौं ऊनैं अपने घरै बांदो और एक खरा खाँ अपने संगै लैकैं खेत पै चलो गव। खेत पै पौंच कै ऊनैं एक जांगा ऊ खरा खौं बांद दव और अपने काम में लग गव। जबई कैं सुकैयां रंखैयां कौ पतौ लगाऊत ऊ के खेत पै जा पौंचो। दोई जनन में आवभगत भई। बिड़ी–तमाखू की भई। ब्याव कौ बात–बतकाव भव। सो सुकैयां ने का करो कै ब्याव के मद्दैं रंखैयां खौं सूखी हरदी कौ टीका बता दव। सो रंखैयां नें सुकैयां के लाने ब्याव के मद्दैं मुहूरत सोदन कौ टिया दै दव उर सुकैयां खौं ठगबे की जुगत बनाकैं ऊखौं अपनौं खरा ब ता दव। और ऊसें कई कै खरा कै हांतों घरै रोटी बनाबे की खबर पौंचाऊत जौ लौं अपन सपरें–खोरें उर घरै पौंचें तो लौं घरै रोटी बन जैय। रंखैयां ने सुकैयां सें ऐंसी कै कैं खेत पै बंदो ऊ खरा छोर दव। सो ऊ खरा हतो सो जाकें जरियन–छेवलियन में बिला गव। रंखैयां और सुकैयां दोई जनैं नरवै सपरबे चले गये। सपर–खोर कैं रंखैयां सुकैयां खौं लुबायें अपने घरै पौंच गव। घरै रोटी बनी मिली सो दोई जनैं रोटी खाबे बैठ गये। रंखैयां की घरवारी नैं दोई जनों खौं रोटी परस दई सो दोई जनैं रोटी खान लगे। रोटी खातन सुकैयां की नजर परी रंखैयां के घरै बंदे दूसरे खरा पै। सो सुकैयां नें रंखैयां सें कई कै ऐजू तुमाव खरा तौ बड़ौ नौनों है। भारी काम सटाऊत। देखो तो ऊनें खेत से आकैं घरै रोटी बनाबे की खबर दै दई। जौ तो बड़े काम कौ खरा है। अटका सटाबे जौ तो मोरे लिंगा भव चाइये। जा सुनतनई रंखैयां सुकैयां सें बोलो–ठीक है। सौ कल्दार दै घालौ उर लै जाव खरा खौं। सो रोटी खा–पीकें सुकैयां नें रंखैयां खौ सौ कल्दार दै दये और अपने घरै चलो। घरै पौंचत–पौंचत रात हो गई। सो खरा बांद कैं सुकैयां सो गव। भुनसारैं उठकैं ऊनें अपनी घरवारी सैं कई कै खेत जात हों दिन डूबे लौं आंहौं। उर ऊ खरा खौं लै कैं खेतै जा पौंचो। खेत मैं एक जांगा खरा बांद दव और काम करन लगो। दुपर होत लौं ऊनें खरा छोरो और ऊसें कई कै जा घरै जाकैं रोटी बनाबे की कईये जौ लौं मैं सपर–खोर कैं आऊत हों। सुकैयां ने जैंसेई खरा खौं छोरो सो ऊ खरा उतै सैं दौरो और जाकें डांग में बिला गव। कछू देर में सुकैयां काम से निपट कैं नरवा में सपरत खोरत घरै पौंच गव। सुकैयां खौं देख कैं ऊकी घरवारी बोली कै मैं तो जानी कै तुम दिन डूबे लौं आ हो सो रोटी दिन डूबेई बनैं हौं। सुकैयां बोलो – काये का खरा नैं नईं बताई तुमैं। बा बोली – खरा तौ इतै आव लौं नईयां। जा सुनतनई सुकैयां कौ जी धकर–पकर होन लगो। और खुंस चड़ी सो ऊनें घरवारी सैं कई कै रोटी अब तैं बनैये नैं आज मैं खेतई पै बस हौं घरै नैं आ हौं। और खुनसियानौं – सौ ऊ फिर खेतै जा पौंचो। खेत पै जाकें ऊ अपने कामैं लग गव। जबई सुकैयां सैं ब्याव के सोदन की तै–तुवा करबे रंखैयां ऊ के लिंगा जा पौंचो। रंखैयां खौं देख कैं सुकैयां मनई–मन भौत खुश भव ऊ सोई भौत चतुर हतो सो ऊनें सोई रंखैयां खौं ठगबे की जुगत बनाकैं घोकी कै अब कछू पतौ चलै ईखौं कै 'आव ऊंट पहार के नैंचें।' उर ऐंसी घोक कैं बौ खुशी के मारैं झूमन लगो। खुशी सैं दोइअन में आवभगत भई। कछू उखटा–पचौरे भये और कछू ब्याव कौ बात–बतकाव भव। फिर रोटी खाबे रंखैयां खौं लुबाकैं सुकैयां घरै जा पौंचो। घरै जाकैं सुकैयां नैं मसकां घरवारी सैं कछू कानाफूसी–सांठगांठ करी। और फिर एक डंडा उठाकैं ऊ घरवारी खौं झूठमाट कौ मारबे दौरो। घरवारी जाकैं कुठिया कै पाछूं झूटमाट की चुप्पी सादें लोट गई। सुकैयां झूटमाट कौ कुठिया में डंडा मार–मार कैं लगो चिल्लियाबे कै तैंने रोटी काये नईं बनाई। चिल्लियाबौ सुनकैं रंखैंया सोई उनके लिंगा पौंच गव। उतै सुकैयां की घरवारी खौं चिमानौं धरती पै डरो देखो सो ऊनें जानी कै मर गई जा तौ। सो घबरा कैं ऊनें सुकैयां सैं कई के ऐजू तुमनें तो ईखौं मारई डारो। सुकैयां बोलो – तुम चिंता नैं करो। ऐई डंडा सैं ऊये अबई जिंदा करैं देत हम। उर ऊनें डंडा घरवारी के नकुअन पै धर कैं केई कै सूंग सूंग सूंग डंडा, मरी–मराई हो जा जिंदा। सो बा सुकैयां की घरवारी ठांड़ी हो गई। डंडा कौ जौ चमतकार देख कैं रंखैयां ऊ डंडा पै रीझ गव। उर ऊ मनई–मन धोकन लगो कै जौ चमतकारी डंडा मोरे नौं भव चाइये। घोकत–घोकत ऊ सुकैयां सैं बोलो कै ई डंडा की मोए भौत जरूरत है, तुम जौ डंडा मोए दै घालौ। सुकैयां तो ऐई बाट में हतो सो ऊनें रंखैयां सैं कई कै ठीक है। सवा सौ कल्दार दै घालौ उर डंडा लै जाव। रंखैयां नें तुरतई सवा सौ कल्दार सुकैयां खौं दये उर ब्याव के सौदन कौ टिया बड़ाकैं ऊ अपने घरै चलो। घरै पौंचत–पौंचत ऊए दिन डूब गव। गैया लगाबे की बेरा हती। सो घरै पौंच कैं ऊ गैया लगाऊन लगो। गईया नें उये लात मार दई सो ऊए खुंस चड़ आई। सो खुंसियाकैं ऊनें डंडा उठाव उर लगो गैया खौं मारबे। मारत–मारत गैया हती

सो मर गई। जौं लौं ऊ की घरवारी आ गई उतै। ऊ की घरवारी नैं गईया खौं मरौ डरौ देखो सो बा रंखैयां सैं बोली कै तुमने तो ई गईया खौं मांडारौ। रंखैयां बोलो – तुम चिंता नैं करौ। ऐई डंडा सैं गईया खौं अबई जिंदा करें देत हम। उर रंखैयां नें डंडा गईया के अकुअन पै धर कैं कई कै सूंग सूंग सूंग डंडा, मरी–मराई हो जा जिंदा। अकेलें गईया ठांड़ी नैं भई सो नैं भई। ऊऐ गईया की हत्या लग गई सो ऊनें गईया की हत्या कौ किरियाकरम करौ। उर फिर ब्याव के सोदन की तै–तुवा करबे ऊ सुकैयां के इतै फिर जा पौंचो। बा बेरां गोव के एक सेठ की अरथी जा रई ती। सुकैयां सोई नकरिया में शामिल हतो, रंखैयां ने सुकैयां खौं नकरिया में देखो सो बौ सोई उतई जा पौंचो। ऐसें दोई जनें सेठ की अरथी में जुर गये। उर कछू देर में सेठ की अरथी खौं नकरिया दै कैं बे घरै आ गये। फिर दोई जनों में कछू उखटा–पचौरे भये। कछू ब्याव के सोदन कौ बात–बतकाव भव। और फिर कछू कानाफूसी–सांठगांठ करकैं दोई जनें ठगी की जुगत बनाकैं मरघटे जा पौंचे। उर जिते सेठ बरो हतो उतै की जरियन में रंखैयां लुक गव। रंखैयां खौं मरघटन की जरियन में लुको छोड़ कैं सुकैयां सेठ के घरै जा पौंचो। सेठ के घरै जाकैं सुकैयां धांयें दै कैं रोऊन लगो। उर कन लगो कै मोरे प्यारे सेठ चले गये संगै मोरी नगदी लै गये। सेठ के लरका नैं जा सुनीं सो ऊ सुकैयां सैं बोलो कै काये भैया ऐंसी काये कै रये। सुकैयां हतो सो धांयें दै–दै कैं रोऊत–रोऊत बोलो – कैंसें कायें अब तुमसें प्यारे जमा हते दस हजार हमारे। उर धांयें दै–दै कैं सुकैयां लगो चिल्लियाबे। हल्ला सुनकैं उतै मुतके आदमी जुर गये। पंचयात हौन लगी। पंचयात में सुकैयां नें पंचों सें कई कै सेठ लौं मोरे दस हजार नगदी कल्दार जमा हते उर सेठ मर गये। मोंखां मोरी नगदी चानें। इतै कै भान चाय उतै ऊंग जायें पै मैं तो अपनी नगदी लै कैं जैं हौं। भारी मैनत सैं जोर पाई ती मैंने। सांची कमाई की नगदी मोरी। नैं मानों तो चलकैं सेठ के चेटका सैं पूंछो। पंचों ने बात मान लई। उर सुकैयां सैं कई कै हां अगर सेठ कौ चेटका कै दै है तो तुमाई नगदी जरूरई मिल है। सब जनैं मरघटा जा पौंचे। सेठ के लरका नैं सेठ के चेटका लौं ठांड़े होंके कई कै काये दद्दू सुकैयां की दस हजार की नगदी तुमाये लौं जमा हती का? सो जरियन में लुके रंखैयां नें कई – हव बेटा। सुकैयां की नगदी ऊखौं दै घालौ। सेठ के लरका नैं जा सुनकैं सुकैयां खौं दस हजार नगद कल्दार दै घाले उर पंचों समेत ऊ उतै सें घरै चलो गव।

अब सुकैयां हतो सो दस हजार की नगदी लै कैं रफूचक्कर हौन लगो। सो रंखैयां तुरतई जरियन में से निकरकैं सुकैयां के पाछूं–पाछूं दौरो। उर नाहो–माहो दौरत दौरत ऊ सुकैयां की गैल के आंगूं जा पौंचो। उतै पौंच कैं ऊनें रंखैयां खौ पकरबे की जुगत बनाकैं का करो कै अपनों एक जूता एक जांगा उतार डारो उर उतै सैं तनक दूर आंगे जा कैं दूसरौं जूता उतार डारो। फिर ऊ उतई जरियन में लुक गव। सुकैयां जब उतै सैं दौरत भव निकरौ और ऊनें गैल में डरो एक जूता देखो सो ऊ मन में जा घोकन लगो कै अगर दो होते तो ठीक रती उर ऐंसी घोकत जूता उतई डरो छोड़ कैं आंगें चलो। तनक दूर आंगें पौंचो सो ऊखां एक दूसरौ जूता डरो दिखानौं। दूसरौ जूता देखकैं ऊनें घोकी कै अगर ऊ पैलऊं कौ जूता होतो तो जोड़ी बन जाती। जा घोककैं ऊनें नगदी दस हजार कल्दारों की पुटरिया धरी उतई उर ऊ पैलां बारौ जूता उठाबे उतै सें लौट परो। ऊ पुटरिया धर कैं उतै सैं पछारूं लौटोई है कै जौ लौं रंखैयां नें जरियन में से निकर कैं पुटरिया उठाई उर उतै सैं रफूचक्कर हो गव। उर जाकें ऊ जरियन में लुक गव। सुकैयां नें लौट कैं उतै देखो सो बौ दांतन से। उंगरिया दबा कैं रै गव, उर फिर रंखैयां खौं ढूंड़न लगो। इत्ते में ऊऐ उतई गरे में घंटी बांदें एक बैला चरत दिखानों सो ऊनें रंखैयां खौं पकरबे की जुगत बनाकैं का करो कै ऊ बैला के गरे सें घंटी छोर कैं अपनी करयाई में बांद लई। उर फिर नाहों–माहो दौरत–दौरत लगो रंखैयां खौं ढूंड़बे। दौरत–दौरत ऊ एक जांगा जरियन लौं जा पौंचो। उतईं रंखैयां लुको तो सो रंखैयां नें घोकी कै कौनऊ बैला आय दौरत आउत। जा घोक कैं रंखैयां नें तुरतई ठांड़े होकैं कई कै हरे–हरे का ऊपरई चड़ है। सो सुकैयां नें रंखैयां खौं धर पकरो। उर ऊ सैं बौ नगदी मांगन लगो। ऊ नगदी के लानें दोई जनें लर परे। मारा–मारी हौन लगी। दोई जनें गुत्थमगुत्था हो रये ते कै जबई उतै राज दरबार के सिपाई आ गये। सिपाईअन नें उनें परो उर राज दरबार में लै गये। राजा नें दोई जनों की बातें सुनीं उर मामले की छानबीन करी। सो दोई जनों की ठगी पकरी गई। राजा ने नगदी जब्त करी उर उनें कारागार में डार दव। ऐंसें मऊरानीपुर के ठग हते सो कारागार में जा पौंचो। किसा हती सो निपटी खाव गुर की पट्टी।

– चौबे क्लीनिक, इमिलिया

पो. बरखिरिया, जिला ललितपुर उ.प्र.

(बुन्देलखण्ड के स्वतंत्रता सेनानी स्व. चतुर्भुज पाठक व स्व. बाबू प्रेमनारायण खरे को काव्य श्रद्धांजलि)

श्रद्धांजलि

– डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'

'बापू' की राह चल पड़े, कितने विशाल थे?
ईमानदार, राष्ट्र–भक्त, वेमिशाल थे।
वे पाटते रहे सदा जनमन की दूरियाँ।
औ बाँटते रहे सदा जन्मत की हूरियाँ।

वे जुल्म के खिलाफ फरिस्तों की ढाल थे।
ईमानदार, राष्ट्र–भक्त, वेमिशाल थे।
'विनोबा' व 'जयप्रकाश' के अनुयायी आप थे।
संघर्ष के प्रतीक बन झेले सब श्राप थे।

वे बन नज़ीर चल दिए गुदड़ी के लाल थे।
ईमानदार, राष्ट्र–भक्त, वेमिशाल थे।
श्रद्धा नमन 'प्रसाद' का भू को संवार दो।
यदि स्वर्ग है कहीं तो धरा पर उतार दो।

वट वृक्ष बन के झूमते दलितों के भाल थे।
ईमानदार, राष्ट्र–भक्त, वेमिशाल थे।

– शहीद स्टेडियम के पास, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली लोक कथा –

बिन्नू–भैया की उरजन

– आदित्य कुमार तिवारी 'रिंकू'

एक बेर का भव कै एक गांव के बायरैं एक कुआ पै एक पनहारन बिन्नू पानी भर रई ती। जबईं कैं कलेबा की पुटरिया लयैं ऊकौ भैया सोई उतई कुआ पै आ गव। भैयन नें घोकी कै ऐई कुआ पै बैठ कैं कलेऊ कर लेवैं इतई पानी है। जा घोक कैं भैयन कुआ पै बैठ कैं उर कलेबा की पुटरिया छोर कैं भुंजे मौवा खाबे बैठ गव। जैंसई ऊनें खाबे कौर उठाव बैंसई ऊ भैयन सैं बा बिन्नू बोली –

बा के फलन कछू और कहत
उर फूलन कहत कछू और
ऐसी चीज दै घाल मोय तैं
फिर उठईये भैयन कौर।।

भैयन नैं बिन्नू की बात सुनकैं कौर जाँ कौ ताँ धर दव और ऊ बिन्नू की बात खौं मनई मन घोकन लगो। सो बिन्नू नैं भैयन सैं कई कै जौ लौं तैं मोरी बात खौं घोकिये तौ लौं मैं पानी कौ हंड़ा घरै धर कैं फिर आऊत इतईं। और बा बिन्नू पानी कौ हंड़ा उठाऊन लगी। जैंसई ऊनें हंड़ा उठाव बैंसई ऊ बिन्नू सैं बौ भैयन बोलो –

''पातालै बा कौ घौंसला
उर आकासै बा कौ अण्डा
ऐसी चीज दै घाल मोय तैं
फिर उठईये बिन्नू हण्डा।

भैयन की बात सुनकैं बिन्नू नैं पानी कौ हंडा जाँ कौ ताँ धर दव। और बा भैयन की बात खौं मनई मन घोकन लगी। दोई जनैं एक–दूसरे की बात खौं घोकबे लग गये। घोकत–घोकत मुतकी देर हो गई। और बे एक–दूसरे की बातन में उतईं उरज कैं रै गये। सो कछू देर में उनकी मताई कुआ पै आ गई। और ऊनैं उनसैं पूछी – ''काये हौ बिन्नू–भैयन! इतई कुआ पै बैठ कैं काये रै गये।''सो भैयन नैं अपनी उरजन मताई खौं सुनाई। भैयन की उरजन सुनकैं मताई ऊसैं बोली –

ओई के फूलन मद मस्त घुमत
ओई कै फलन पिरत है घानी
बनैं फूल सैं मदरा–मुरका
फलन तेल–खरियानी।

मताई की जा बात सुनकैं भैयन चिमा गव और ऊ मताई की ई बात खौं सोई घोकन लगौ। सो औसर पाकैं बिन्नू नैं अपनी उरजन सोई मताई खौं सुना दई। बिन्नू की उरजन सुनकैं मताई ऊसैं बोली –

ओई पाताले ओई आकासै
ओई कुआ कौ सानी
बनैं ओई सैं नदियाँ–नारे
और जगद् जिंदगानी।

मताई की जा बात सुनकैं बिन्नू चिमा गई और बां मताई की ई बात खौं सोई घोकन लगी। घोकत–घोकत दोई जनैं खौं कुल्ल देर हो गई पै उनकी समझ में कछू नैं आई। सो फिर दोई जनैं मिल कैं मताई सैं बोले –

ठाई–ठाई बता मतारी
हम अबै कछू नईं जानी
की के लानें का दै घालैं
होये हमें आसानी।

सो बिन्नू–भैया की आसानी के लानें मताई उनसैं फिर बोली –

अरे एक के हांतै मौवा
उर एक के हांते पानी
चीजैं अपनी तुम दै घालौ
इक–दूजे खौं जानी।

मताई की जा बात सुनकैं भैयन नैं बिन्नू खौं मौवा दै घाले और बिन्नू नैं भैयन खौं पानी दै घालौ। बिन्नू–भैया की उरजन सुरज गई। सो मताई उनसै फिर बोली –

जान बुझौअल एक पहेली
एक–दूजे नैं जानी
अब तैं भैयन मौवा खाले
तैं भर चल बिन्नू पानी।

मताई सैं सीख पाकैं बिन्नू–भैया अपने–अपने कामैं लग गये। किसा हती सो निपटी, लेव प्रेम सिखन की पट्टी।

– तिवारी मुहल्ला, शाहगढ़
जिला सागर, म.प्र.

वीर बुन्देला

– पं. श्याम सुन्दर शुक्ल

कछु बुन्देलन के सुभाव की, चाल चलन की बातें।
छंद बनाय सुनाओं, उनें छर–छंद न तनक सुहाबैं।।
एक बेर जो खा लेबें तो सौ सौ बेर निभाबैं।
एक बेर ठन जाय न मानें, भलें कुबेर मनाबैं।।
हर त्यौहार मनाबैं हर हांकत हर सदा मनाबैं।
हर हर महादेव गरजें दुसमन रन में थर्राबैं।।
मन आबै मन की कर डारैं मन में तनक न राखैं।
मान पान सें रीझैं रसिया मन भर मौज मनाबैं।।
बारे सें जे बारे में खेलबे भूल न पाबैं।
बारे वीर बुन्देला जे धरती पे सीस चढ़ाबैं।।

– शुक्ल सदन, मां गंज, नं. १, गार्ड लाइन
दमोह (म.प्र.)

अजयगढ़ नरेश रनजोर सिंह और महारानी कमल कुंवरि की रचना

– उदय शंकर दुबे

राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य के सृजन–संवर्द्धन और विकास में बुन्देलखण्ड की छोटी–बड़ी सभी रियासतों का सर्वाधिक योगदान रहा है। बुन्देलखण्ड की अधिकांश रियासतों के अपने कुतुबखाना (ग्रंथागार) थे जिनमें हाथ की लिखी पुस्तकें सुरक्षित रखीं जाती थीं। इनमें पन्ना, छतरपुर, चरखारी, दतिया और ग्वालियर के ग्रंथागार विशेष उल्लेखनीय हैं। इन प्राचीन ग्रंथागारों में सुरक्षित कलात्मक हस्तलिखित ग्रंथों को देखकर आश्चर्य होता है। मुद्रण कला के विकास के साथ इन रियासतों ने अपना निजी मुद्रणालय भी स्थापित किया जिनमें राजकाज संबंधी कागज–पत्रों के साथ ग्रंथों का भी प्रकाशन होता रहा।

महाराज छत्रसाल द्वारा अपने बाहुबल से स्थापित विशालराज्य समय चक्र के प्रवाह में कई हिस्सों में बंट गया। जैतपुर के जगतराज के नाती और कीरत सिंह के पुत्र गुमान सिंह को अजयगढ़ की गद्दी मिली।[१] आगे चलकर सन् १८५५ ई. में रनजोर सिंह इस गद्दी के अधिकारी हुये।[२] रनजोर सिंह स्वयं अच्छे कवि थे। उनकी महारानी कमल कुंवरि भी कवयित्री थीं। राजा रनजोर सिंह द्वारा लिखित 'रनजोर विलास' और महारानी कमल कुँवरि द्वारा रचित विनय चन्द्रिका ग्रंथ की मुद्रित प्रतियां मेरे संग्रह में सुरक्षित हैं। इन्हीं दो ग्रंथों के विषय में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

श्री हरि विष्णु अवस्थी ने अपने 'साहित्य को पन्ना का अवदान' शीर्षक लेख में रनजोर सिंह द्वारा रचित षोडश ग्रंथों की सूची दी है।[३] इससे उनकी साहित्यिक अभिरुचि और काव्य प्रतिभा का पता लगता है। उनके द्वारा लिखे गये 'पशु चिकित्सा' और उपवन विनोद जैसे ग्रंथ आज भी बड़े उपयोगी हैं।

रनजोर विलास–राजा रनजोर सिंह द्वारा रचित यह ग्रंथ सन् १८९९ ई. में रियासत के डायमण्ड जुबली प्रेस से छपा था। यह विभिन्न राग–रागनियों में लिखा गया है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर ३२ पृष्ठ हैं। मुख पृष्ठ लीथोटाइवर (शिला यंत्र) से छपा है तथा शेष पृष्ठ लेटर प्रेस से मुद्रित हुये हैं। मुखपृष्ठ पर ग्रंथ और ग्रंथकार के नाम के साथ ग्रंथ का विषय और प्रेस का नाम है – यथा

''रनजोर विलास'' इसमें गान विद्याभिलाषी रसिकजनों के विनोदार्थ अनेक राग रागनी विचित्र चीजैं बनाकर लिखी गई हैं जिसको श्रीमन्नमहाराजाधिराज श्री सवाई महाराज सर रनजोर सिंह साहिब बहादुर के.सी.आई.ई. बुन्देलखण्ड देशाधिकारी जगत विख्यात रियासत अजयगढ़ ने बनाकर निज यंत्रालय डायमिन्ड जुबली प्रेस रियासत अजयगढ़ में मुद्रित कराया – सन् १८९९ ई.।

ग्रंथकार ने भूमिका में लिखा है कि ''परमात्मा को प्रणाम करके प्रगट हो कि मैंने जो यह छोटी सी पुस्तक बनाई है इसमें गाने के ६२ पद हैं जो पद जिस राग रागनी के संबंध पर बनाया है उसका नाम भी लेख में दरशाया गया है यद्यपि इसका अभिमान नहीं कर (सक्ता) सकता कि जो पद मैंने बनाये वह अर्थ भाव छन्द प्रबंध में उमदा हों किंतु वाणी सफल करने के हेतु ईश्वर का गुणानुवाद गाया है आशा है गान विद्याभिलाषी भक्तजनों के सन्निकट यथा योग्य..........पावै तारीख ३० जून सन् १८९९ ई.। (ग्रंथकर्ता) सवाई महाराजा सर रणजौर सिंह बहादुर के.सी.आई. ई. रियासत अजयगढ़।

कवि रनजोर सिंह ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि रनजोर विलास में ईश्वर के गुणानुवाद से संबंधित ६२ पद विभिन्न राग रागनी में हैं। इस लघुतम भूमिका से यह भी पता चलता है कि सन् १८९९ ई. में बुन्देलखण्ड में हिन्दी भाषा का प्रारंभिक स्वरूप कैसा था। ग्रंथ में प्रयुक्त राग–रागनियों का नाम इस प्रकार है – राग खम्भावत ताल झपताल, ध्रुव पद चौताला, राग खम्भावत ताल दादरा, राग खम्भावत एक ताल, राग खम्भावत ताल तेवरा, राग कामोद ताल रूपक, बधाई, राग बहार धीमा तिताला, दादरा, राग देश ताल रूपक, प्रबंध, राग खम्भावत ताल त्योरा, होली दीप चंदी राग काफी, झूला, वनरा, रेखता।

विषय–रनजोर विलास भक्तिपरक रचना है। ग्रंथारंभ में कवि ने विघ्न विनायक गणेश का स्मरण किया है। पुनः भगवान शंकर और पार्वती का यशगान है। कवि ने एक ही पद में दशावतार का वर्णन किया है। इसके पश्चात् कवि श्रीकृष्ण और राधा की केलि क्रीड़ा श्रीकृष्ण के जन्म पर बधाई, यशोदा जी का कृष्ण के प्रति मातृभाव वर्णन, रासवर्णन, गोपियों का उद्धव से श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजना, ब्रज में होली, हिंडोला वर्णन। एक पद में कवि ने भगवान राम का भी स्मरण किया है। अधिकांश पद श्रीकृष्ण लीला से संबंधित है। दो–एक पद यहाँ प्रस्तुत हैं–

(होली दीपचंदी राग काफी)

केशर की रंग बोरी फिरै वृशभान किशोरी।
सब सखियन के मध्य सलोनी राजत अति तन गोरी।।
दै दै हल्ला लला नंद ऊपर कहि कहि हो हो होरी।
अहो बृजराज है मोरी गावत फाग सुनावत गोरी –
ज्यों डफ लगत टकोरी।
हाथ उठाय उठाय स्याम के सनमुख मारत झोरी –
भरी गुलाल न थोरी।
अति ही धूम मचाय छाय नभ लाल लाल चहुं ओरी।
धूंधुर में धस धाय दगा में लाल पकर बरजोरी –
कहयो तुमहूं करी चोरी।
पहिराऊं चूनर चटकीली दै काजर की कोरी।
धारो शीस मुकट हो मुरली ओढ़ो पीत पिछोरी –
करौ सब नयो री।

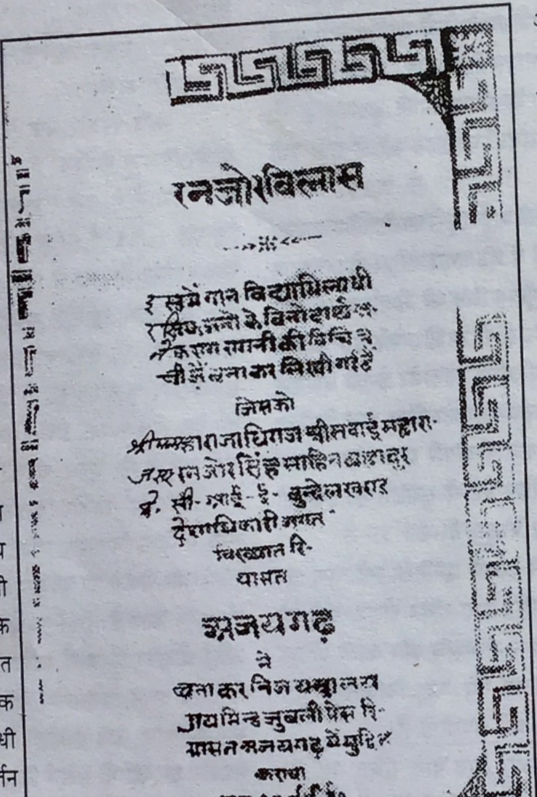
श्री रणजोर सखी ललितादिक कहै निहोर निहोरी,
ये वृषभान कुंवर यह सुंदर नंद महर को छोरो रहै
चिरजीवत जोरी।। पद संख्या ३२

कुंज वन दोऊ भीजे गात।
प्रेम विवस राधा राधावर खरे हंसत बतरात।।
मानो छोड़ चपलता दामिन थिर भई घन संग सात।
उड़त फुहार पवन के झोकन तिय मुख मुर मुर जात।।
पोंछत पिया पीत पट से अरु आड़ करत निज हाथ।
श्री रणजोर स्याम स्यामा छवि
देखत बनत प्रभात।।

— पद संख्या ४१

उपर्युक्त दोनों पदों में राजा रनजोर सिंह का कवि स्वरूप स्पष्ट दिखता है। ऐसा लगता है कि किसी पुष्टिमार्ग के कवि के कृष्ण लीलापरक पद हैं।

महारानी कमल कुंवरि कृत विनय चन्द्रिका — इस ग्रंथ का भी सन् १८९९ ई. में डायमण्ड जुबली प्रेस अजयगढ़ से प्रकाशन हुआ था। कमल कुंवरि अजयगढ़ नरेश रनजोर सिंह की पटरानी थी। 'विनय चन्द्रिका' मात्र पंद्रह पृष्ठों का ग्रंथ है। इसमें कुल ३४ पद हैं। महारानी ने ग्रंथ की भूमिका में लिखा है कि परमात्मा को प्रणाम करके विदित हो कि यह एक छोटी सी पुस्तक जिसमें ईश्वर के गुणानुवाद संबंधी ३४ पद हैं। भक्तों के गान कीर्तन के अर्थ बनाये हैं। आशा है कि पाठक जन उनके छन्द प्रबंध की तरफ ध्यान न देकर केवल भगवत यश को ग्रहण करेंगे और इस प्रबन्ध को आदर दृष्टि से प्रतिष्ठित कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। ता. ११—६—९९ (ग्रंथकर्ता) श्री महारानी श्री सवाई महारानी कमल कुंवर जू रियासत अजयगढ़''


रनजोरविलास

जिसको

अजयगढ़

सन १८९९ ई०

अजयगढ़ के राजा रनजोर सिंह के 'रनजोर विलास' ग्रंथ का मुखपृष्ठ

विनय चन्द्रिका में राग भैरव, राग देश, राग बैरारौ, नटमलारी धीमा तिताला, राग काफी धीमा तिताला, राग सिन्ध झपताल, रेखता, होरी राग—रागनियों में पद लिखे गये हैं।

कमल कुंवरि ने भगवान राम, कृष्ण की भक्तिपरक पदों की रचना की है। रानी ने एक पद में जगदम्बा भवानी से विनती की है कि वे उनकी राजधानी—अजयगढ़ को सुखी रखें —

अरज सुनौ मेरी महारानी श्री जगदम्बा मातु भवानी।
दीन दयाल अरज सुन लीजै शीलसिंधु हौ सब गुण खानी।
दानव दलन देव कुल पावन जन मन रंजन वेद बखानी।
कला प्रतच्छ आप की जग में महिमा सकल सुरासुर जानी।
कमल कुंवरि कौ विनय सुनौ यह सुखि राखौ रजधानी।।

— पद संख्या ३३

कवयित्री कमल कुंवरि भगवान से बार—बार विनय करती है कि प्रभु मुझे अपनी अनुचरी कर लीजिये —

राधावर विनती सुन लीजे।
सब अपराध क्षमा कर मेरे गुण—अवगुण न गनीजे।
मोंहि अजान जान कैं स्वामी भक्ति आपनी दीजे।।
ऐसहि जन्म गयो स्वारथ में एकहु काम न सीजे।।
कमल कुंवर ह्वै दीन पुकारत नाथ अनुचरी कीजे।।

— पद संख्या ५

रनजोर विलास और विनय चंद्रिका ग्रंथ के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि अजयगढ़ के राजा और रानी दोनों कविता लिखने में प्रवीण थे।

संभव है कमल कुंवरि रानी की और भी रचनाएं हों जो मेरे देखने में नहीं आ सकीं। बुन्देलखण्ड की रियासतों के प्रेसों से मुद्रित होने वाले ग्रंथ राज्य की ओर से देश की अन्य रियासतों में भेजे जाते थे। यह एक परंपरा थी। यही कारण है कि बुन्देलखण्ड के प्रेसों से मुद्रित ग्रंथ, हमें राजस्थान की रियासतों के निजी ग्रंथागारों में देखने को मिलजाते हैं।

अंत में महाराज छत्रसाल ने काव्य लिखने और कवियों को आश्रय प्रदान करने की जिस परंपरा का श्रीगणेश किया था उसे उनके वंशज अजयगढ़ नरेश रनजोर सिंह ने आगे बढ़ाया।

संदर्भ संकेत —

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास — गोरेलाल तिवारी पृ. ३८९ (परिशिष्ट) ना.प्र.सभा. काशी, संवत् १९९०
२. वही, पृ. २९२—२९३
३. बुन्देली इतिहास और संस्कृति — पृ. ३६१—३६२ सम्पादक — कपिल तिवारी, आदिवासी, लोक कला अकादमी, म.प्र. संस्कृति परिषद भोपाल सन् २००५ ई.

—ग्रा.पो. करेरुआ,
जिला मिर्जापुर (उ.प्र.)

जाड़ौ कैसें कटत बिचारौ

– गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जाड़े की रितु अपना जितना असर छोड़ती है उतनी ही वहां के निवासियों की जीवन्तता में हमें वह रची बसी सहनशीलता भी देखने को मिलती है। यही विशेषता हमें बुन्देली लोकगीतों के माध्यम से यहां के जन जीवन में दृष्टि गोचर होती है। साधारण और सहजता के साथ जुड़े उनकी सहज अभिव्यक्ति से उजागर हुए बुन्देली लोकगीत अपनी प्रामाणिकता की छाप, अपनी लोक शैली और लोक भाषा का परिमार्जन करते हैं जो कि उनकी अपनी मौलिकता को प्रदर्शित कर अपने अनूठे सौन्दर्य और चित्रण के साथ प्रस्तुत हुए हैं। लोक कवियों की महती उपयोगिता उनके जीवन से जुड़ी आसक्ति और अभिव्यक्ति की उत्कट आकांक्षा किन स्थितियों में वाणी से फूटकर जन मानस के कंठ में समा गई, इसकी प्रामाणिक भूमि हमें उन्हीं लोकगीतों के दर्पण में झलकती दिखलाई पड़ी है।

ठंड के मौसम को लेकर बुन्देलखण्ड में कहावत प्रचलित है –

''जाड़ौ ठांड़ौ खेत में, करै हेत की बात।
बैरी मोरे तीन हैं, रुई कम्बल उर प्यांर।।''

बुन्देली लोकगीतों की परम्परा में हमें जाड़े की रितु से संबधित विभिन्न प्रकार के लोकगीत देखने सुनने को मिलते हैं। मानव जीवन पर इन लोकगीतों की अपनी प्रभा परिलक्षित है।, ऐसे लोकगीत जीवन की उन तमाम विसंगतियों से जुड़े हैं। जो उनके जीवन को विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ जोड़ती है। इस प्रकार के लोकगीतों की अभिव्यक्ति का चित्रांकन जिस खूबी से देखने मिलता है, वह अन्यत्र नहीं। लोकभाषा की अटूट संपदा को बटोरना और फिर उसमें से उसकी उस अन्तरतम भावना की जीवन्तता को पहचानना बहुत ही कठिन काम है।

लो कवि की वाणी जाड़े की बहार देखकर सहसा ही फूट पड़ती है – ''आ गई आ गई रे जाड़े की बहार,
परोसन गुइयां, रुइया तो भरवा ले नई खोरों में''

सामाजिक जीवन की उपयोगिता को किस तरह से लोक ध्वनि के सांचे में ढालकर कवि ने अभिव्यक्ति दी, देखते ही बनता है।

लोकगीतों में कृष्ण और राधा के माध्यम से भी जीवन की समस्याओं को प्रदर्शित किया गया है। कन्हैया को माध्मय बनाकर ''ऋतुओं के चित्रण'' में किस ढंग से मानव जीवन की भावना के द्वार पर दस्तक दी, देखिये –

''कन्हैया बिन कौन हरै मोरी पीरा
पूस मास में ठंड जो व्यापै, माघ में हलत सरीरा''

बेमेल विवाह को दृष्टि में रखते हुए देखिये कि एक नवोढ़ा नायिका अपने पति को छोटा बतलाती हुई अपनी जवानी के उभार को किस प्रकार से व्यक्त करती है। जहां वह अपने बालक के बचपन की आदतों का उल्लेख करती है वहीं वह अपनी सखी सहेलियों को भी नहीं भूल पाती–

''जाड़ौ कैसें कटत बिचारौ बारौ बलम हमारौ
दिन डूबे सें करत बियारी, घर में परत नियारौ
अंदियायी हो सकियां पूछें, कहा कहौ सुख चारौ
कात ईसुरी सुन लौ प्यारी, जुबन उठो अनयारौ।

नारी की सटीक जीवनाभिव्यक्ति को सामाजिक जीवन की ही उपमाओं में पिरोया गया है और लोकगीत की यही सार्थकता कही गई है। इन्हीं गीतों में हमें स्थायी भाव की दलील भी मिलती है जो पुरातन होते हुए भी नूतन दिखलाई पड़ती है।

नायिका का पति जब परदेश से लौटकर नहीं आता तो वह कह उठती है – 'उन बिन जाड़ौ सहो न जावै, ना बालम घर आवै।'' लेकिन दूसरी ओर वह यह भी संदेश देकर पूछने का उपक्रम रचती है कि मेरे प्रीतम कौन से माह में आपका आना होगा। अपने मन की बात को जब वह प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करती है तो लोक की पहचान अपना प्रभाव प्रकट कर देती है। सीधे सपाट बयानी प्रभाव को सामने रखते हुए वह जब चिठिया लिखती है तो उसके मन की पीड़ा को बड़ी ही सहजता के साथ लिख देती है, देखिये–

''आहौ राजा कौन से महीना में
चार महीना जड़कारौ के लागे, थर थर कापों बिछौना में''

और वह ऐसा क्यों कहती है, इसके लिए लोककवि उस नायिका की मनोस्थिति को पढ़कर उसके भावों को गीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है –

'जड़कारे में बलमा प्यारौ लगै, प्यारौ लगै बहुतई प्यारौ लगै'

इस 'प्यारौ' शब्द में ही सभी कुछ समा गया है। शब्द की विराट सत्ता को उसने इस शब्द के माध्यम से प्रकट कर दिया है। जाड़े के मौसम की मार जहां कवि को सालती है तो वह कह पड़ता है – ''ऐंसे बिकट परे हैं जाड़े, हांत जायें ना काड़े
इक तौ पूस महीना दूजें, लै रई पवन लफाड़े
तेइ पै राम आज घर पटके, ओरन के भर गाड़े
'दुरगा' अखर गओ तलवा में आज होत में झाड़े।''

वर्तमान परिस्थितियों को लोककवि ने व्यक्त कर उस समय विशेष की अपनी वस्तु स्थिति को उजागर किया जो उसने भोगी। ऐसे लोकगीतों से उस समय विशेष की विशेषताओं को समझने और उस काल बोध को पहचानने के लिए उसने उसमें जीवन्तता के दर्शन हमें सहज ही करा दिये। लोककवि ने समयानुसार पड़ी मार को लोकध्वनि के माध्यम से भी सामान्य जन जीवन को प्रभावी होने वाली स्थिति से अवगत कराया हैं ऐसे बुन्देली बसुधा के जाड़े लोक भाषा के माध्यम से सामान्य जन जीवन की दैनिक दिनचर्या के साथ जुड़े और उन्हें लोकशैली और लोककविता के कलेवर से अलंकृत कर जिन कवियों ने प्रस्तुत किया वे इस भाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान देकर धन्य हैं।

– म.प्र.वि.मं. कालोनी, रामपुर, जबलपुर

ओरछा के प्रमुख दरबारी कवि

– रतिभानु तिवारी

राजधानी बनने के पूर्व ओरछा जंगल के आवरण से ढंका हुआ था जिसमें कोयल की कूक पक्षियों की चहचहाहट शेरों की दहाड़ एवं जंगली जानवरों की भयानक आवाजें सुनाई देती थी। कुछ समय पश्चात् ओरछा के अभागे भाग्य का सितारा चमका दुर्दिन ने करवट ली अत: ओरछा के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर भगवान राम के पुत्र कुश के वंशज महाराज रुद्रप्रताप ने वैशाख शुक्ल १३ सम्वत् १५८८ के रोहणी नक्षत्र में ओरछा नगर की सृष्टि की थी। अतएव ओरछा में जंगली जानवरों की बोलियों के स्थान पर कविता के मधुर स्वर सुनाई देने लगे।

महाराज रुद्रप्रताप कवि तो नहीं थे किन्तु कवियों को सम्मान देने का उन्हें ज्ञान था। अतएव इनके दरबार में रहकर गुलाब कवि ने सेरवध मनसाराम ने गुप्तभेद सरोदय युद्ध, विजय ब्राह्मण ने प्रताप हजारा तथा रसनीति के प्रथम आचार्य कृपाराम ने सम्वत् १५९८ में ३९९ छंदों का हितरंजिनी नामक ग्रंथ लिखा।

मधुकरशाह के शासनकाल में हरिराम व्यास ओरछा के प्रसिद्ध कवि हुए। इनका जन्म सम्वत् १५६७ में हुआ था। यह संस्कृत कै प्रकाण्ड पण्डित एवं मधुकर शाह के गुरु थे। इन्होने अपनी दो अमर कृतियों व्यासवाणी और रागमाला से ओरछा का नाम साहित्य क्षितिज में हमेशा के लिए अमर कर दिया।

व्यासजी के अतिरिक्त मोहनदास मिश्र ने भाव चन्द्रिका एवं रामश्वमेद्य आदि ग्रंथों की रचना की सुखदेव व्यास, कपूर साव बनवारी कायस्थ मलके छिपरी एवं परम कचेरे मधुकरशाह के उत्तम दरबारी कवि थे। पातुरी में तानतरंग ने संगीत अखाड़ा विचित्र नमना ने कोकशास्त्र मधुर अली ने रामचरित्र एवं गणेश माला आदि ग्रन्थों की रचना की। रामसाह के दरबार में होरल देव ने प्रतिजज्ञ नामक काव्य ग्रंथ लिखा। महाराजा इन्द्रजीत सिंह धीरज नरेन्द्र के नाम से कविताएँ लिखते थे। मधुकर शाह के द्वितीय पुत्र वीरसिंह जू देव के शासन काल में महाकव केशव ओरछा के रत्न थे केशव के ज्येष्ठ भ्राता बलभद्र मिश्र भी अच्छे कवि थे इनका जन्म संवत् १६०० में सनाढ्य ब्राह्मण पंडित काशीनाथ के घर हुआ था नखशिख श्रृंगार इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है तथा भागवत पुराण एवं दूजण विचार मिश्र जी की अमर कृतियाँ हैं।

महाकवि केशव का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी सम्वत् १६१८ में ओरछा में हुआ था। इनके पिता सुविख्यात संस्कृत ग्रंथ शीघ्र बोध के रचयिता पं. काशीनाथ थे। ओरछा की पंपन भूमि में केशव के रतनवावनी, रसिक प्रिया, नखशिख वाराहमासा, राम चंद्रिका, कवि प्रिया, छन्द माला, वीरसिंह देव चरित्र, विज्ञान गीता एवं जहाँगीर जस चंद्रिका आदि ग्रंथों का प्रणयन किया था। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ राम चंद्रिका महाकाव्य की श्रेणी में आता है।

आचार्य केशव के अतिरिक्त बलभद्र मिश्र के पुत्र बालकृष्ण ने रसचंद्रिका का निर्माण किया तथा बलभद्र का श्रस्थ ने ... फजल विजय, मतंग कवि ने विरसिंह देव विजय नामक ग्रंथ ... रचना की। जन खंडन गुलाल कवि द्वियती केहरी पतिराम ... रत्नेश परमेश चतुर्भुज और मोहन आदि भी महाराज वीरसिं... देव के अच्छे दरबारी कवि थे। इन कवियों की कविता से मह... बहुत प्रभावित थे।

महाराज इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसि राय प्रवीण इसी ... में हुई यह कवीन्द्र केशव की शिष्या थी।

केशव ने राय प्रवीन को छंदशास्त्र का ज्ञान कराया था ... उसे छंद शास्त्र का ज्ञान हो गया तब केशव ने स्वयं नायिका ... ज्ञान में उसकी परीक्षा ली थी।

राय प्रवीण की काव्य प्रतिभा और नृत्यकला से प्रभावित होकर महाराज इन्द्रजीत सिंह ने इसे अपनी प्रेमिका के रूप ... स्वीकारा था।

महाराज पहाड़सिंग के राजत्वकाल में गोविन्द्र कवि ... पहाड़सिंह चरित्र, परवते कवि ने दशावतार कथा एवं कलेवा ... आदि प्रबंध काव्य लिखे। महाराज सुजान सिंह के समय में मेहा... कवि ने मृगावती की कथा एवं मकरध्वज की कथा प्रबंध का... लिखे। वंशी कायस्थ ने सजनबलेरा तथा सुदर्शन वैहा ने ... विजय नामक ग्रंथ लिखा। कवि परमेश्वर और राम जू भी उ... कोटि के कवि थे।

महाराज इन्द्रमणि स्वयं थे। विष्णु दास इनके दरबारी क... थे जिन्होंने मकरध्वज चरित्र एवं स्वर्गारोहणी नामक ग्रन्थों की र... की। महाराज जसवंत सिंह भी कविता करते थे। जसवंत भा... इनका प्रमुख ग्रंथ है। रघुनाथ कायस्थ इनके दरबार में प्रमुख क... थे जिन्होंने कृष्ण मोदिका की रचना की तथा वैकुण्ठ मणि शु... ने भी अकहन महाल नाम से काव्य ग्रंथ लिखा।

महाराज उद्देतसिंह भी कवि हृदय शासक थे। इनकी महारानी भी कवियत्री थी। इनके राजत्वकाल में कवियों का बाहु... सा रहा है। इनके प्रसिद्ध कवियों में हरिसेवक मिश्र ने कामरूप क... गोपकीय ने राजभूषण और अलंकार चंद्रिक, खंगराय ने रस दी... और नायका दीपक, घनश्याम कायस्थ ने लीलावती ग्रंथ, दि... कवि ने भारत विलास, कृष्ण कवि ने विदुर प्रजागर और धर्म सं... कोविद मिश्र ने भाखर हितापदेश, नायिका भेद, राजभूषण औ... मुहुर्त दर्पण आदि ग्रन्थों की रचना की। उद्देत सिंह के उत्तराधिका... देवी सिंह भी कविता करते थे।

महाराज पृथ्वी सिंह भी कवि प्रेमी शासक थे। इनके दर... में रतन कवि ने रसमंजरी, चूक विवेक और विष्णु पद दोहा शै... में लिखे। पंचम सिंह कवि ने नौरता की कथा, वल्लभ कवि ... लग्नमंजरी ग्रन्थ लिखा एवं दूलह कवि ने भगवद्गीता का पद्यानु...

किया गोपाल पट्ट, बृंजेश—रूपनारायण मिश्र, ललित मोहनी आदि भी अच्छी कविता करते थे।

महाराज भारती चंद्र द्वितीय स्वयं अच्छे कवि थे। साल रस श्रृंगार इमका प्रमुख ग्रंथ है। जिससे ओरछा शासक कवि की श्रृंखला के साथ इनका नाम भी अमर हो गया।

महाराज विक्रमादित्य भी लहु नाम से कवितायें लिखते थे। लघु सतसई नामक ग्रंथ में इन्होंने २७० दोहे लिखे हैं। माष वलीला और स्फुट पदावली इन्हीं की कृतियां हैं। शिवराम सर्व सुख इनके दरवारी कवि थे। सम्वत १८३० में कुंजकुवर ने ऊसर चरित्र नामक ग्रंथ इन्हीं के आश्रय में लिखा था। ठाकुर दास कायस्थ इनके शासन काल में प्रमुख कवि हुए हैं। जिन्होंने हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर को अपनी कविता से चुप कर दिया था। 'ठाकुर ठसक' इनका प्रमुख ग्रंथ है।

ओरछा के अन्य दरबारी कवियों में महा कवि बृजेश ने रसासांग निर्णय अलंकार, निर्णय, श्रृंगार शिरोमणि विश्वनाथ शरण भूषण एवं रमेश रत्नाकर आदि प्रमुख कृतियों की रचना की।

ओरछा के अंतिम शासक वीर सिंह जू देव द्वितीय अत्यंत साहित्य प्रेमी एवं कवि हृदय शासक थे। इनके दरबार में कवि कवियों को आश्रय प्राप्त हुआ है। इनके शासन काल में ऐसे अनेक काव्य मनीषी हुए हैं। जिनकी वाणी उनके अन्तःकरण से निकलकर देश के कोने—कोने में गूँज उठी। मऊरानीपुर निवासी स्व. नरोत्तम पाण्डेय इनके प्रमुख राजकवि थे। सम्वत् १९०२ में इनका जन्म हुआ था। शशीशतक और मुरलीमाला उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। मुंशी अजमेरी भी प्रमुख दरवारी कवि थे। रीवा निवासी रामधीन खरे भी ओरछा के दरवारी कवि रहे हैं। स्व. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इनको पुरस्कृत किया था। छत्रसाल वंश पहानी चमत्कार एवं धर्मवीर हरदौल इनकी प्रमुख रचनायें हैं। इसके अतिरिक्त अम्बिका प्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश' को भी ओरछा दरवार के सम्मान प्राप्त कवियों में नहीं भुलाया जा सकता।

— ग्रा.पो. नैंगुवाँ, (पृथ्वीपुर) टीकमगढ़

पृथीपुरा के चउदा राने

— भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

(पृथीपुरा महोबा जिले की कुलपहाड़ तहसील कौ एक बीरान मौजौ है, जौ सालाट की डाँग से लगो है। जब महोबा के राजा परमाल पै पृथीराज चौहान नें चढ़ाई करी ती, तब इतई 'पहिली लड़ाई' भई जाँ चउदा खंगारबीर सगे भइया पृथीराज कौ फौज से लड़के जूझ गये। सैरै में कहो जात सालट मालट के रमना में जौ दलपरो पिथौरा क्यार अंगरेजन के राज में जब पहली बदौबस्त परताल भई तब ई बीरान मौजा खाँ पृथीपरा सें पृथीपुरां नांव दओ गओ।)

जनम भूम के लानें कट गये, रन में चउदा भइया।
चन्देलन की वीर भूम के, आन बान रखवइया।।
सालट के रमना सें आगूं, पृथीपुरा जौ जानौ।
सावन मास कजरिया छेंकी, पृथीराज बरयानो।
खंगन खेलन हार खंगारन कौ तो उतै घरानौ।
पृथीपुरा में चन्देले कौ, धुजा निसान दिखानो।
अनगिनतौ भारी बैरीदल, तानें तेग सिपइया।
चउदा राने पृथीपुरा के जूझे कुँअर कन्हैया।।

फाटक बन्दी गढ़महुबे में, कोउ न आवै जावै
संकट परो चण्डिका मइया, अब को लाज बचावैं।
मलना रानी देवी पूजै, अंसुअन धार बहावै।
कछू दिना पूनों के रै गये, बनगई विपत समइया।
चउदा राने पृथीपुरा के, जूझे कुंअर कन्हैया।
दिल्ली दल असवार हजारन, बड़े दन्त के हाँती।
शबदवेद की बड़ी सैनके, जंगी जोधा घाती।
गढ़िया गिरी खेत भई बखरी, बैरी दल उतपाती,
पृथीपुरा टिकरा के ऊपर दुश्मन दल की दाँती।
घलन लगी तरवार छपा—छप, भरी रकत की रइया।
चउदा राने पृथीपुरा के, जूझे कुँअर कन्हैया।

जौलौ शीश, कृपान तेगधर, तुमखाँ पान न दैबी,
जौ लौ हुकुम न परमाले कौ, आँगू जान न दैबी।
खंगन खेलत हम खंगार रन कौ खरयान न दैबी
जौलौ तन में प्रान जीत कौ धुजा निसान न दैबी।
तान लई अब तेग म्यान सें, कोऊ नईं मुरकइया।
चउदा राने पृथीपुरा के, जूझे कुँअर कन्हैया।।
आँगें आई मौत तऊना, जिनने हिम्मत हारी।
दोऊ हाँथन में जिनके, नंगी थीं तरवार दुधारी।
आनबान पै मर मिटबे की, जिनने आन बिचारी।
चउदा वीर सती भई चउदा जे जोधा अवतारी।
चन्देले के चाकर नाँ ते, रन के हते खिलइया,
चउदा राने पृथीपुरा के, जूझे कुँअर कन्हैया।

जनम भूम की आन बान पै, जिनने शीश कटाये,
जिनके जिन्दा जियत पिथौरा, आगूं आन न पाये
चउदा राने वीर जानकें गांवन साके गाये।
आल्हा सुनीं हिलक कें रोये, बैरी मार भगाये।
जनम भूम के लानें मिट गये, चउदा राने भइया
चउदा राने पृथीपुरा के, जूझे कुँअर कन्हैया।

— २०, मैथिलीशरण गुप्त मार्ग, महोबा म.प्र.

पर्वों का लोकायत स्वरूप

– डॉ. के०बी०एल० पाण्डेय

जीवन के निरन्तर परिस्कार और संस्कार के लिये मनुष्य ने भौतिक विस्तार के साथ ही कला, दर्शन, साहित्य जैसे मानसिक और हार्दिक उपक्रम भी किये हैं। जैविक आवश्यकताओं की तृप्ति और उसके बेहतर साधनों की खोज के साथ ही मनुष्य ने जीवन में उल्लास के अनेक क्रियात्मक उपलक्ष्यों का आयोजन किया। पर्व ऐसे ही सांस्कृतिक निमित्त हैं जो व्यापक समाज की सांस्कृतिक रचनाशीलता के क्रम में निष्पन्न हुए हैं और जिनकी जीवन से सहज और अविच्छिन्न संयुक्ति है।

पर्वों के आयोजन के अनेक उत्प्रेरक कारण रहे होंगे। आदिम समाज ने कभी क्षुधा–तृप्ति के सहभोजजन्य उल्लास, कभी देव–पूजन तथा कभी ऐसे ही अन्य प्रयोजनों से समूहिक उत्सवों का विधान किया होगा। सभ्यता के विकासक्रम में जैसे जैसे जीवन के साधनों और आशयों में विस्तार और परिष्कार हुआ पर्वों के उपलक्ष्य और स्वरूप भी विविध और कलात्मक होते गये। कभी देवाराधन और अनुष्ठान व्रत बन कर प्रचलित हुए, कभी प्रकृति का अनुकूल, सुखद और उत्पादक रूप उल्लास का निमित्त बना और कभी सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धों की स्नेहाकुलता ने औपचारिक तथा विशिष्ट क्रियाकलाप के अवसर प्रदान किये।

सभी सांस्कृतिक पर्व लोक पर्व हैं। प्रवर्तन के आधार पर भी और आयोजन के रूप में भी उनका स्वरूप लोकपरक ही होता है। वे किसी के आदेश अथवा किसी की वैयक्तिक इच्छा से लोक स्वीकृति प्राप्त नहीं करते। उन्हें लोक स्वीकृति मिलती है समान आस्थाओं से, समान कामनाओं से, जीवन के प्रति समान अवध ारणाओं से। पर्वों के आयोजन में अवश्य कभी कभी समाज के प्रमुख व्यक्ति, शासक अथवा संस्था का योग रहता है पर उसमें भी लोक केवल उपस्थिति के रूप में नहीं बल्कि सक्रिय भागीदारी के रूप में रहता है। प्रयोजनपरक होते हुए भी पर्व आज के आयोजनों की तरह प्रायोजित नहीं होते। वे प्रकृति से ही लोकापेक्षी होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे असंयोजित, यादृच्छिक अथवा स्वच्छन्द होते हैं। शासक अथवा प्रमुख व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित होते हुए भी यदि कोई पर्व लोकार्पित नहीं हो पाता है और उसकी प्रेरणा तथा आयोजना लोकोन्मुख न होकर किसी एक जगह केन्द्रित हो जाती है तो प्रयोजक के विगत या अलग होते ही पर्व का स्वरूप भी समाप्त हो जाता है। लोकपर्वों का स्वरूप सामाजिक व्यवस्था, जीवन विधियों, भौतिक उपकरणों तथा वैचारिकता के परिवर्तन के साथ परिवर्तित भी होता रहता है।

भारतीय समाज में छोटे बड़े अनेक समारोह व्रत, पर्व, उत्सव आदि के रूप में प्रचलित हैं। वर्ष के अनेक दिन आस्था के किसी आलम्बन से जुड़कर श्रद्धाभिव्यक्ति के अनिवार्य अवसर बन गये हैं। चाहे छोटा त्योहार हो या बड़ा पर्व उसमें आधारभूत आस्था समान होती है। पर्व जीवन के बहु आयामी आयोजन होते हैं। व्यापक सामाजिकता पर्वों का मूलाधार है। उनमें समष्टि का उत्साह परस्परता का आकांक्षी होता है। पर्वों में लोकपरकता का प्रधान आसंग रहता है। पर्वों के आयोजन का स्थल चाहे घर हो, पूरा गाँव, नगर हो अथवा मेले के रूप में उसके बाहर हो पर प्रमुख बात यही है कि उसमें लोगों की ऐकान्तिक साधना न होकर सामूहिक संपृक्ति होती है। लोक पर्व उल्लास, आस्था, सृजन और सहभागिता के उत्सव होते हैं। होली, दीपावली, रक्षाबन्धन जैसे बड़े पर्वों से किसी घटना या व्यक्ति की स्मृति की सम्बद्धता संभवतः बाद की प्रक्षिप्ति है।

लोकपर्वों के परमार्थिक और ऐहिक दोनों पक्ष हैं। जिन पर्वों के उपलक्ष्य सर्वथा लौकिक थे उनमें लोक की आस्तिक प्रवृत्ति ने धार्मिक–पौराणिक प्रसंग जोड़ दिये। रक्षाबन्धन पर यजमान को राखी बांधते समय 'येन बद्धो बली राजा' श्लोक पढ़ना ऐसा ही उदाहरण है। होली का संबंध होलिका और प्रहलाद से जोड़ा जाना विद्वानों के अनुसार परवर्तीकाल का परिवर्द्धन है। फिर भी पर्वों का मूल चाहे लोकोत्तर रहा हो या लौकिक, उनका सांसारिक पक्ष ही व्यवहार में अधिक साधित हुआ है।

लोकपर्वों में आस्तिकता के साथ ही सामाजिकता के आदर्श भी निहित हैं। पारिवारिक सम्बन्धों को स्निग्ध और दृढ़ बनाने वाले अनेक उपलक्ष्य पर्व बन गये। रक्षा–बन्धन और भाई दोज भाई–बहिन के स्नेह के परिचायक हैं। पितृ–पक्ष पितरों के प्रति श्रद्धाभाव है और जीवन को नैरन्तर्य में देखने का विचार है। गुरु–पूर्णिमा जीवन का परिष्कार करने वाले तथा ज्ञान देने वाले गुरु के प्रति पूज्य भाव है।

अक्षय तृतीया, रामनवमी, दशहरा, रामनवमी आदि पर्व स्मृतिरक है। स्मृतिशीलता अतीत के संरक्षण का सबल माध्यम तो है पर यदि अतीत अपने यथातथ्य रूप में ही जीवित रहेगा तो वह पूजा–उपचार की संवेदनशून्य बनकर रह जायेगा। इसलिये अतीत जिस रूप में सार्थक और जीवन्त रूप से वर्तमान में संक्रमित होता रहता है और वर्तमान भी गतिशीलता से जुड़ पाता है वही स्वागत योग्य बन पाता है। दशहरा, रामाख्यान से जुड़ा विजय–पर्व माना जाता है पर आज लोक–व्यवहार में इस पर्व के अनेक रूप हैं। कुल्लूघाटी या मैसूर का दशहरा अपनी अन्य विशिष्टताओं के लिये प्रख्यात है। बुन्देलखण्ड के ही एक भाग दतिया का दशहरा भी राज्योत्सव के अभिजात्य से विशिष्ट रहा है पर पूरे बुन्देलखण्ड में दशहरा जिस तरह सामाजिक सम्बन्धों का पर्व बन गया वह शायद अन्यत्र नहीं। घर घर जाकर मिलना और एक दूसरे के यहां पान खाना ऐसा रिवाज बन गया जो सामाजिक परस्परता और भातृत्व का बोध जागृत करता है। चाहे पान का बीड़ा योद्धा परंपरा की बीड़ा उठाने की प्रथा का ही सूचक रहा हो पर यह घर घर जाकर

मेल–मिलाप का स्वरूप आज के सन्दर्भ में अत्यन्त सार्थक है।

परंपरा किस तरह वर्तमान से जुड़कर रूपान्तरित होती है और युगीन आशयों के माध्यम से व्यक्त होती है इसका एक अच्छा उदाहरण मऊरानीपुर का जलविहार है। अन्यत्र यह पर्व डोल ग्यारस के नाम से भादों सुदी एकादशी को मनाया जाता है। मऊरानीपुर में यह पर्व एक दिन बाद द्वादशी को होता है। इस नगर का यह उत्सव बुन्देलखण्ड में ही नहीं उसके बाहर भी दूर दूर तक विख्यात रहा है। इस दिन नगर के विभिन्न मंदिरों के विमान पूरी साज–सज्जा से निकलते हैं। प्रत्येक विमान के आगे नृत्य–गान होता चलता है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में एक वर्ष ऐसा भी जलविहार हुआ जब विमानों में देव–मूर्तियों को खादी की पोशाकें पहनायी गयी। विमानों के वाहक भी खादी के कपड़े पहने थे। विभिन्न मन्दिरों और घरों में लगी झांकियों में गणेश जी तिरंगा झंडा लिये दिखाये गये।

पर्व समाज को जोड़ते हैं। उनसे घर परिवार में ही नहीं पास पड़ौस के लोगों में भी आत्मीयता का विस्तार होता है। लोक पर्व साम्प्रदायिक अविरोध और सामाजिक संश्लेषण की दिशा में सार्थक निमित्त सिद्ध हुए हैं। हिन्दू और मुसलमान अपनी धार्मिक भिन्नता की सचेतनता भूल कर एक दूसरे के आयोजनों में हार्दिकता के साथ सम्मिलित होते रहे हैं। हिन्दुओं के विमानों के नीचे से निकल कर मुसलमान पुण्य मानते रहे हैं और ताजियों के नीचे से निकल कर हिन्दू अपनी आस्था व्यक्त करते रहे हैं। कई दरगाहें हिन्दुओं की भी आस्था–स्थली बन गयीं और अनेक मुसलमान महिलाएँ माता ढारने (देवी मंदिर में जल चढ़ाने) जाने लगीं। अक्षय तृतीया के भीगे दुयोल (चने की दाल), श्रावणतीज की कजरियां तथा नवरात्रि के जवारे हिन्दुओं के साथ मुसलमानों को भी बांटे जाने लगे। हिन्दु बच्चों के गलों में विपत्ति तथा रोग से सुरक्षा के रूप में मुसलमान संतों के गंडे और ताबीज दिखायी देने लगे। सामाजिक संश्लेष अथवा लोक–संवाद की यह स्वाभाविक प्रक्रिया, जो बहुलतावादी लोक जीवन की प्रकृति होती है, धर्म और राजनीति के व्यवसायियों के कारण आज स्थगित ही नहीं हुई हैं बल्कि प्रतिगामी हुई है।

लोक–संस्कृति में प्रकृति का सानिध्य केवल जड़ परिवेश के रूप में नहीं रहा है बल्कि उसका समावेश जीवन को संचालित करने वाले हेतु के रूप में है। मनुष्य ने प्रकृति का उपयोग ही नहीं किया है बल्कि उसके प्रति कृतज्ञता भी व्यक्त की है। इसीलिए अनेक पर्व प्रकृति से जुड़े हैं। उनमें ऋतुओं का संसर्ग है स्वागत है। कजरियां और जवारे फसलों के प्राथमिक प्रतीक हैं, हल षष्ठी का त्योहार अपने समय के उत्पाद महुआ और चना से पूजा जाता है, जेठ दशहरा कृषि–कार्य के प्रारंभ का पूजन है, आषाढ़ी देवताओं का पूजन वर्षा का आराधन भी है और स्वागत भी। विभिन्न पर्वों पर ऋतु विशेष में उत्पन्न वस्तुओं का उपयोग तो होता ही है। अक्षय तृतीया के दिन घड़ा सत्तू और पंखा जैसी ग्रीष्मोचित वस्तुओं के दान से वैशाख की ऋतु से संगत बना दिया जाता है। बसन्त ऋतु जलवायु की दृष्टि से उर्वरतादायक, समशीतोष्ण, प्रकृति संभार और नयी उमंग पैदा कर देने वाली ऋतु है। शीत के संकुचन ताप के गुनगुने स्पर्श पाकर उमगने लगते हैं। जो बोया गया था उसमें प्राणों के स्पन्दन होने लगते हैं। फसलों के कथानक प्राप्त्याशा की संधि तक पहुँच जाते हैं। यह रसवती ऋतु प्रकृति में ही नहीं मनुष्यों में भी रसोत्पत्ति करती है। ऐसे अवसर पर होली का जनपर्व रंजकता के साथ मनाया जाना स्वाभाविक ही है। मदनोत्सव प्राचीन भारत का ऐसा ही रंग पर्व रहा है।

होली का प्रारंभ समाज के रागरंग तथा आनन्द की भावभूमि पर ही हुआ होगा। राजाश्रय में इसकी सामग्री तथा विधि विशिष्ट होती रही पर लोक में यह पर्व परस्पर प्रेम और समता के मूल्यों पर केन्द्रित रहा। प्रकृति का आसंग अनेक पर्वों पर वृक्ष–पूजा के रूप में भी प्रचलित है।

दीपावली आलोक पर्व है। समाज दारिद्रय की स्थिति से निकल कर सम्पन्नता की कामना और चेष्टा करता रहा है। लक्ष्मी पूजा व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रतीक तो बाद में बनी होगी। वस्तुतत: जैसा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है दीपावली सामाजिक मंगलेच्छा का पर्व है। कृषि और गोपालन की समुन्नत सभ्यता में गोवर्द्धन पूजा की सार्थकता देखी जा सकती है।

सभी लोक पर्व उल्लास और सृजनेच्छा से अनुप्राणित हैं। प्रत्येक पर्व में व्यक्तिगत और समष्टिगत उल्लास भाव निहित है। सृजन की प्रेरणा विभिन्न ऋतुओं के पर्वों से तो मिलती ही है यहां तो तुलसी में बाल निकले तो भी और गाय ने बछड़ा दिया हो तो भी उस मंगल सृजन को स्त्रियों द्वारा गड़ा लेकर मनाया जाता है।

इन लोक पर्वों का एक ओर पक्ष है उनकी कला परकता। सभ्यता के विकास क्रम में जो विभिन्न कलाएँ विकसित हुई वे पर्वों को भी रूपायित करने लगीं। मौनिया, राई और कांड़रा आदि नृत्य प्रारंभ में पर्व विशेष से ही सम्बन्धित रहे हैं। प्राय: सभी पर्वों के गीत हैं। अनेक पर्वों के अवसर पर मिट्टी के गाड़ी, घोड़ा, (गड़िया–घुल्ला) और महालक्ष्मी के अवसर पर हाथी से मिट्टी की मूर्तिकला और नौरता अथवा सुअटा से अल्पना कला तथा दीपावली पर सुराँतु से आलेखन कला अभिव्यक्त हुई है।

अभावों, दुखों और संघर्षों से जूझते रहने के बाद भी जीवन और संसार के साथ ही लोक समाज के सारे सरोकार जुड़े रहते हैं। उसकी आस्तिकता का अभिप्रेत लोकायत होता है। अलौकिक से वह जो भी मांगता है प्राय: इसी लोक में सुखी जीवन के लिए मांगता है। उसके जीवन में आस्तिकता की आस्था भी है और सभी भौतिक स्थितियाँ भी हैं। दर्शन और अध्यात्म की बौद्धिकता को वह अपनी तरह व्यवहार्य और अनभिजात स्तर पर ले आता है। इसी क्रम में उसने अपने लोक–देवता बना लिये हैं। कारसदेव, घटौरिया और हरदौल उसके निकट परिवेश में रहते हैं। उसकी आस्तिकता सर्वसमावेशी होती है, सैन्यीकृत नहीं। इसी तरह उसके उत्सव भी जीवनोन्मुखी होते हैं, जीवनेतर नहीं।

— ७०, हाथीखाना, दतिया म.प्र.

मधुवन अंचल में बौद्ध संस्कृति का प्रभाव

– डॉ. रामस्वरूप ढेंगुल

भविष्यपुराण में 'पद्मावती' जनपद का उल्लेख आया है। इस जनपद का केन्द्र वर्तमान पवाया नामक स्थान था। यह पवाया ग्वालियर जिले की भितरवार तहसील के पास सिंध और पारा अर्थात पार्वती नदियों के संगम पर स्थित है। पवाया से आगे सिंध नदी में लगभग पन्द्रह किलोमीटर दूर महुअर नदी मिल जाती है। इसी महुअर नदी का प्राचीन नाम मधुमती था। यह मधुमती शिवपुरी जिले की पिछोर तहसील की घाटी मयापुर के तेरही स्थान से निकलती है। इसी महुअर और सिंध से लगे अंचल को मौर्य युग में ''मधुवन''नाम से जाना जाता था।[१] इसी मधुवन से लगा तुम्बवन था। यह तुम्बवन क्षेत्र मध्यप्रदेश के अशोकनगर से विदिशा की ओर जाने वाले मार्ग पर पड़ता है।[२] इस प्रकार मधुवन अंचल की पहचान सिंध नदी के आसपास से लेकर वेतवा से लगे भूभागों से होती है।[३] मधुवन अंचल के क्षेत्र का सम्बन्ध मध्यप्रदेश के दतिया, शिवपुरी, ग्वालियर और गुना के भूभागों से था। किंचितरूप में इस अंचल का सम्बन्ध दतिया से उनाव होकर उत्तरप्रदेश के झांसी से होकर ओरछा जाने वाले मार्ग से भी था। मधुवन अंचल से गुजरने वाले तत्समय के मार्ग आगे विदिशा, भरहुत सांची से भी जुड़े थे। ये सभी स्थान मौर्य युग और उसके बाद बौद्ध धर्म और संस्कृति के प्रमुख केन्द्र थे। मौर्य युग के अंतिम भाग में जब जनपद काल था। उस समय वर्तमान मध्यप्रदेश के प्रमुख नगरों में ''पद्मावती'' का नाम भी शामिल था। पद्मावती मधुवन क्षेत्र का केन्द्रीय नगर था। और तत्समय में इस अंचल में बौद्ध संस्कृति का प्रचार प्रसार हो रहा था।[४] पद्मावती या पवाया से गुजरने वाला राजपथ उज्जैन, विदिशा, मथुरा और दक्षिण की ओर जाने वाले पथों से भी जुड़ा था। पवाया होकर जहां व्यापारी गुजरते थे, वहीं दूसरी ओर धर्म प्रचारक, समाज सुधारक और यात्री भी यात्रा करते थे। मधुवन का केन्द्र पवाया तत्समय में महापथ का नगर था।[५]

बौद्ध धर्म और संस्कृति के चिंतन को संसार के सामने रखने वाले गौतम का जन्म छठवीं सदी ई.पूर्व हिमालय की तराई के लुम्बनी नामक स्थान में हुआ था। उन्तीस वर्ष की उम्र में सिद्धार्थ गौतम ने गृह त्याग कर छः वर्ष घोर तपस्या और चिंतन के द्वारा बोध या ज्ञान प्राप्त किया था। उसी समय से वह गौतम बुद्ध के नाम से विख्यात हुए। बुद्ध के चिंतन से उपलब्ध सामाजिक चेतना, समरस ज्ञान, रूढ़ीवादिता से मुक्ती, आपसी मेल मिलाप और समन्वय की भावना, छुआछूत का त्याग, पशु हिंसा से मुक्ती, जनभाषा को अपनाना आदि का प्रभाव आज भी धार्मिक चेतना और बौद्धिक चेतना पर देखा जा सकता है। इस प्रकार बौद्ध संस्कृति ढाई हजार साल की यात्रा कर आज भी सामाजिक समरसता के लिये अपनी उपयोगिता बनाये हुये है। और एशिया महाद्वीप के देशों में इसका व्यापक प्रभाव दिखाई देता है।[६]

बौद्ध धर्म के साहित्य में 'धम्मपद' ग्रंन्थ का अमर स्थान है। धम्मपद में धम्म शब्द, संस्कृत शब्द 'धर्म' का पाली रूपान्तर है। इस महान ग्रन्थ में जीवन में आचरण की शुद्धता पर जोर दिया गया है। बुद्ध भगवान ने अष्टांग मार्ग का प्रतिपादन करते हुये हिंसा, वै[र] क्रोध, मृषावादन, द्वेष, लोभ, तृष्णा, आदि पापों से मुक्त रह[क]र सम्यक् भाषण तथा सम्यक् आचरण के नैतिक नियमों पर ब[ल] दिया। बुद्ध ने अपने धर्म–दर्शन का प्रचार पैंतालिस वर्ष त[क] किया। और अस्सी वर्ष की उम्र में ८४३ ई. पूर्व कुशीनगर जि[ला] गोरखपुर में निर्वाण प्राप्त किया।[७] साहुल सांकृत्यायन के अनुस[ार] बुद्ध के जीवनकाल में ही बौद्ध संस्कृति का प्रभाव कोसी से कुरु[क्षे]त्र और हिमालय की तराई से विन्ध्य पर्वत तक फैल चुका था।[८] म[ौर्य] सम्राट अशोक (२७३–२३६ ई.पू.) के प्रयासों से बौद्ध संस्कृ[ति] का प्रचार सम्पूर्ण देश और देश के बाहर हुआ। परन्तु बुद्ध भगव[ान] के बाद बौद्ध संस्कृति अनेक शाखाओं और अनेक मान्यताओं [में] बट गई। बौद्ध श्रमण–साधु राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण अ[ौर] बिहारों में युवा महिलाओं के प्रवेश के कारण सांसारिक दुर्गुणों [की] ओर प्रवृत्त हो गये। इस कारण बुद्ध संस्कृति में अनेक प्रकार [की] पूजायें, तंत्र साधनायें, यसक्षों की पूजा आदि प्रचलित हो गई। उल्लेखनीय है कि यक्ष पूजा लोक पूजा है। और मधुवन अंचल [में] इसका अधिक जोर था।[१०] बौद्ध संस्कृति में अनेकों शैवाल उत[्पन्न] हुये। परन्तु फिर भी इन सबके बावजूद बुद्धदेव के प्रमुख निय[मों] की ज्योति सदा जलती रही। प्रथम जाति प्रथा का विरोध, द्वित[ीय] शास्त्रों को मानना, तृतीय मनुष्य की स्वतन्त्र चेतना को बन[ाये] रखना। बौद्ध संस्कृति का यह प्रभाव विभिन्न धार्मिक आन्दोल[नों,] सुधार आन्दोलनों, निर्गुण संतों की वाणियों, साहित्य, स्थापत्य अ[ौर] मूर्तिकला आदि के माध्यम से गांधी युग तक बना रहा। आज [भी] समाज बुद्ध संस्कृति से ओतप्रोत है।[११]

बेतवा नदी के किनारे 'एरकच्छ' नामक प्राचीन स्थान [है।] वर्तमान में यह एरच नाम से जाना जाता है। और उत्तरप्रदेश [के] झांसी जिले का कस्बा है। इसी बेतवा के किनारे लगभग अस[्सी] किलोमीटर पहले बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा थी। अ[ौर] ओरछा से लगभग सौ किलोमीटर पहले इसी बेतवा के कि[नारे] प्राचीन विदिशा (भेलसा या बेसनगर) स्थित था। यह सारा [क्षेत्र] तत्समय में मधुवन अंचल के अंतर्गत और उसका समीपवर्ती [था।] मान्यता है कि एरकच्छ तक गौतम बुद्ध आये थे। कौशाम्बी [से] विदिशा जाने का यह भी एक मार्ग था। इसी मार्ग के समीप गुज[र्रा] नामक स्थान है। जहां सम्राट अशोक का शिलालेख है।[१२] गुज[र्रा] वर्तमान में दतिया जिले में शहर से उन्नाव मार्ग पर परासरी ग[ांव] से बायीं ओर तीन किलोमीटर जाने पर मिलता है। दतिया से इस[की] कुल दूरी सत्रह किलोमीटर है। उत्तरप्रदेश के झांसी से भी गुज[र्रा]

की इतनी ही दूरी है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में गुजर्रा से होकर राजपथ निकलता था। गुजर्रा से पवाया या पद्मावती उत्तर–पश्चिम में चालीस कि.मी. और पूर्व–दक्षिण में ओरछा सोलह कि.मी. के लगभग था। ये दूरियां तत्समय की हैं। गुजर्रा के आसपास के गांव घरावा, लराइटा और फुलरा की पहाड़ियों में प्राकृतिक पत्थर की पहाड़ी गुफायें आज भी हैं। इन सभी पहाड़ी स्थानों को गुजर्रा की तरह बौद्ध संस्कृति के अन्वेषण के पहले से ही सिद्ध स्थान कहा जाता था और इन पहाड़ियों के पास स्थित शिव मंदिरों की ओर जाने को आज भी गांव वाले 'मठें' अर्थात् मठ की ओर जा रहे हैं, कह कर पुकारते हैं।[१३] मौर्य युग में गुजर्रा के आसपास नगरीय संस्कृति के ये प्रमाण हैं। इन क्षेत्रों में बौद्ध संस्कृति को आत्मसात करने वाले और स्वीकार करने वाले लोगों का निवास था। इस अंचल में तत्समय कृषि कार्य करने वाली और पशुधन को पालने वाली जातियों का निवास था। बौद्ध संस्कृति के कमजोर हो जाने के बाद ही, इस अंचल में शैवों का प्रवेश हुआ और वनों के निर्जन स्थानों, पहाड़ी टोरियों, नदी–नालों–तालाबों के समीप शिव मंदिर स्थापित किये गये। शिव भी अवैदिक देवता हैं, और सर्वमान्य हैं। गुजर्रा के आसपास लगभग दस–पन्द्रह कि. मी. के दायरे में, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशा में पहाड़ियों में जो सिद्ध स्थान, मठ स्थान, गुफायें आदि हैं। इनका सम्बन्ध मौर्य युग में और आगे कम से कम हर्ष के काल सांतवीं सदी तक बौद्ध संस्कारों से बना रहा।[१४] गुजर्रा के इस शिलालेख में अशोक ने अपने नाम का उल्लेख किया है। इसकी पहली लाइन का भाषानुवाद है, ''यह देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी अशोकराज की उद्घोषणा है''। इस शिलालेख की अन्य प्रमुख बातें हैं – मैं ढाई वर्ष से बुद्ध का गृहस्थ अनुयायी हूं। यह फल (धर्म का) केवल धनिकों के लिये नहीं है। निर्धन भी इसका लाभ उठा सकते हैं। सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति का भाव रखें, तो स्वर्ग को वे भी पा सकते हैं। यह घोषणा सम्राट के प्रवास काल की २५६ रात्रियां बीतने के बाद की जा रही है। यह शिलालेख ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में है।[१५] इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि मौर्य युग और उसके परवर्ती काल में मधुवन अंचल के गुजर्रा क्षेत्र में बौद्ध संस्कृति का व्यापक प्रभाव था।

मधुवन अंचल की मधुमती नदी तेरही से निकल कर आगे राजपुर नामक स्थान पर पहुंचती है। यहां एक बौद्ध स्तूप के अवशेष हैं। स्थानीय लोग इसे कुठीला मठ कहते हैं। अनुमान है कि सातवीं सदी में हर्षवर्धन के काल में समृद्ध बौद्ध संस्कृति का केन्द्र था। यहीं पास में बुद्धौन गांव के अवशेष हैं। इस क्षेत्र में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां रहती थीं। ये भाग वर्तमान में शिवपुरी जिले की पिछोर तहसील में पिछोर से रन्नौद जाने वाले मार्ग पर पड़ते हैं। सिंध नदी से लगे हुये शिवपुरी जिले के नरवर क्षेत्र की पहाड़ियों पर बौद्ध अवशेषों के चिन्ह मिलते हैं। ये सारे भाग तुम्बवन से होकर विदिशा और उज्जैन से जुड़े थे।[१६] मधुवन अंचल का केन्द्रीय और प्रमुख स्थान पद्मावती से गुजरने वाला राजपथ मथुरा–कन्नौज (कान्यकुब्ज) से जुड़ा था। इन राजमार्गों से बौद्ध भिक्षुओं का आवागमन था।[१७] पद्मावती में मणीभद्र यक्ष की मूर्ति प्राप्त हुई थी। प्राचीन काल में यक्षों के दल निर्जन पथ, वन, जलाशयों, पर्वतों के किनारे रहते थे। बाद के काल में लोगों ने इनको उसी तरह पूजना प्रारंभ कर दिया, जिस प्रकार नाग पूजा प्रचलित हो गई थी। इस प्रकार की पूजाओं के पीछे समाज का भय काम करता है। आमजन जिस शक्तिशाली जाति, दल, पशु, ताकतवर इंसान से भय खाते थे। लोक उसे लोकदेव के रूप में मान्यता प्रदान कर पूजना प्रारंभ कर देते थे। चौथी–पांचवी सदी में यक्ष पूजा के प्रचलन के पीछे भी भय की लोकप्रवृत्ति ही है। मधुवन अंचल में यक्ष पूजा का जोर था। मथुरा और विदिशा में भी यक्ष के विविध रूपों की पूजा की जाती थी। मणीभद्र यक्ष बौद्ध भिक्षुओं का शुभचिन्तक और मित्र माना जाता था। बौद्ध चिंतन के विस्तार पा जाने के बाद उसमें यक्षों की पूजा शामिल हो गई थी। यह लोकपूजा गांवों–वनों में आज भी किसी न किसी रूप में देखी जा सकती है। यह बुद्ध संस्कृति के लोकस्वरूप का उदाहरण है।[१८] पद्मावती से पश्चिम–दक्षिण में लगभग सौ किलोमीटर दूर बेतवा नदी के समीप दतिया जिले के बसई कस्बे का बरदुआं गांव है। मुगलकाल में इस गांव का नाम बुद्धौन था। और यह उस समय में पद्मावती या पवाया या बंयांबा परगने का एक महाल था।[१९] बुद्धौन नाम से यह आभास होता है कि इस का बुद्ध संस्कृति से अवश्य ही रिश्ता रहा होगा।

मधुमती नदी हिनोंतिया साटेश्वर नामक स्थान पर आकर सिंध नदी में मिल जाती है। यह स्थान वर्तमान में दतिया जिले में पड़ता है। इस मधुमती–सिंध संगम क्षेत्र में लगा हुआ छोटी बड़ौनी नामक प्राचीन काल का प्रसिद्ध कस्बा है। बड़ौनी की गोपेश्वर पहाड़ी पर बहुतायत से बौद्ध साधुओं के स्थान रहे हैं। इस पहाड़ी पर बहुतायत से मिट्टी की लाल मुद्रायें (पाटल मुद्रायें) भी प्राप्त होती रही हैं। इन मुद्राओं के बीच में स्तूप का चिन्ह बना है। इन मुद्राओं के बीच में प्राकृत भाषा में जो लिखा है उसका अनुवाद इस प्रकार है। 'मधुवन में विद्यमान हरद्रपुर संघ के प्रति मधुमती के पंथियों द्वारा समर्पित।' आज भी बड़ौनी के एक पहाड़ को हरिन्द्रपुर पर्वत कहा जाता है। कुछ वर्ष पूर्व तक यहां के जोगी बाबा, जब अन्य प्रान्तों में प्रचार के लिये जाते हैं। तब पूछने पर वे बाबा वहां के निवासियों को बताते थे कि वह 'हरिन्द्रर' पर्वत के निवासी हैं। सदियों से चली आ रही इस मौखिक परम्परा में बौद्ध संस्कृति के ज्ञान के बीज छिपे हैं।[२०] सातवीं सदी के लेखक वाणभट्ट ने (सम्राट हर्ष के समय के) हर्षचरित में बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र का उल्लेख किया है। ये विन्ध्यावटी में रहते थे। दिवाकर मित्र के आश्रम में कमंडलु, भिक्षापात्र, चीवर वस्त्र और बहुतायत से मिट्टी की लाल मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। बाण बताता है कि दिवाकर मिश्र का आश्रम 'आदर्श बौद्ध–विद्या–संस्था' का रूप था। यहां अतिविनीत शिष्य चैत्य वंदन कर्म में लगे रहते थे। इस आश्रम में दस शीलों की शिक्षा दी जाती थी और बोधीसत्व की जातक कहानियां बराबर

सुनाई जातीं थी। दिवाकर मित्र बोधिसत्वगुणों से युक्त भिक्षु था। सम्राट हर्षवर्धन अपनी बहन राजश्री को खोजता हुआ विन्ध्य के वन क्षेत्र में आया था। प्राचीन विन्ध्याटवी वन की स्थिति चम्बल और वेतवा नदियों के मध्य मानी गई है। इन दो नदियों के बीच सिंध, पारवती, महुअर और अनेक छोटी बड़ी नदियां, पहाड़ी कंदरायें, घने वन क्षेत्र थे। बाण के अनुसार इस क्षेत्र में वन्य प्रदेशों में शबर जातियों का निवास था। कन्नौज और थानेश्वर के लिये यहां से सीधा रास्ता भी था। इन सब परिस्थितियों का अध्ययन करने के बाद विद्वान हरिहन निवास द्विवेदी ने दिवाकर मिश्र के आश्रम को बड़ोनी क्षेत्र में माना है। बड़ौनी का पूरा क्षेत्र मधुवन अंचल के अन्तर्गत आता है। उल्लेखनीय है कि बड़ौनी में गोपेश्वर पहाड़ी पर मिट्टी की लाल मृण मुद्रायें बहुतायत से मिली थी।[१९] मधुवन अंचल में दिवाकर मित्र का आश्रम था। इस विषय में कुछ प्रमाण बाण के विवरण के आधार पर और दिये जा सकते हैं। आटविक राज्य अर्थात घने वनों के सामन्तों के छोटे–छोटे राज्य। इस प्रकार के राज्य मधुवन अंचल में विद्यमान थे। तत्समय में शबर जाति इस क्षेत्र में रहती थी। उस जाति का ही इस क्षेत्र में बोलबाला था। लाल पाटल मुद्रायें जिनका उल्लेख बाण ने किया है। वे मधुवन क्षेत्र के बड़ौनी अंचल में बहुतायत से मिली हैं। इन मुद्राओं पर जिस हरिन्दर पर्वत का लेख है। वह पर्वत बड़ौनी में आज भी इस नाम से जाना–पहचाना जाता है। सेहुड़ वृक्षों का दिवाकर मित्र के आश्रम क्षेत्र में होने का उल्लेख बाण ने किया है। सेहुड़ के वृक्ष मधुवन अंचल के सेबढ़ा (दतिया जिले की तहसील) के वन क्षेत्रों में उस समय पाये जाते थे। इसी कारण उस स्थान का नाम सेबढ़ा पड़ा। यदि यह कहा जाय कि सिंध नदी के समीप के स्थानों में सेहुड़ के वृक्ष अच्छी संख्या में थे। तब इस बात पर गौर करना पड़ेगा कि पवाया मधुवन अंचल का केन्द्र और सेबढ़ा दोनों सिंध के किनारे बसे हैं। खैर की लकड़ी के वन होने के विषय में भी बाण ने संकेत दिया है। शिवपुरी जिले के क्षेत्र में खैर के वन आज भी बड़ी संख्या में हैं। दतिया में उनाव मार्ग पर गुजर्रा के रास्ते में खैरी नामक गांव ही है। इसका नाम खैर के वन इस क्षेत्र में अधिक संख्या में होने के कारण ही पड़ा है। इसी रास्ते पर आगे और गुजर्रा क्षेत्र से लगा परासरी गांव भी है। दिवाकर मित्र के विवरण में उन्हें 'पाराशर ब्राह्मण' बताया गया है। अतः यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होना चाहिये कि दिवाकर मित्र, बौद्ध भिक्षु का आश्रम मधुवन अंचल में था।[२२]

दतिया के राजकीय संग्रहालय के पुस्तकालय में बौधायन स्त्रंत्रकोश, जातक शिरोमणि, जातक रत्न, लघु जातक, जातकालंकार आदि पुस्तकें हैं। यह अत्यन्त जीर्णशीर्ण अवस्था में है। ये ग्रन्थ सत्रहवीं–अठारवीं सदी में प्रतिलिपि कर तैयार किये गये लगते हैं। पर इनसे यह आभास जरूर होता है कि बौद्ध संस्कृति का इस क्षेत्र में बोलबाला रहा और परम्परागत वैदिक संस्कृति के मानने वालों पर भी इसका गहरा प्रभाव था।

मधुवन अंचल में बौद्ध संस्कृति के प्रभाव का यह संक्षिप्त लेखा–जोखा है। पुरातत्व विभाग के अधिकारियों को बौद्ध संस्कृति के और अन्वेषण के लिये दतिया के उन्नाव–गुजर्रा क्षेत्र के गांव परासरी, घरावा, लराइटा और फुलरा की पहाड़ियों तथा छोटी बड़ौनी पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ –

१. मध्यभारत का इतिहास, भाग–१ (हरिहर निवास द्विवेदी, सूचना प्रकाशन विभाग मध्यभारत, १९५६) पृ. ३३–३५, युगयुगीन ग्वालियर (सम्पा० डॉ० मोहन कुमार माथुर, भारतीय इतिहास संकलन समिति, भोपाल) ६७ शिवपुरी गजेटियर (सम्पा.एन.पी. पाण्डेय, गजेटियर विभाग, भोपाल १९९९, अंग्रेजी) पृ. ६

२. वही, पृ. ३३, गुना गजेटियर (सम्पा.ए.एम. सिन्हा, गजे. विभाग, भोपाल, १९९४, अंग्रेजी) पृ. २९, सांची (भास्करनाथ मिश्रा, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अका०, भोपाल १९८२) पृ. ५, भारत के प्राचीन नगरों का पतन (रामशरण शर्मा राजकमल प्रकाशन दिल्ली, २०००) पृ. ८९

३. मध्यभारत का इतिहास, भाग–एक (हरिजन निवास द्विवेदी) पृ. ३३–३४

४. मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रन्थ (डॉ. राजकुमार शर्मा, हिन्दी ग्रन्थ अका० भोपाल, १९७४) पृ. १२–१५ भारत के प्राचीन नगरों का पतन (रामशरण शर्मा) पृ. ८९, सांची (भास्कर नाथ मिश्रा) पृ. ५

५. मध्यभारत का इतिहास, भाग–एक, पृ. २६–३०, अनुष्टुप (पं. सूर्यनारायण व्यास, म.प्र. शासन साहित्य परिषद भोपाल १९७२) पृ. ८७, पद्मावती (डॉ. मोहनलाल, हिन्दी ग्रन्थ अका० भोपाल, १९७१) पृ. ७६–७८

६. बौद्ध दर्शन (राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४८) पृ. १९–२२, संस्कृति के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर उदयांचल प्रका०, पटना, १९६६) पृ. १६१–१६६, १८४, २१२, २१४, २१५, भारत और मानव संस्कृति, भाग–एक (विशम्भर नाथ पाण्डेय, प्रका. विभाग भारत सरकार, दिल्ली १९९६) पृ. १३६–१३७, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन (धर्मानन्द कोसम्बी, लोकभारतीय प्रका० इलाहाबाद, १९८२) पृ. ८९–९१

७. धम्मपद (प्रो. इन्द्र, राजपाल प्रका० दिल्ली, १९५६) पृ. ७, ११, २२–२३, ११३–११७, बौद्ध दर्शन (सांस्कृत्यायन) १९–२२, २५–२८, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन (कोसम्बी) पृ. १३१–१३३, भारत और मानव संस्कृति, भाग–एक (विशम्भर नाथ पाण्डेय) पृ. १५४–१६०

८. प्राचीन भारतीय इति. संस्कृति पुरातत्व (डॉ. शरण, पुष्पराज प्रका० रीवा १९८३) पृ. ३२

९. भारत और मानव संस्कृति, भाग–एक (विशम्भर नाथ पाण्डेय) पृ. १६०, १६२, १७४, संस्कृति के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर) पृ. १७४–१८२, २१६–२४१, २५७, प्राचीन भारतीय इति० संस्कृति पुरातत्व (डा० आर० शरण) पृ. ३८–३९, बुन्दे० की लोक संस्कृति का इतिहास (नर्मदा प्रसाद गुप्त, राधाकृष्ण प्रका०, दिल्ली १९९५) पृ. २७८–२७९

१०. बुन्देली की लोकसंस्कृति का इतिहास (नर्मदा प्रसाद गुप्त) पृ. २७८–२८०, पद्मावती (मोहनलाल शर्मा) पृ. ७३, ७४, भरहुत (डॉ. रमानाथ मिश्र, म०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अका० भोपाल, १९७१) पृ. २५–२८

११. संस्कृति के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर) पृ. १८४, २४२, २५१ भारत और मानव संस्कृति, भाग–एक (बिशम्भर नाथ

पाण्डेय) पृ. १४८–१५१, १६४

१२. मध्यभारत का इतिहास, भाग–एक (हरिहर निवास), पृ. २८, विन्ध्य क्षेत्र का इतिहास भूगोल (डॉ. के.एल. अग्रवाल, सुषमा प्रेस, सतना, १९८७) पृ. ५४, ७०, ९१, १८६–८७

१३. दतिया गजेटियर (सम्पा० पी०एन० श्रीवास्तव, म०प्र० गजेटियर विभाग, भोपाल १९७७, अंग्रेजी) पृ. ३०५, ३०६, विन्ध्य क्षेत्र का ऐति० भूगोल (डॉ०के०एल० अग्रवाल) पृ. १४०

१४. जनरल आफ म०प्र० इतिहास परिषद (सम्पा० व्ही०डी०भा०, वर्ष २०००) पृ. ५२–५३, हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन) वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, १९५३) पृ. १८५–२००, युगयुगीन ग्वालियर (सम्पा० डॉ० मोहनकुमार) पृ. ६–७

१५. दतिया उद्भव और विकास (सम्पा० डॉ० पाण्डेय, श्याम संस्थान दतिया, १९८६) पृ. १५, २०–२४, दतिया गजेटियर, अंग्रेजी पृ. २०–२१, ३०५–३०६, म०प्र० का पुरातत्व का संदर्भ ग्रन्थ (डॉ. राजकुमार शर्मा) पृ. १३

१६. शिवपुरी गजेटियर, अंग्रेजी, पृ. ६–७, युगयुगीन ग्वालियर, पृ. ७, ६७

१७. पद्मावती, पृ. ५४, ७३–७४, त्रिपुरी (हरिहर निवास द्विवेदी, विद्यामंदिर, मुरार सं. २०१०) पृ. ४६–४८, भारत के प्राचीन नगरों का पतन (रामशरण शर्मा) पृ. ८९, १५६, युगयुगीन ग्वालियर, पृ. ६–७

१८. पद्मावती, पृ. ७३–७४, भरहुत, पृ. २५–२९, बुन्दे० की लोकसंस्कृति का इतिहास, पृ. २७८–२८०, मध्यभारत का इतिहास, भाग–एक, पृ. २८–२९

१९. आइन–ए–अकबरी (भाग दो, अनु.एच.एस.जैरिट, अंग्रेजी, डी०के० पब्लिशर, दिल्ली, १९९४) पृ. २००

२०. विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, पृ. १४१, युगयुगीन ग्वालियर, पृ. ०७, श्याम स्मृति ग्रन्थ, पृ. २०, पाटल मुद्राओं पर लिखे लेख का पाली से हिन्दी अनुवाद, हरिहर निवास द्विवेदी, विद्यामंदिर मुरार, ग्वालियर ने किया था। और यह २४ अप्रैल १९८८, को ग्वालियर के आचरण अंक में छपा था।

२१. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन (वासुदेव शरण अग्रवाल) पृ. १७७–२००, आचरण ग्वालियर का अंक, २४ अप्रैल, १९९८ देखें।

२२. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. १८३, १८७, १८८–१८९, शिवपुरी, गजेटियर, पृ. १४, श्याम स्मृति ग्रन्थ, पृ. २, ५

— कुंजनपुरा, दतिया म.प्र.

बन्द करौ आतंकवाद

— नवल किशोर सोनी:'मायूस

दस बारा बरसन में तुमनें कर लइ ऐंनइँ मनमानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनो पानी है।।
तुम काश्मीर हँतयाबे खाँ अपने सब दाँव लगा रए हौ।
है जौन जनम सें घर हमाओ तुम ऊसें हमैं भगा रए हौ।
अब कान खोलकें सुनलो जा मंसा पूरी न हुयै कभउँ।
तुम बिना मौत के मरबे खाँ जे सोये शेर जगा रए हौ।
भारत के नर हैं छत्रसाल नारीं झाँसी की रानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।
हम बेर बेर कै रए तुमसें तुम अपनी अपनी ना धौंकौ।
तुम कात कछू हौ करत कछू अब बिना पतेके ना भौंकौ।
अपनी करनी पै पसतैहौ चटनी सी बँटहै अब तुमाइ।
होरा सी भुँजहै फौज सबइ तुम इयै जंग में ना झौंकौ।
अद कुचरो कर दैहै तुमखाँ जा सैना हिन्दुस्तानी है।।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनो पानी है।।
तुम लड़बे खाँ उमछात रात ना हमैं चैन सें रान देत।
हम तुमसें बोलत लौ नइयाँ तुम उपत खुद्दरो आन लेत।
सबरो जग जानत है हमखाँ हम तौ बस शान्ति पुजारी हैं।
का मिल रओ रकत बहाबे में अबै समय तुम जाव चेत।
आतंकवाद खाँ दैय मिटा सबरी दुनिया खिसयानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।
हमेंन हटको है कैउ बेर देखौ तुम हमसें न खुरजौ।
पुटयाओ तुमैं समझाऔ ऐंन नाहक में हमसें ना उरजौ।
अक्कल पै पथरा पर गए हैं सो तुमैं समज में नँई आ रइ।
जा जान लेव अबकी उरजौ तौ सात जनम लौ नँइ सुरजौ।
माटी में तुमैं मिला दैहैं अबकी मन में जा ठानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।
फैला रए हौ आतंकवाद जो अन्त तुमाओ तुमैं खैहै।
वरदान इयै दै तौ रए हौ पै जो भस्मासुर बन जैहै।
सबरी दुनिया धिक्कारत है तउपै नँइ आरई तुमैं शरम।
अब तुम धोके मैं ना रइयो अबकी ना कोउ संग दैहै।
ऐसौ लग रओ है आज हमैं अब स्यात तुमाइं गँधानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।
जो ऐसो पैल पतो होतो तौ तुमैं खोंट देते जरसें।
ऐसे छैंके लगवा देते निकरन लौ नँइ देते घरसें।
जितनो कुड़पन कर लओ तुमनें हमनें ऊ सैलओ है कैसउ।
हमखाँ ना कोउ नाँव धरवै हम बोले नइयाँ ई डरसें।
तागत में तुमसें घट नइयाँ जा बात सबइ की जानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।
भारत की नौंनी बगिया में तुम डारौ नइँ विष भरी खाद।
पैलाँ की सूरत बिसर गइ का ऊखाँ तुम फिरकैं करौ याद।
धीरज को सागर उकसा गओ दिन रात लहू की नदियन सें।
अपनी अब चाव भलाइ अगर तौ बन्द करौ आतंकवाद।
'मायूस' हमाइ अकेली नइँ जा सबइ जनन की बानी है।
ई दइयाँ हमैं देखनें है जो तुममें कितनों पानी है।।

— कोतवाली के पीछे, छतरपुर म.प्र.

बुन्देली के विशेष संदर्भ में –

लोकगीतों से निरस्त होता हुआ लोकरंजन

– डॉ. कैलाश बिहारी द्विवे

लोक मानस की उमंग और उत्साह की अभिव्यक्ति के तीन प्रमुख माध्यम होते हैं। एक लोक साहित्य जिसमें लोक के विचार और भाव प्रतिबिम्बित होते हैं। दूसरा माध्यम है भावों की प्रदर्शनकारी कला या दृश्य श्रव्य ढंग से रूपायन। यह माध्यम भी साहित्य का ही एक अंग है। इसमें संगीत संयुक्त नृत्य और मंचन आते हैं। तीसरा माध्यम है – शुद्ध कला पक्ष इसके अन्तर्गत अल्पनाओं और तीज–त्यौहारों से संबंधित भित्ति आलेखन आते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारा मन–मस्तिष्क तर्क प्रधान होकर चीजों को खण्ड–खण्ड में पहचानने का अभ्यस्त हो गया है जबकि यथार्थ यह है कि किसी भी सांस्कृतिक इकाई के जीवन की समस्त विधाएं घनिष्ट रूप से संश्लिष्ट होती है। उसके मन का राग–विराग उनमें अन्तःसूत्र की तरह पिरोया रहता है।

यहाँ लोकगीतों से निरस्त होता हुआ लोक रंजन प्रसंगान्तर्गत है। रंजन का अर्थ है – आनन्दित होना। आनन्द को यदि हम शास्त्रीय अर्थ में लेते हैं तो इसका अर्थ अधिक व्यापक हो जाता है। जब हम किसी रस की रचना के रस में अपनी अस्मिता भूलकर सराबोर हो जाते हैं तब हमारा हृदय आनन्दानुभूति की अवस्था में आ जाता है, चाहे रचना का रस कोई भी हो।

इस तरह लोकगीतों की कोई भी शैली हो वह लोकरंजन अवश्य करती है। एक बात और भी है कि लोकगीत लोक की उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति है। इसलिए उनमें लोक की उमंग को जागृत करने की सामर्थ्य भी होती है।

लोकगीत लोक जीवन सरस बनाये रखने के सशक्त साधन थे। आज के बदलते सामाजिक परिवेश में उनका तेजी से ह्रास हो रहा है। दिन का प्रारम्भ ही गीतों से होता था। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर महिलाएं चक्की पीसती थीं और पीसते हुए गाती थीं। उस सुवेला का नाम ही 'चकियन की बेरा' था। अब मशीनी चक्कियां गांव–गांव में लग गयी हैं। गरीब से गरीब घर में भी चक्की नहीं पायी जाती है तो भोर में उठती हुई गीत लहरी भी लुप्त हो गयी है। लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान पद्मश्री पं. रामनारायण उपाध्याय के इस सम्बन्ध में कहे गये शब्द बरबस याद आते हैं कि ''अब तो गोकुल से सहज सरल गाँव नष्ट होते जा रहे हैं जहाँ स्त्रियाँ बड़े भोर में उठकर आटे के साथ घने अंधेरे को पीसकर सुहावने प्रभात में बदल देती थीं। (त्रैमासिक गगनांचल जन. मार्च ०३)''

इसी तरह बिलवारीं भी श्रम परिहार सम्बन्धी गीत होते हैं, जो फसलों की कटाई के समय गाये जाते हैं। जैसें ''दिन डूबें से धरा दई लम्बी माँग, किसान भैया बेरा तौ भई घर जावे की।'' ये गीत साधारणतः वहाँ गाये जाते थे। जहाँ बड़े किसानों के यहाँ मजदूर सामूहिक रूप में फसल काटते थे। अब धीरे–धीरे हारवैस्टर्स और रीपर्स के बढ़ते हुए चलन के साथ गीतों का चलन कम हो जा रहा है। एकाकी या अपने परिवार के साथ अपनी फसल काटे हुए वैसे भी लोग गाते नहीं है।''

संक्रान्ति स्नान के लिए आस–पास के तीर्थ स्थल पैदल या बैल गाड़ियों से सामूहिक रूप में जाते हुए लोग रमटे या लमटेरा गाते थे। जैसे ''गनेश देव गजरा खों बिरजे, कै भोर सें ठाँड़े मलिनियाँ के दोर।''– आदि। ये गीत श्रम परिहार के सा आस्था से भी जुड़े होते हैं, लेकिन आज की तीव्र गतिशील जिन्द में सामूहिकता के अभाव के साथ उत्साह और उमंग का भी अभा हो गया है। अब पर्व स्नान कोई गहन आस्था या उत्साहपूर्ण का के बजाय एक औपचारिक परम्परा का काम होता जा रहा है।

देवी की भक्तें, अचरीं, गोटें आदि गीत आस्था से जुड़े है और ग्रामीण जनता में प्रचलन के कारण अभी भी अस्तित्व में इनका लोप कम हुआ है।

होली के अवसर पर गायी जाने वाली फागों का अस्ति बना हुआ है, चाहे नगरीय जीवन में भले ही कम हो गया है नगरीय जीवन में इनका परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। प्रति से रंग पंचमी तक किसी दिन मन्दिरों में फाग होती है भक्तिपरक फागें गायी जाती हैं।

दिवारियों का गायन लगभग समाप्त है, क्योंकि इन प्रायः भाट और भाँड़ गाया करते थे। अब अनेक कारणों से उन्ह इसे छोड़ दिया है। इस स्थिति को स्पष्ट करने वाला एक मुहाव भी प्रचलित है कि ''भूके भाँड़ दिवारी गा रए।'' या दिवारी गाऊत। संस्कार गीतों की श्रृंखला काफी लम्बी है। फूल चौ आगन्नों (पुंशवन) सोहर, लड्डू बँधाई, कुआ पूजन, मुंडन, कर्णछेद जनेऊ और विवाह के गीतों में प्रारंभिक कार्य मध्यावनों अ छटाछटों से लेकर बिदा और दुदाभाती तक के गीत कर्ण छेदन अ जनेऊ की पृथा तो अधिकांश लोगों में लगभग बन्द ही हो गयी कर्णछेदन तो सभी जातियों में बन्द हो गया है और उससे सम्बन्धि गीतों का पूर्णतः लोप हो गया है। जनेऊ का संस्कार बड़ी जाति में शादी के समय कर दिया जाता है। कुछ ब्राह्मण परिवारों यज्ञोपवीत संस्कार पारंपरिक ढंग से सम्पन्न होता है किन्तु तत्सम्ब लोकगीत तो दादियों नानियों के साथ चले गये।

वैवाहिक गीत ही लोकगीतों में प्रमुख हैं। इनमें विविधता बहुत है। ये अनेक शैलियो में गाये जाते है।। इनमें विषय व सम्बन्धी दो विशेषताएँ पायी जाती हैं।

एक तो यह कि जन्म, लगुन, राछ, चड़ाव आदि के गी में सोहर होंगे तो राम या कृष्ण का जन्म होगा। प्रसूता मा कौशल्या या यशोदा होंगी। बालक के पिता राजा दशरथ या

बाबा होंगे। स्थान अवध या ब्रज होगा।

कुछ उदाहरण देखिए –

१. भोर भये नंद लाला जू, शुभ घड़ी आ जइयौ ननदी

२. जनमें राम अवध में, चलौ सजनी।

राजा दसरथ नें हतिया लुटाये, बचो एक ऐरावत बन में।

३. अवध में जन्में राम सलोंना, माता कौसिल्या की कूंख जुड़ानी, दसरथ क नेंना।

माता कोंसिल्या के लाल कहाये, दसरथ जू के छोंना।

४. जन्में कुँअर कनैया बिरज में बाजत आज बधैया।

लगुन चाहे गरीब की कन्या की लिखी जाये चाहे अमीर की, उस समय लोकगीतों में तो वह सीता ही होती है।

उदाहरण देखिये –

१. राजा जनक जू द्वारें ऊबें, सोभा वरनी न जाय मोरे लाल।

राजा दसरथ रामचन्द्र की लै आये बरात सजाय मोरे लाल।

चड़ाव चाहे किसी की भी कन्या का चड़ाया जाय, किन्तु उस समय कन्या को लोक सीता जी की ही गरिमा प्रदान करता है। जैसे – सियाजू कौ चड़त चड़ाव, सोभा अजब बनी, मोरी भंवर कली।

विवाह में गाये जाने वाले लोकगीतों की कथ्य सम्बन्धी दूसरी विशेषता है – व्यंग्यों और अश्लीलता की। ऐसे गीतों का नाम ही गारीं हैं। गारी यद्यपि शुद्ध रूप से गाली अर्थात अपशब्द है, परन्तु न जानें इस 'रलयोदभेद:' सूत्र ने क्या जादू कर दिया कि गाली से जहाँ क्रोध उमड़ता है, प्रतिहिंसा जागती है वहीं गारी से मन में मिसरी घुलती है। जबकि अर्थ तत्व दोनों में समान है। गारियों की अनेक उपविधाएँ या गायन शैलियाँ होती हैं। गारियों के कुछ उदाहरण बेहद अश्लील होने के कारण प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं, परन्तु व्यंग्य विनोद परक कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। इनमें भिन्न–भिन्न शैलियाँ भी दृष्टव्य हैं – उदाहरणार्थ –

''आली कबै मिले जे रघुबंसी दूला।

मोरे हांथ में छल्ला, इन समदी कौ उड़ गऔ हल्ला।''

समधी पर अनेक आरोप जड़ने के बाद टेक यही है –

आली कबै मिले जे रघुबंसी दूला।

इसी तरह कुछ गारियों के नमूने और देखिये –

१. नये समदी कुत्ता पाल लो, हो कुत्ता पाल लो।

कुत्ता की पूँछ जैसें समदी की मूँछ। कुत्ता पाल लो।

२. ऐसे समदी रए बातन के गड़िया, मोरी भँवर कली।

हमसें कतते तीन भैंसियां एक पड़िया, मोरी भंवर कली।

भैंसिया पड़िया कछुअइ नइँयाँ,

दोरें बँदी कुतिया, मोरी भँवर कली।

३. में न्योरें–न्योरें परसन आई, तुमारी सों।

समदी नें सेंन चलाई, तुमारी सों।

बस मो खों भर आई, तुमारी सों।

में नें समदी खों चार चमचा फटकारे, तुमारी सों।

४. बे समदन पतियाँ भरन खों जाँय रसवारी के भोंरा रे।

पनियाँ खों जाँय, उनें गैल मिले यार, उनके काट खाए गाल।

रसवारी....।

उनकें रे गओ पेट, उननें जाए नन्नें लाल, उनकी जात मुसलमान,

उनकौ गोत गपड़तान, उनकौ नाव पन्ना लाल। रसवारी के भोंरा रे।

५. कैसें समदी अनमने, कैसें मन मलीन, ए दईया।

कै तुमनें खा लई भाँगोली, कै चड़ी अफीम, ऐ दईया।

कै हार में समदन दबती नइँयाँ, एई सें मन है मलीन, कै ए दईया।

समधी–समधिन तो ठीक साली–सलहजें तो वर को भी नहीं छोड़ती हैं। इन पंक्तियों में तो सही ध्वनित होता है कि सीता जी की बहिनें भाभियां और सहेलियां राम और उनके भाइयों को छोड़ रही हैं। प्रस्तुत पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

हमनें सुनीं अवध कीं नारीं, दूर रहत पुरसत सें।

लाला खीर खाय सुत जनतीं, रहतीं बड़े जतन सें।

गारियाँ गाने से तरह–तरह के कटाक्ष करने की परम्परा बहुत पुरानी है। लगभग साढ़े चार सौ वर्षों का साक्ष्य तो रामचरित मानस में ही उपलब्ध है। देखिए–सखियाँ फूली नहीं समाबें, दसरथ जू खों गारी गावें, दसरथ खड़े खड़े मुसक्यावें। क्यों नहीं मुस्कायेंगें? दशरथ जी त्यागी, मुनी तो थे नहीं कि वे न मुस्काते। जब ''नवसप्त साजें सुन्दरीं, सब भत्त कुंजर गामिनीं'' के कल गान सुनि मुनि ध्यान त्याग देते थे। कामदेव और कोकिला लजा जाती थी तो राजा दशरथ तो गृहस्थ संसारी राजा थे। जब –

''छरस रुचिर बिंजन बहु भाँती। एक ऐंक रस अनगिन भाँती।

जेवत देहिं मधुर धुनि गारी, लै लै नाम पुरुष अरु नारी।

समय सुहावन गारी बिराजा, हँसत राउ सुनि सहित समाजा।

पचास–साठ वर्ष पहले तक अनेक लोग गारियाँ बनाकर आठ–आठ दस–दस पृष्ठों की छोटी–छोटी पुस्तकें छपवा कर बस स्टैण्डों, मेलों और हाठों–बाजारों में गाते हुए बेचते थे। हाटों–मेलों में बिना पढ़ी–लिखी बहू–बेटियाँ भी उनको खरीदती थीं और दूसरों से पढ़वा कर गारियाँ सीखती थीं।

सबसे अधिक गायी जाने वाली इस लोक विधा के लोप के कुछ सामाजिक कारण हैं –

१. एक तो गारियां मांगलिक कार्यो मे ही गायी जाती थी। अब अनेक कार्य ही चलन से बाहर हो गये हैं। सबसे अधिक गारियां विवाह के समय ही गायी जाती थीं। पहले विवाह एक उत्साह और उमंग का आनंद काज होता था। बारातें भी कम से कम तीन दिन ठहरती थीं। खान–पान और लौकिक आचारों के लिए तीन दिन कम पड़ते थे। स्त्रियां खूब आनन्द मंगल मनाती और गीत गाती थीं। अब स्थिति यह है कि बारात कभी–कभी तो पूरे बारह घण्टे भी नहीं ठहरती। आजकल तो कन्या पक्ष को वर पक्ष के शहर में बुलवा कर लड़के की शादी कर ली जाती है। कन्या वाला बिरादरी और मुहल्ला पड़ोस की स्त्रियों को तो अपने साथ ले नहीं जा सकता है। यात्रा, थकान, नींद पूरी न ले पाने और समय का अभाव तथा

अनेक प्रकार की आशंकाओं के कारण विवाह यथाशीघ्र निबटाने वाला आवश्यक काम रह गया है।

२. दूसरे महिलाओं के अल्प या अधिक शिक्षित हो जाने से गाने में उन्हें झिझक होने लगी है, विशेषकर अश्लील गारियों में।

अब थोड़ा बहुत देहातों को छोड़कर नगरों में तो गारियां गाने का चलन लगभग समाप्त हो गया है। विवाह में गीतों के नाम पर लाऊड स्पीकर से फिल्मों का फूहड़ संगीत सुनाई पड़ता है।

दूसरे अवसरों के गीतों में भी काफी कमी आ गयी है। कन्याओं के खेल नौंरता, अकती, मामुलिया आदि के खेल कम ही खेले जाने लगे हैं। खेले भी जाते हैं तो मात्र परम्परा निर्वाह के लिए, बिना गीत गाये या एकाध गीत टूटा–फूटा गाकर।

दूसरा प्रमुख अवसर होता था महिलाओं के कार्तिक स्नान का, जिसमें कतकारियाँ पूरे एक महीने तक भगवान की भक्ति सम्बन्धी गीत गाती थीं। पूजा करते समय स्त्रियां अपनी–अपनी पूजा पीठ (चोंतरिया) की सहेलियों के साथ आवश्यक समझ कर गा लेती हैं। सब मिलकर आनन्द के लिए गायें, ऐसा प्रायः नहीं होता है।

अब लोकगीत लोक रंजन से बहुलांश में बिदा होकर तथा कृत्रिम रूप धारण कर वैद्युत मनोरंजन में अवश्य आने लगे हैं। परन्तु वे न लोक की इच्छा का फल होते हैं न लोक की उमंग का स्फोट।

सामयिक और सांस्कारिक गीतों के अतिरिक्त लोक रंजन के लिए लोक गाथाओं–आल्हा, धन सींग कौ पवारौ, अमान सींग कौ राछरौ, पारीछत कौ कटक, ढोला पण्डवा, मथरावली, हरदौल, कारसदेव या ऐलादी भुमानी की गाथा आदि का भी मनोरंजन के लिए गायन होता था। अब यदा–कदा ग्रामीण समाज में बरसात की रातों में आल्हा का समाज अवश्य जुड़ जाता था। बाकी सब पवारे, राछरे, कटक, ढोला, पण्डवा, चमेंनी, मथरावली की गाथा के गायक तो लगभग पूर्णतः लुप्त हो गये हैं।

सुरहिन की गाथा का कभी–कभी देवी की भगतों में गायन होता है। ऐलादी भुमानी की गाथा का कारसदेव की गाथा और हरदौल की गाथाएँ आस्था से जुड़ी होने के कारण न्यूनाधिक अभी भी आस्तिक लोकरंजन का साधन बनी हुई है।

लोकगीतों के साथ जब स्वांग और जुड़ जाते हैं तो वह मनोरंजन का और भी सशक्त कारक बन जाता है। जैसे –

१. लड़के की शादी में बारात जाने पर खेला जाने वाला स्वांग–बाबा। इसमें औरतें बहुत मनमानी करती हैं। पुरुष तो इसे देख ही नहीं सकते हैं। अनायास यदि कोई पुरुष फँस जाय तो औरतें कपड़े के गिंदउआ से, पीटती, पुरुषों जैसे गन्दी गालियां देकर खदेड़ती हैं, फिर गाती हैं "भर दुपरै गा रओ री, बरै जो बैरगिया।" यह गीत प्रमुख है। दूसरे भी अश्लील गीत गाती हैं।

२. काँड़रा–धोगियों का एक वैवाहिक नृत्यगीत है जिसे घर का मानदान पुराने राजाओं की तरह की पोषाक पहिन कर नाचते और केंकड़िया बजाते हुए गाता है। एक गीत है – मोरी गड़ी सें जित उरजौ भइरा।

३. ढिमरयायी या रावला – यी ढीमरों का एक वैवाहिक नृत्यगीत है। इसके दो गीतों की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

१. गई–गई रे करोंदा खान, अकेली मोंड़ी ढिमरा की।

२. ओई ताल की मरीं मछरियाँ, ओई ताल के खुदे मुसरा।

पहले काँड़रा, रावला अपने किसानों (जिनका ये काम करते थे।) के दरबाजे जाकर भी नाचते थे। इसलिए जन मनोरंजन का माध्यम भी बनते थे। अब विवाह वाले घर में ही रीति निर्वाह कर लिया जाता है।

४. नृत्य संयुक्त लोकगीतों का सबसे सशक्त माध्यम है राई। राई में श्रव्य मनोरंजन तो होता ही है परन्तु दृश्य मनोरंजन प्रधान होता है। इसमें डेढ़ पंक्ति के प्रायः अश्लील या द्विअर्थी गीत गाये जाते हैं। कुछ गीत व्यंजना प्रधान होते हैं, जिनमें संकेत अश्लील होते हैं। जैसे–ऐसी यारी बर जाय, ओड़त की फरिया बिछा लई या, भई रे बिजत्तर नार, परा में भई रे, पइसा में लग जा आग, पींठ छुल गई रे। राई प्रारम्भ करते समय अवश्य एकाध गीत मंगलाचरण के रूप में देवी–देवताओं को समर्पित रहता है जैसे–शंकर भोलानाथ, पर्वत पै बगिया लगाइयौ।

राई सबसे लम्बा चलने वाला नृत्य गीत है। रात–रात भर यह कार्यक्रम चलता है। ढोल नगरिया वाले और विदूषक तो बेड़नी के इर्द–गिर्द नाचते ही हैं। उमंग में आकर दर्शक भी नाचने लगते हैं। मशालची भी नाचते रहते हैं। इसका आनन्द निम्न रुचि के लोग अधिक उठाते हैं। यह उस वर्ग में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। यहाँ तक कि सागर की राई का प्रदर्शन जापान आदि विदेशों में भी हो चुका है। अब इसको परिष्कृत कर सांस्कृतिक मंचों पर प्रतिष्ठित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। दतिया की दीपशिखा संस्था ने इस दिशा में पहल की है। इसी एक विधा की कम हानि हुई है जो हुई वह लोगों के समयाभाव के कारण हुई है। इसकी जीवन्तता के प्रमुख कारण इसकी गति और त्वरा है।

वर्तमान समय में समाज की स्थिति जटिल हो गयी है। सामाजिक न्याय के नाम पर फैले जातिवाद और प्रजातंत्र के विकेन्द्रीकरण के नाम पर गांव–गांव तक फैले चुनावी वैमनस्य ने लोगों को बेचैन कर दिया है। पहले फिल्म जगत में केवल एक अमिताभ बच्चन को एंग्री यंग मेंन कहा जाता था। आज समाज में अधिसंख्य एंग्री मेंन है।

इसके अतिरिक्त अर्थ प्रधान दृष्टिकोण और दिखावे की प्रवृत्ति के कारण आत्महीनता का बोध तथा असन्तोष अनजाने ही लोगों में घर करता जा रहा है।

तीसरी एक बात और है – आधुनिकता की चकाचौंध में लोक जीवन की हर विधा हेय और दकियानूसी लगने लगी है।

इस प्रकार के उत्साह और उमंगहीन जीवन में जब लोकगीतों का जनरंजन के लिए उपयोग ही नहीं होगा तो धीरे–धीरे उनका लोप होते जाना अवश्यंभावी है।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र.

बुन्देलखण्ड के अज्ञात कवि एवं आल्हा गायक शिवदयाल कमरिया

– रामप्रकाश गुप्त 'साकेत'

बुन्देलखण्ड की काव्य–उर्वर धरा में अनेक प्रसिद्ध लोक कवियों ने जन्म लेकर इसे गौरवान्वित किया है। यहाँ के गाँव–गाँव में लोक रचनाकारों ने अनुपम रचनाओं का सृजन करके बुन्देली ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध किया है। किन्तु आज भी ऐसे अनेक रचनाकार हैं जो उपेक्षा एवं विस्मृति के शिकार होकर अज्ञात या अल्पज्ञात हैं। ऐसे ही एक रचनाकार हैं – शिवदयाल कमरिया 'शिबूदा'। शिबूदा एक ओजस्वी आल्हा गायक एवं आल्हा व फागों के रचयिता थे और आल्हा गायक के रूप में उनकी ख्याति पूरे बुन्देलखण्ड में थी। किन्तु 'शिबूदा' का उल्लेख किसी शोध ग्रन्थ में नहीं मिलता है। बुन्देल–वैभव, बुन्देली का फाग साहित्य जैसे शोधग्रन्थों में भी इनकी कोई रचना या नाम नहीं देखने में आया है।

'शिबूदा' का जन्म आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले मध्यप्रदेशीय बुन्देलखण्ड के टीकमगढ़ जिले के निवाड़ी तहसील के बेतवा तटवर्ती ग्राम 'पुछीकरगुवाँ' में एक कमरिया ठाकुर परिवार में हुआ था। सिबूदा को किशोरावस्था से ही आल्हा गाने का शौक था। युवा होने पर उन्होनें आल्हा के अनेक प्रसंगों की रचना की थी। उन्होंने बुन्देली में चौकड़िया फागों की भी रचना की थी। शीबू ने अपना काव्य गुरु बुजुर्ग आल्हा गायक अछरजू को माना था, अछरजू बुन्देला ठाकुर थे। शीबू पढ़े लिखे नहीं थे इसलिए वह अपना आल्हा कण्ठस्थ करके गाते थे।

शीबूदा के विषय में अनेक घटनायें प्रचलित हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'मुंशी अजमेरी' नामक संस्मरण पुस्तक में शिबू दा के बारे में कुछ रोचक प्रसंगों का उल्लेख मिला है। वह लिखते हैं – 'चिरगाँव से चार–पाँच कोस दूर बेतवा के पार, एक गांव में शिबू कमरिया नाम का एक गुणी रहता था। फाग और आल्हा बनाने तथा गाने में वह दूर–दूर तक प्रसिद्ध था। एक बार किसी गम्भीर अपराध में उसके लड़के को जन्म भर के कारावास का दण्ड मिला और वह टीकमगढ़ की जेल में डाल दिया गया। टीकमगढ़ में उन दिनों महेन्द्र महाराज प्रताप सिंह जू देव गद्दी पर थे, वे ही चाहें तो उसे छोड़ सकते थे। शिबू टीकमगढ़ पहुँचा। महाराज के प्रासाद के नीचे ही एक स्थान पर रात को उसने आल्हा गाना आरम्भ किया। आसपास के बहुत से लोग सुनने आ गये। दो–तीन दिन पीछे महाराज की आज्ञा हुई, हम भी शिबू का आल्हा सुनेंगे। शिबू यही तो चाहता था। उसने एक महीने तक महाराज को आल्हा सुनाया। महाराज प्रसन्न हुए और शिबू ने अपने लड़के को बन्धन मुक्त करा लिया।'

गुप्त जी ने शिबूदा के स्वाभिमान की चर्चा करते हुए एक अन्य घटना के बारे में भी लिखा है – 'वह (शिबू दा) अपने गुण का गर्व भी रखता था। एक छोटी सी रियासत में उसे बुलाया गया। रात को शिबू सभा में पहुँचा तो उसने देखा कि चण्डूलों के बहुत से पिंचरे इधर–उधर टंगे हैं और वहां के राव साहब तथा उनके परिवार के लोग चंडूलों की ही चर्चा कर रहे हैं। उसने अपनी सारंगी मिलाकर गाना आरम्भ किया। लोगों ने उसकी ओर जैसा चाहिए, ध्यान न दिया। वे चण्डूलों की ओर ही दत्त–चित्त रहे। वस्तुतः चण्डूलों को जगाने के लिए ही यह गाने–बजाने की व्यवस्था थी। शिबू को यह असहय हुआ। दो–एक बार इधर–उधर देखकर सहसा उसने कहा – ''हम या जगइया हैं चिड़ियन के, चढ़ें न ऐसिन के दरबार'' और सारंगी पटक दी। गुप्त जी ने आगे लिखा है मैंने के, चढ़ें न ऐसिन के दरबार'' और सारंगी पटक दी। गुप्त जी ने आगे लिखा है – मैंने 'यशोधरा' के शुरू में आल्हा की जो दो पंक्तियाँ दी हैं वे उसी की हैं, वह पंक्तियां हैं –

''कारी बदरिया बहन हमारी, कौंधा बीरन लगे हमार।
आज बरस जा मोरी कनवज में, कत्ता एक रैन रह जाय।।

इसी प्रकार शिबूदा के स्वाभिमान और कला सम्मान की रक्षा की एक घटना और भी है। कहा जाता है कि जब शीबू के पुत्र ने एक ब्राह्मण की हत्या कर दी तब बिरादरी वालों ने उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया था। एक बार बिरादरी के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने शीबू के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह जाति की पंचायत में आल्हा गा दें तो जाति में फिर से सम्मिलित कर लिया जायेगा। शीबूदा आल्हा गाने के लिए तैयार हो गये, जब वह गाने के लिए बैठे तब उन्होंने पूंछा पंचायत कौन सी लड़ाई सुनना पसन्द करेगी, इस पर पंचायत के मुखिया ने कहा आप को जो ठीक लगे वही सुना दीजिये, यह सुनकर उन्हांने कहा ''मुझे ऐसी जगह पर अपनी कविता नहीं सुनाना जहां कोई उसका महत्व नहीं जानता हो। हमें जाति वापिस ले या न ले इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, और बिना गाये चले गये।

शीबू दा आल्हा का गायन स्वयं सारंगी बजाकर करते थे। उनके भाई गोरेलाल तबले पर संगत करते थे। वह अपना आल्हा गायन राजाओं–महाराजाओं के दरबार में या निमंत्रित समाज के लिए करते थे। जनसाधारण के लिए वे नहीं गाते थे। आल्हा की रचना और गायन ही उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य था। उनका आल्हा कभी खत्म नहीं हुआ आजीवन वह इसकी रचना और गायन में संलग्न रहे। जब शीबूदा ने टीकमगढ़ दरबार में लगभग एक महीने आल्हा सुनाया तब एक दिन महाराज प्रताप सिंह ने पूँछा भाई तुम इतने दिनों से आल्हा सुना रहे हो यह खत्म कब होगा। तब शीबू ने कहा कि आल्हा का सौन्दर्य यही है कि श्रोता उसको सुनकर थकान या बोरियत महसूस न करें।

शिबूदा पढ़े लिखे नहीं थे। इसलिए उनका बनाया आल्हा उनके कण्ठ में ही रहता था। उनकी वृद्धावस्था में उनके मित्रों ने उनसे आल्हा लिखवाने की प्रार्थना की तब शीबू ने वृन्दावन पटवारी को आल्हा लिखाना शुरू किया किन्तु वृन्दावन कुछ ही वर्णनायें लिख सके थे। शिबूदा का जो आल्हा आज मिलता है वह वृन्दावन

पटवारी की प्रति का ही है। शिबूदा द्वारा रचित कुछ ही वर्णनायें मिलती हैं इनमें – माहिल की चुगली, आल्हा ऊदल का महोबा छोड़ना, पृथ्वीराज की महोबे पर चढ़ाई, मनियादेव का सपना, आल्हा वापसी और कजरी उत्सव आदि प्रमुख हैं। शिबूदा के आल्हा गाने की धुन अलग ही थी, और इसके गायन में सिर्फ ढोलक द्वारा संगत होती थी। शिबूदा द्वारा रचित आल्हा के कतिपय अंश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं –

हर भले हिरना भले और सगुना भले किसान।
अरजुन रथ को हाँक तो तुम्हारी भली करें भगवान।
आल की पत्रका मलखान नें दई हरसिंह के हाथ।
कहत मलारौ हरसिंह भाई, धावो दिन और रात।।

०० ०० ००

ग्यान मान सें बिगरत है, और मंत्रित बिन बिगरै राज।
जती कुसंगत सें बिगरत हैं, और सुरापान सें लाज।।
दाता बिगारे सूंमन नें, घट करनी नें बिगारे नूर।
सभा बिगारी तो अरे कौरन नें, और कायरन नें बिगारे सूर।।
दूध बिगारे बछला नें, मछली नें बिगारे नीर।
पुष्प बिगारे अरे भुमरा नें, प्रमदा नें बिगारे फकीर।।
गाँव बिगारे अरे डण्डी नें, और काई ने बिगारे ताल।
महिल भूपति की चुगली में, राजा बिगर गओ परमाल।।

शिबूदा आल्हा के साथ–साथ फागों के गायक व रचनाकार भी थे। फागों की रचना करने के लिए वह 'पजन' उपनाम की छाप लगाते थे। पजन उपनाम से लिखीं फागें उनके गांव के आस–पास के फगवारे आज भी गाते हैं। इनकी अधिकांश फागें चौकड़ियां ही हैं। फागों में पजन छाप के साथ–साथ कहीं पर एक अधीली भी मिलती है। – ''बाबा पजन कौ नाथ स्यामलिया।'' फागों के वर्ण्य विषय श्री श्रृंगारिक ही हैं। राधाकृष्ण के होली खेलने के प्रसंगों का वर्णन अत्यन्त सरसता पूर्वक उन्होंने किया है। शिबूदा की कुछ चुनिन्दा चौकड़ियां फागों की बानगी देखिये –

१. छेड़ो न स्याम कही मानों, फट जैहे चुनरिया ना तानौ।
मैं बेटी वृषभान लाड़ली, और गुजरिया ना जानौ।
जाय कहो में कंस रजा सों, और गुजरिया ना जानौ।
'बाबा पजन' कौ नाथ स्यामलिया, मथुरा बैठ जैहे थानौ।।

२. दूरई से हेत हतो हर सें, कर छू ना लओ कौनई कर सें।
लै नई जात हते कछु अपनों, मीठे बोलन के कर सें।
बाहर जात पछारूँ बोलें, पैलें कुरा जमो घर सें।
कहत पजन मोहन को मिलबो, जरूवन जार दयो जर सें।।

३. दै राखौ नेहा पुराने में, गोरी जब बारे अब स्याने में।
बालापन कछु मजा न पाओ, खेलो खेल अजाने में।
जब जानें जब अब दो प्यारी, जोबन जोर जमाने में।
कहत 'पजन' जस कर प्यारी, अपने जियत जमानें में।।

४. बस चलें न गिरवर धारी पै, जसुदा के कान अनारी पै।
दिवस गैल जमुना की बाँधें, रातै चढ़ै अटारी पै।
चूनर झटक बदन सें लीनी, नैक चिड़ैना गारी पै।
बाबा पजन के नाथ स्यामलिया, करैं का ऐसी यारी पै।।

५. बृज कौ हाल लिखौ आली, कुब्जा बस हो गये बनमाली।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, बारे की बिछुरन साली।
इतै भरे रतनागर सागर, उतै भरे हैं दौकाली।
बाबा 'पजन' कौ नाथ स्यामलिया, बाबा नन्द कौ है जाली।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शीबूदा ने जहाँ एक ओर वीर रस में आल्हा जैसी ओजस्वी रचना की, वहीं उन्होंने श्रृंगार परक के फागों की रचना भी सफलता पूर्वक की। ऐसे बहुआयामी रचनाकार का अधिकांश काव्य अज्ञात और अप्रकाशित है। शीबूदा के काव्य का शोध और प्रकाशन बुन्देली लोकसाहित्य के संरक्षण की दिशा में किया गया एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

– गृहपति सदन, विद्यानगर कालोनी, चिरगाँव, झांसी (उ.प्र.)

बुढ़ापौ

– भानुप्रताप शुक्ला 'भानु'

बुढ़ापौ पीतन पर गओ राम।
चोला सूक ठेठरौ हो गओ, सिकुर लटक गई चाम।। बुढ़ापौ....।
कपन लगे कर, कान बधिर भये, आँखन कछू न सूझै।
गाँव, पुरा की बात को चालै, घर कौ बात न बूझै।।
डग, डग लगै कोस सी, चलतन, देह भुमै–भोंरा सी।
दाँतन बिना, पेट हाजित भओ, मुरै न रोटी ताती।।
ठण्ड कपावै काढ़ करेजौ, प्रान निकारे घाम। बुढ़ापौ....।
पथभये कुपथ, नियम–संयम गये, मानपान सब छूटे।
नाते, नेह शान–शौकत के, सबरे तन सें टूटे।
शिथिल भये सब अंग, शेष नहु, शक्ति रंग–रागन की।
तिसना सुरसा बनी अभागिन, तोऊ विरधापन की।।
हो गओ जौ अनमोल मनुज तन, हीरा सौ वेकाम।। बुढ़ापौ....।
चुल्लू भर पानीं हाँ तरसत, 'नतबउ' कान न देवै।
कैरई 'को बैठो सरतारौ?' खुद उठ कें भर लेबै?
मोरी तौ नकुँअन दम हो गई, ई! बुड़ा के मारे।
ई! के सँग के रूख उखट गये, इयै राम कायें डारें।।
सुख सें सोन न देत, करें घरभर की नींद हराम।। बुढ़ापौ....।
तनकइ जगबो बैरी हो गओ, अनकर करबे ब्यारी।
गड़गुड़ होवै पेट, बजाबे डमरू मनो मदारी।।
उकरूँ तनक वैठ तन, उठतन, घुटना काम न करबें।
जोई तनक सिकोरौ, तौ ना फिर जें! ससुर पसरबे।।
करयाई कीं न्यारीं कसके निगतन नसें तमाम।। बुढ़ापौ....।
संम्पाती से परे पंख विन, भरवें उल्टी साँसें।
टूटी खटिया पै, आँगन में सब दिन कूलें, खाँसे।।
बउ, बिटिया लौ करै न परदा, लरका जुर चमकावें।
विपदा, व्यथा 'भानु' ई! पनकी कालौ, कियै सुनावे?
सब दिन कुत्ता सौ दुतकारे घर की वैरिन ग्राम।। बुढ़ापौ....।

– संदीप सदन, कंचनपुरा, निवाड़ी टीकमगढ़ (म.प्र.)

गारियों में बुन्देली नारी

– डॉ० आर०बी० पटेल 'अनजान'

"यत्र नारियस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" अर्थात् जहां पर नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवतागण निवास करते हैं। इस कथन की पुष्टि हमारे भारतीय ग्रन्थ करते हैं। लेकिन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देली समाज में प्रचलित गारियों (अपमान सूचक शब्द) से तो बुन्देली नारियों के प्रति प्रचलित भाव इकदम उल्टे प्रतीत होते हैं। बुन्देलखण्ड में जहाँ लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई एवं अवन्तीबाई जैसी क्षत्राणियों की गाथाएं इतिहास प्रसिद्ध हैं तथा नारी का स्थान स्तुत्य माना गया है, किन्तु बुन्देली समाज में इन्हीं नारियों को तरह–तरह की गारियों से नवाजा जाता है।

गारी बुन्देली साहित्य की एक प्रमुख विधा है, जिसकी महारथ नारियों को प्राप्त है। बुन्देलखण्ड का प्रत्येक उत्सव, पर्व, त्यौहार तथा संस्कार गारियों से अछूता नहीं रहता। इनके गाने का अलग–अलग ढंग एवं समय इन नारियों ने अतीत काल से अपने पास संजोके रखा है, और आज भी तरह–तरह की गारियाँ गायी जाती हैं। यथा–

चौक चन्दन बिन आंगन सूनो, कोयल बिन अमराई।
राम बिना मोरी सूनी अजुद्या, लक्ष्मन बिना ठकुराई।
सीता बिना मोरी सूनी रसुइया, कौन करे चुतराई।।

परन्तु यहां पर इन शुभ सूचक गारियों की चर्चा नहीं, बल्कि अशुभ सूचक गारियों का उल्लेख किया गया है जिनके माध्यम से नारियों को अपमानित किया जाता है। ये गारियां (अपमान सूचक) भी तरह–तरह की होती है। जिन्हें हमने मुख्यतः चार भागों में विभक्त किया है – १. परिस्थिति विषयक, २. जानवर विषयक, ३. जाति विषयक, ४. चरित्र विषयक

परिस्थिति विषयक –

परिस्थितियों के अनुसार नारियों को तरह–तरह की गारियां दी जाती हैं। परिस्थितियां ही नारी–पुरुषों को प्रोत्साहित एवं अपमानित करवाती हैं। एक नारी किसी पर पुरुष के पास खड़ी हो जाती है और उसका पति उसे देख लेता है तो उसे रांड़, कुलटा, बंगालिन आदि तरह–तरह की गारियां सुनाता है तब वह अपनी सफाई देती हुई कहती है।

अनुआं का भओ जांत लगाएं,
जौ लौ राम बचाएं,
रांडे पकरी जांच पेट सें,
ऐबातिन की बांयें।
ऐंगर ठांढ़ो देख लेय कोऊ, आंखें चार मिलायें।
ईसुर चन्द होत न मैले, काऊ के धूर उड़ायें।।

अर्थात रांडे एक न एक दिन पकड़ी ही जाती है। एक बुन्देली पत्नी के पति किसी काम से घोसीपुरा नामक गांव में जाता है तो वहां उसे किसी कारण से रुकना पड़ता है, इससे उसकी पत्नी को घोसीपुरा की छुकरियों पर शंका हो जाती है। वह कहती भी हैं –

बारे बलम को बेर–बेर हटकी,
घोसीपुरा जिन जाव।
घोसीपुरा की चंचल छुकरियां,
बलमा लये बिलमाय।।

बुन्देली नारियों के नाचने की अजीब कला होती है किन्तु कुछ ईर्ष्यालु नारी–पुरुष होते हैं जिन्हें उनकी यह कला रास नहीं आती है, तब उसे अपमानित करते हुए ये गारियां देते हैं – बेड़नी सी नचत, पतुरिया सी फरकत, नागिन सी लहरात आदि।

आधुनिक संतानें तो समस्त मान–मर्यादाएं भूलकर विदेशी संस्कृति का अनुसरण करने लगी –

वेलेंटायन डे के माने, ढंग से जेना जानें।
लै लै के उपहार सोचते, जाबें कहां मनानें।
लगी चुड़ैल विदेशी सूंघन, देशी चाल भुलानें।
सबके सामू लगे 'मनोहर', खुलके चोंच लड़ानें।

किसी बुन्देली नारी के यदि संतान नहीं होती है तो उसे समाज में बांझ, कलोर, कहा जाता है और यदि संताने मृत हो जाती हैं तो उसे नागिन, सांपिन, चुड़ैल, डांकिन आदि गारियों से प्रताड़ित किया जाता है। घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण एक बुन्देली नारी मैदान में घास काटने जाती है तो उसे घसिहारिन की संज्ञा दी जाती है –

वह घसिहारिन घास काटती, दिन दिन भर मैदान में।

अतः अलग अलग परिस्थितियों में अलग–अलग प्रकार की गारियों सें अपमानित किया जाता है।

जानवर विषयक –

बुन्देली नारियों को जानवर विषयक गारियां दी जाती हैं जैसे – कुतिया, भैसिंया, छिरिया, सुगरिया, गैया, पड़िया आदि। इन समस्त गारियों के अलग–अलग प्रसंग देखने को मिलते हैं। जब कोई नारी एक घर से दूसरे घर या इधर उधर घूमती या नाचती है तो उसे कुतिया कहा जाता है यथा – "बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई, दतिया की गैल में कुतिया नचाई।" और जब किसी नारी का अधिक मुँह चलता है तो उसे छिरिया (बकरी) और सुँगरिया कहा जाता है। जब कोई महिला अधिक मोटी ताजी हो जाती है तो उसे भैंसिया की उपमा दी जाती है। जैसे फलां की बहू या मताई भैंस हो रई।

एक बुन्देली पुरुष किसी धार्मिक स्थान पर अपनी पत्नी के साथ जाना चाहता है किन्तु उसकी पत्नी जाने से मना कर देती है, तब वह कह उठता है – सबरी कुतियां प्रागन जान लगैं तो हंडिया को चाटै। इस प्रकार अनेक जानवर विषयक गारियों से अपमानित किया जाता है। गारी विषयक एक उदाहरण देखिए –

का कहावत है आजादी, इनखों अबै पतौ तैंया,
बने बैल से जे कोलू के, घर की जनी बनी गैंया,
अद पेटा रै रै जावें जे पानी पी के पर रये।
साउकारन के मजा खूब हैं, दीन तौ भूंकन मर रये।
सालन से जे उनके घर बँधुआ मजदूरी कर रये।।

जाति विषयक –

बुन्देली नारियों को जाति विषयक अनेक गारियां भी दी जाती हैं। उच्च वर्ग के लोग निम्न जातियों से सम्बंधित चमारिन, धोबिन, बसोरिन, खबासिन, ढिमरिन, काछिन, नटिन आदि और निम्न जाति वाले उच्च वर्ग से संबंधित पंडिताइन, ठकुराइन, बानिन आदि अपमान सूचक शब्दों का प्रयोग किया करते हैं।

एक होली गीत में एक पत्नि स्वयं जातीय परिवर्तन को स्वीकार करती हुई कहती है –

नजरिया मोइसों लगइयो मोरे राजा,
कै मोरे राजा अंगना में कुअला खुदइओ,
ढिमरिया मोई खों बनइयो मोरे राजा।
मोरे राजा अंगना में बगिया लगइयो,
मलिनिया मोई खों बनइयो मोरे राजा।।

एक अन्य गोत में नारी को काछनियां कहा जाता है –

कुम्हार की बऊ खों का देखने,
घूरन घूरन कंडी बीनत फिन्नै।।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण लोक मानस में सुने जा सकते हैं।

चरित्र विषयक –

आज का समाज शंकाओं में डूबता उतराता है। हर व्यक्ति में चारित्रिक कमी का अंदेशा करता है और महिलाओं के बारे में तो पुरुष वर्ग लगभग ७५ प्रतिशत महिलाओं को चरित्र कमी का शिकार मानता है तथा उनके संबंध में तरह तरह की धारणायें मन में पालता है और उसे तरह तरह की गारियां देता है जैसे कुलक्षिनी, कलंकनी, नकटी, बदचलन, हरजाई, रण्डी आदि। एक राई गीत में हनन की बात उजागर की गई है –

नर्तकी – रडुआ न मरे रडुआ न मरे, छाती के पथरा बने रये।
फागकार – मत हो गई कलोर, रडुवन की खा खा कमाई।
नर्तकी – हम पै लाखो मरे, हम न मरै रजुआ काऊ पै।
फागकार – तुमरे लाखो भए, तुम न भई धन्नो काऊ की।।

इस प्रकार चरित्र विषयक गीत भी बुन्देली लोक साहित्य में पर्याप्त उपलब्ध हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बुन्देली साहित्य में बुन्देली समाज के समस्त पहलुओं का चित्रण मिलता है चाहे वह समाज के उत्थान का हो या पतन का। बुन्देलीं साहित्य में, बुन्देली समाज में प्रचलित बुन्देली गारियों का पर्याप्त भण्डार भरा है। जो शोध का एक विषय बन सकता है।

– शासकीय हाई स्कूल बमनौराकलां
जिला छतरपुर म.प्र.

तुम दहेज कौ नाँव न लइयो

– डॉ. विनोद कुमार खरे

तुम दहेज कौ नाँव न लइयो,
बैसइं हमैं कछू नइं चानै।
मौड़ी वारे कौ दुख भइया,
कौन कछू हम हूँ नइं जानत।
जो नर–पसू दहेज माँगतइ,
सौ सौ बार वाय है लानत।।
तुमरे दयँ का बनैं लपकती,
कौन मूँड पै धल्ले जाने। तुम दहेज कौ......
कल्लइँ कै गये कटनी बारे,
पाँच लाख सो बेई जानै।
अब्बइँ गये बनारस बारे,
जिनके छ: घर, आठ दुकानैं।।
हमखौं तो सबकी सुन्नै है,
अपने मौं से कछू न कानै। तुम दहेज कौ......
कोउ मौड़ी बारो जब्बी,
घर सैं निकरत है जी छन मैं
भलइँ फूल की जगा पँखुरी,
कछू सँकलप करते है मन में।।
जो सँकलप चले, लै घर सैं,
थौड़ौ भौत हमउँ तो जानैं। तुम दहेज कौ......
मोई तौ कुछ माँगाइ नोंई,
कौन हमैं तुम जानत नइँयाँ।
जी समाज में हमखौं रैनैं,
वो समाज तौ मानत नइँयाँ।।
अपुन दोउ हैं, इज्जत वारे,
जई मौका देखनै दिखानै। तुम दहेज कौ......
जैसीं हो रइँ आज काल सौ,
ऊसी ई सादी कर लैहैं।
टेलीबीजन, फ्रिज, स्कूटर
जौ तौ आप बिनई कयँ देहैं।
और जो कछू तुम दै हौ सो,
तुमाई ही मौड़ी के लाने। तुम दहेज कौ......
जा मैंगाई में ओ भइया,
एक लाख रुपया का मानै?
तिलक, लगुन, टीका, बेला में,
ई सैं का कम आपइ जानै??
बस किराव भी आपई समजौ,
समजदार खौं का समजानैं। तुम दहेज कौ......

– ७२, चन्द्रशेखर आजा...
झाँसी (उ.प्र...

बुन्देली काव्य में कृष्णलीला

– डॉ० रामनारायण शर्मा

बुन्देलखण्ड प्रकृति–पुरुष की क्रीड़ास्थली रही। श्री कृष्ण और चंदेरी नरेश शिशुपाल का पुराणों एवं इतिहास में वर्णन है। वेदव्यास की यह कर्म–भूमि रही। अतएव कृष्णभक्ति की धारा यहां अनन्त काल से प्रवहमान रही। इस धारा के लोक–जीवन, लोक साहित्य में दर्शन होते हैं।

मैंने इस आलेख में जिन चार बुन्देली कवियों को विचार हेतु सम्मिलित किया है वे हैं महाकवि ईसुरी, आचार्य चतुर्भुज चतरेश झांसी, पं. घासीराम व्यास, मऊरानीपुर झांसी, तथा पं. रामसेवक त्रिपाठी सेवाकेन्द्र ललितपुर, सं. १८९८ वि. से १९२३ वि. के कालान्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि अपने समय, परिस्थितियों और जनगण के मन के भावानुरूप विचाराभिव्यक्ति करता है। किन्तु विषयाधार को लेकर ही वह चलता है, चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो। विषयाभिव्यक्ति अपनी अवश्य हो सकती है। 'भ्रमरगीत' की भावभूमि महाभारत काल अर्थात् 'श्रीमद्भागवत' काल से उद्भूत हो आधुनिक भौतिक युग तक निरन्तर प्रवाहमान है और कालजयी है। क्योंकि यह सृष्टि पर उसके नियन्ता का दर्शन है। दर्शन अथवा विचार अपरिमेव, अक्षुण्य और शाश्वत होते हैं। उसी प्रकार ईश्वर और जीव के बीच का सत्य भी अपरिवर्तनीय है, सच है और सार्वभौमिक है। इसी आधार को मानकर मैंने बुन्देलखण्ड के जिन चार प्रतिनिधि कवियों के भ्रमरगीत काव्य पर विचार प्रस्तुत करने हेतु १. प्रेम प्रतीति, २. लीलामृत, ३. संदेश एवं ४. अभीष्ट आदि बिन्दुओं को आधार बनाया ह। जिससे इनके काव्यों के मर्म को समझा जा सकता है। यहां मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यहाँ मेरा अभिप्राय सीधा काव्यात्मक स्वरूप का प्रस्तुतीकरण है। इसमें आध्यात्म या दर्शन की मीमांशा करना नहीं है। किन्तु विषय वस्तु को स्पष्ट करने के मन्तव्य से कुछ दार्शनिक सुस्पष्टीकरण को अपनी क्षमतानुसार देना आवश्यक मानता हूँ।

प्रेम और प्रतीति –

ब्रह्म और जीव एक अंशाकार ही माना गया है। किन्तु जीव अपने परम तत्व (ईश्वर) से विलग हो जाता है तो वह उससे अपने को प्रेमानुराग के माध्यम से जोड़े रखता है। इस अनुराग का वैसे ही ऐहिक प्रेम है। किन्तु जीव रूपी गोपियां जिस परमार्थिक राग से अपने परम तत्व (ब्रह्म) से तादात्म्य बनाये रखती है, वह परकीयाभाव से पतिव्रत के संयुत से अपने इष्ट में (अद्वैत रूप) में लीन होना है। ऐसा प्रेम अत्यंत पुनीत, अनिंघ, अलौकिक, अमान्य माना गया है। इस 'प्रेम की पीर' की अभिव्यंजना व्यापक और पारलौकिक होती है। इसका स्वरूप प्रेम तत्व का ही पर्याय बन जाता है। इसमें प्रेम की पीर ईसुरी ने जैसी सही वैसी ही उन्होंने बखान की है –

१. अटकी पोत पिया पियारे सें, पीरे पट बारे सें।
२. मैंने मन मुदरी में गाड़ौ, राम रतन कों छांड़ौ
३. हंसा फिरें बिपत के मारे, अपने देश बिना रे
ईसुर कात कुदुम अपने सें, मिलबी कौन दिनारे

जीव अपनी आराधना में आत्मतत्व से मिलने की यहां काट कर रहा है। यही प्रेम और प्रतीति की बात है।

ऐसे ही प्रिय और प्रिया स्वरूप के भाव आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने व्यक्त किये हैं –

१. बीते बारह मास के फूले तरुवर एन।
हमें पिया प्यारे बिना, परै न पल भर चैन।
२. सोबत उदकी पलंग पै, भर–भर रोई नैन।
विधना ऐसे मिलन में कबहु न बीते रैन।

पं. घासीराम व्यास ने इन सब से प्रीत–पुरातन की पावन अंगिया ओढ़े प्रिया अपने प्रेम का इजहार कर रही है–

१. पावन प्रेम सो पीत परी तन,
ओढ़े प्रिया अंग की अनुहारी।
त्यों माधुरे रस बोलन के मिस है,
मुरली अधरान सम्हारी।
व्यास कहें लरकी लरकी सम,
जान लई लकुटी कर प्यारी।
२. नीति नय निपुण पुनीत प्रण पाले पुण्य
परम पुनीत प्रीति सुख सरसाबै है।
प्रेम की कथान को सुनाबै हरसाबे हीय।
ध्यान गुन कौतुक नवीन दरसावै है।
'व्यास' कहें धरम–धुरीन धृति ध्येय ध्यान,
धारणा समाधि सिद्धि साथ समझावे हैं।

आचार्य रामसेवक त्रिपाठी ने तो प्रेम को ही परमेश्वर का पर्यायवाची बताया है।

पाइवौ जो चाहौ तो उपासो, एक प्रेम ही कौं,
प्रेम–प्रतिमा जो मन मंदिर में रांची है।
प्रेम–पाइ पढ़ि कै न पढ़िबौ कछू है और,
जासौं महामूढ़ होत साँचौ सव्य साची है।
मानवता मानव में राजै एक प्रेम ही सौं,
हैरौ जित तित प्रेम ही की धूम माची हैं।
है न रुचि राँची यह काची नांहि सांची अहै
प्रेम परमेश्वर को परिआयवाची है। (ब्रजवर्तिका)

व्यासजी ने अपने काल–परिस्थिति के अनुरूप प्रेम की प्रतीति को सारी मानवता से भी जोड़ कर एक अनुपम कार्य किया है। प्रेम जिसके प्रति अर्पित है, और वह एक–निष्ठ, आत्मतत्व पर आधारित है तो अपने प्रिय से दुराव व संकोच के भाव स्वत: समाप्त हो जाते। जहाँ समर्पण है वहां प्रेम की स्निग्धता में अनासक्ति नहीं

वरन् आसक्ति और साधिकार–चेष्टा का बंधन निर्मित हो जाता है। इस में दोनों ओर से प्रीति का संप्रेषण के साथ लौकिक बंधनों की सीमाएँ तक सिमिट कर तिरोहित हो जाती हैं।

प्रेममार्गी किसी धार्मिक, सामाजिक व्यवस्थाओं तक से ऊपर एकीकार हो अनन्य प्रेम की व्यंजना निर्मित कर जीवन के सार–तत्व को समझ अनन्त से तादात्म्य कर लेते हैं। जीव अपने इष्ट से इसी प्रकार तादात्म्य स्थापित कर लेता है तो वह उससे समझता है। उससे आत्मिक भाव की अपेक्षा करता है। रास–रस–रंग के द्वारा वह अपने प्रिय के साहचर्य को बना कर हर्षित होता है। यही भाव 'भ्रमर गीत' काव्यों में श्रीकृष्ण और गोपियों के बीच दिखाया गया है जिसका दार्शनिक महत्व है। किन्तु यहां मैं मात्र श्री और 'श्रीकृष्ण' एक गोप–गोपिकाओं की रास के विषय में बुन्देलखण्ड के भ्रमर गीतकारों के काव्य में वर्णित स्वरूप को प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

रास–रस–रंग –

कविवर ईसुरी ने अपने मथुरा–वृन्दावन प्रवास में रास–लीलाओं का रसास्वादन किया था। जिसके आधार पर ही उन्होंने 'श्री' (राधा) और श्रीकृष्ण के छेड़–छाड़ और प्रेम में पगे गीतों का सृजन किया। उनमें से राधा–कृष्ण से बरजोरी न करने के काव्य–व्यंग्य इस प्रकार हैं –

उरजो न श्याम, कही मानों, फट जैहे चुनरिया ना तानों।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बसत है बरसानों।
राज बुरओ है कंस रजा कौ, मथुरा बीच रूपो थानों।
मैं बेटी वृषभान रजा की, और काऊ की ना जानों।

इस प्रकार कंस राजा की धमकी देकर श्रीराधा जू श्रीकृष्ण को डराती हैं। लेकिन वहीं पर ईसुरी लिखते हैं कि गोपियां तो स्वयं कृष्ण से मिलने को तरसती हैं और बहाने बना कर जमुना तट जाती हैं –

सपरन अंदयारे में जातीं, जमुना रोज नहातीं।
कुंजन और कछारन ऊपर, मोहन सें इठलातीं।

श्याम की बांसुरी की ध्वनि सुन सभी गोपिकाएं श्रीकृष्ण से मिलने को आतुर हो जाती हैं –

बन में बाज रही बांसुरिया, मो लये गुवाल मधुरिया।
फैलो फिरत सबद बंसी कौ, ज्यों जादू की पुरिया।

बंसी की धुन सुन सब सुध–बुध भूल श्रीकृष्ण के सानिध्य के लिये मधुवन पहुंच जाती है।

दूसरी ओर आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने तो लीला अमृतकाव्य को 'पनघट लीला' दान लीला, उराहना लीला काव्यों एवम् रासलीला का अपने ढंग से वर्णन किया है। उन्होंने जमुना तट की जगह पनघट पर छेड़खानी का बड़ा ही मोहक वर्णन सम्बाद रूप से प्रस्तुत किया है। जो बहुत ही यथार्थ और रोचक है। गांव के वातावरण में यही रूप सच्चा है –

सखी वचन –

दादरा – टेक – पनघट रोको आप मुरारी
अन्तरा – चली जातती नीर भरन को
पनघट पै झगरा कियौ आरी।
सिर से गगरी पटक दई है।
घूँघट दीनों मोर उघारी।
निपट निरंकुश तनक न माने,
बार बार झटकत है सारी।

श्रीकृष्ण वचन –

दोहा – गागरि धर दो शीश पर, लेहु सीख उठवाय।
मोसे मिलकर प्रेम सें, चली जाव हर्षाय।।

गीत – क्यों भरती हो नीर गुजरिया,
तू सुन्दर पौव न मातीं।
रंगीली रसीली हो थोरी उमरिया।
हम टेरत तुम बोलत नाहीं।
अपन हाथ उठाती गगरिया
कहै श्याम हमसें उठवा लो
चल घर बैठो रूप आगरिया।

समाजी वचन –

दोहा – मोहन ने जब यों कहे, हंसी भरै मृदुबैन।
सिर पर गागरिधर चली, करत तिरेछे नैन।।
करत तिरीछे नैन, बैन कछु अटपट कहके।
कीनों गमन सुखेन, दूर जान घनश्याम कौं।
तब हरि लैकें लकुटिया, गागरि दीनी फोर।
चूनरि भीज गई सबे, भयो सखिन में शोर।

इसी तरह आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने दान लीला का सुन्दर वर्णन किया है। इसमें कंस का डर बताती मथुरा ले जा दही ले जाने को श्रीकृष्ण का मना करना उस समय की अंग्रे सत्ता के विरोध का संकेत मिलता है –

दादरा – दे दे दही कौ दान री गुजरिया
तू सुन्दर तेरी मटकी सुन्दर।
ओढ़े कुसुम रंग लाल चुनरिया।
दान दिये बिन जान न पैहौ।
विन्द्रावन की बीच डगरिया।

सखी वचन– नन्दहु से अब अधिक भये कछु,
आन करत मग माहिं ढिठाई।
कालहि चोर चोर दधि खाओ।
आज करन आये ठकुराई।
हम तुम बसत राज में जाकें,
जहां कंस की फिरत दुहाई।

कृष्ण वचन –

सोरठा – का गिनती में कंस, जाके हम कह बावरी।
देहु दान कौ अंश, रारि करत बेकार की।।

गजल – बताबे कंस का डर क्या, अरी दधि बेचने वाल

मोरे त्रैलोक बस में, भुला दूँ दुष्ट की लाली।
करै इठलात सी बातें, रूप जोबनकी मतवाली।
दान बिन जान नहि पै है चुका सब देहु अब आली।।

यहां कवि ने त्रैलोक नाथ को स्पष्टत: उजागर कर दिया है। दान लीला का अपना दर्शन है जिसे यहां देना सम्भव नहीं है। इन सब छेड़–झाड़ का द्वन्द का दर्शन कवि ने दर्शाया है। इससे श्रीकृष्ण की इन कृत्यों से उन्हें माता जशोदा से प्रताणित करने के मन्तव्य से उन्हें उराहनों देती हैं। यह उराहना लीला का सार आचार्य चतुरेश ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

क्रोध भरी तब ग्वालिनी, पहुँची गोकुल जाय।
मातु जसोदा से कहत, बातें शीश नबाय।।

सखी वचन –

जसोदा आज मोहन ने, बहुत कीनी ढिठाई है।
लिये संग ग्वालवालों को, दही मेरी लुटाई है। आदि

यशोदा वचन –

घर आबे जब श्याम जी, पूछेंगी ललचाय।
सखी लाल बारो अबै, का उतपात मचाय।।

जब शाम श्री कृष्ण गायों के साथ घर आये तो माता जशोदा ने ग्वालिनियों की शिकायत के विषय में पूंछा।

कृष्ण वचन –

मैया मैंने ऊधम नाहि मचायो।
जे ग्वालिन बातिन की झूठी, मोकों दोष लगायो।
मैं बालक बारी उम्मर कौ, मैं नहिं प्रेम लगायो।
कैसो होत प्रेम रस अगरौ, मोहि समझ ना आयो
जे ही मोकों चूम चूम कै, बरबस कंठहि लायो।

इस काव्य में सूरदास के काव्य की स्पष्ट झलके मिलती हैं। साथ ही श्रीकृष्ण और गोपियों के अनन्य प्रेम का स्वाद भी आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने रास–लीला का बखान तो अत्यन्त रस–रहस्य–मय ढंग से किया है। जिसका थोड़ा निरूपण ही यहां सम्भव है –

श्याम मधुवन में मुरलिया बजाई।
उदक परी सबरी ग्वालिनियां, तन की सुध बिसराई।
जैसी हती तेसहिं उठ दौरीं, कान्ह रहे हैं बुलाई।
लैलै नाम बांसुरिया बुलाबै, रुकती न कोउ रुकाई।

दो – अर्द्धरात्रि सुनसान वन, सुन मुरली धुन कान।
ग्वालिनियां बेसुध भईं, पहुंची मधुवन आन।

दो – इस प्रकार रस रास में, न रहौ कछु भी भान।
ग्वालियां करने लगीं, सुन्दरता कौ मान।

विरह वेदना –

इसके बाद श्री कृष्ण कंस दमन हेतु मथुरा चले जाते हैं। तब गोपियों की विरह दशा का वर्णन ईसुरी ने विशद रूप में किया है। उसका संक्षेप में हम दर्शन इस प्रकार है। जो बांसुरी गोपियों के प्रिय श्रीकृष्ण का स्मरण कराती है। वह अब विरह–विखम की यात्रा बन गई –

फिर ना बजे जा बाँसुरिया, विरह विखम की पुरिया।
जर सें खुदा पेड़ सें काटो, बचे न बाँस छिपुरिया।
सोई इक धील थिपुरिया कर दो न्यारे न्यारे गुरिया।
गुरिया जार तार कर डारो, फूट जाय ना फुरिया।
फुरिया फूट ईसुरी न रय, बधन करन की छुरिया।

दूसरी ओर राधा जी कृष्ण से अपनी अनुपायनी प्रीति दर्शाती एक निष्ठ प्रेम की बात कहती हैं –

अपनों तुमें जान गिरधारी, हमनें कीनी यारी।
काऊ और सें करली होती, बहुत हती संसारी।
हर हर तरां तुमारे ऊपर, तबियत भरी हमारी।
तुलसी गंगा जामिन जाकी, जनम जिंदगी हारी।
'ईसुर' तकी श्याम की मूरत, औरइ नहीं निहारी।

जबसे श्रीकृष्ण मथुरा गये उनके वियोग में गोपियों की दशा देखने योग्य है –

जब सें बिछुरे कुंअर कन्हैया, ननद तुम्हारे भैया।
नैना झिरत रात झिरना से ज्यों नही की रइया।
भव सागर में भूली फिरत हौं, ज्यों करियाबिन नइया।
कात ईसुरी ई उम्मर में, को है पार लगइया।

आगे ईसुरी कहते हैं –

जब सें मनमोहन बिछुरे हैं,
भारी कष्ट परे हैं।
दिन ना चैन रात ना निदियां
खान–पान बिसरे हैं।
ईसुर स्याम सौत कुबजा पै,
जोगिन भेष धरे हैं।

यहां आत्मतत्व के विलगाव से जीव की दशा का वर्णन है। इस बिलगाव में कुबजा (माया) ही बाधा है। तब गोपियां श्री कृष्ण के मिलन ठौर पर जाकर उनका स्मरण करती हैं। उनके कालिया दाह, गोवर्धन पर्वत को उठाकर ब्रज की रक्षा की याद कर मन को समझाती हैं।

''लओ उठाय गोबरधन नख पै, सैल छत्र सो कावै।

आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने भी अपने काव्य में यही सब भाव दर्शाये हैं –

१. आन मिलो अब कुंज गलिन में, करौ न नेक अबार
हमने जो अपराध कियो है, सो अब देहु विसार।
बीतत तुम बिन जुग से जाम, तुम बिन नेक रहो ना जाय
तुमनें ब्रज की रक्षा कीनी, सिर गोबरधन धार।
कालिय नाग नाथ कै तुमनें जल सें दियो निकार।

२. अपनौ तुमै जान गिरधारी, तासैं कीनी यारी
हमकौ छोड़ गये मनमोहन, कुबजा भई प्यारी।
राधा कहत कृष्ण की मूरत, बिसरत नईं बिसारी।
'मन प्यारे' कयैं बिकल राधिका, ऐसे बैन उचारी।

गोपियां सोते में उदक पड़ती हैं और उनके नयन अपने प्राण–प्यारे को ढूंढते हैं। जिस मोह बिना जीवन जाना कठिन है –

छंद – खुलतन आंख छोड़ दई बइयां,
तजकै कौन गली गये सइयां।
उन बिन चैन नई मोय गुइयां,
ऐसी मोय व्याकुल कीना
अब मोरो मुश्किल भयो जीना
आली भाय न खाना–पीना। आदि

यद्यपि कविवर घासीराम व्यास का गोपी–विरह साहित्य विलुप्त है किन्तु उनके इस काव्य में गोपियों की विरह दशा अवलोकनीय है–

१. फिरि फिरि फेरि हरि मग हेरि हेरि।
हारी जिय सूखगो वियोग जरि नै नीर।
२. तरिन तनुजा तीर तरुन की छांह तरुन सुकुमारी।
बैठि गुनै श्याम सुरति कै आपनि सुरत बिसारी।

ईसुरी, आचार्य 'चतुरेश' तथा पं. घासीराम व्यास की गोपियां तो दीन–हीन दुखियारी बन घनश्याम से अनुनय कर स्मरण करती हैं। किन्तु आचार्य सेवकेन्द्र जी की गोपियां तो मान वाली हैं और प्रेम आमंत्रण को दोनों ओर का मानकर कहती हैं –

१. दीन्हौं कबै दीप ने निमंत्रण पतंगनि कौं,
वारि निज ज्योति ज्योति रूप ज्योति पावहीं।
दीन्हौं कबै सिन्धु सरितान कौं बुलावनौं हैं
पुंजन के पुंज लयें जीवन विलावहीं।
'सेवकेन्द्र' मंजुल मरीचिका न चाहैं तऊ,
चटुल–चकोर चाह चिनगनि चावहीं।
एक रूप विनहिं निरुपैं अनुरूप ह्वै कै
त्यागि बहुरूप एक रूप में समावहीं।
२. ज्योति रूप ज्योति कौ निरूप कैं पतंगपुंज
अन्तर सनेह सिल्क ज्योति कौं मिलावहीं।
३. पाइबौ जो चाहौ तो उपासौ एक प्रेम ही कौं,
प्रेम–प्रतिमा जो मन मन्दिर में रांची है। आदि

इस प्रकार ब्रजवासी और 'श्री' एवं गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम–पराग से विमोहित उनके मिलने की बाटजोह रही हैं। तो कृष्ण भी ब्रज–ब्रजवासी 'श्री' और गोपियों का स्मरण कर विमोहित हैं। उन्हें अपने प्रेम का संदेश देने हेतु ऊधौ जैसे अपने मित्र को भेजते हैं। भ्रमर गीत का यह संदेश अद्‌भुत एवम् अद्वितीय है।

ईसुरी ने अपने काव्य में ऊधौ और गोपी सम्वाद बहुत ही सरस किया है। श्री कृष्ण की विरहाग्नि से संतप्त हैं। ऐसे में उन्हें जब समाचार मिलता है कि घनश्याम के सखा श्री ऊधव उनकी पाती लेकर आये हैं। तो सभी नन्दजी के यहां पहुंच जाती हैं। उनकी विह्वलता देखते ही बनती है। ईसुरी के काव्य में कुछ नमूने दृष्टव्य हैं –

पाती छाती सों चिपकाई कृश्नचन्द की आई।
हातन हात लई गोपिन नें, राधा जुए गुआई।
अब भगवान भये हैं सूदे, ऊधौं खों पहुँचाई।
समाचार लिख दये ईसुरी, सब खां बांच सुनाई।

समाचार सुन सब गोपियाँ अपनी–अपनी बातें कहती हैं–

तुम खां देखो नईं नजर सें, भौत बीत गई बरसें।
चाहन लगे बैन बोलन खों, नैन दरस खां तरसे।
फरकन लगी भुजा मिलने खां, कये को कान खबर सें।
ईसुर ई तन धरकें होनें, भेंट ना स्याम सुन्दर सें।

राधा जी ऊधौ सें विनती कर कहती हैं कि –

का नईं बनी बिगर गई हमसें, निकर गये ई घर सें
ईसुर कात राधा के अंसुवा, चौमासे से बरसें।।

राधा विलख–विलख कर कहती हैं कि श्रीकृष्ण के बिना कुंजन में भौरों की गूंज नहीं। लता गुल्म सूख गये अतः ब्रज लौट आये। बस गोपियों के मरे मुख देखें। गोपियाँ ऊधौ से कहती हैं –

ऊधौ सब कारे अजमाये, कौनऊँ काम न आये।
कारे काग भटा और भौंरा, इनके मरम न पाये।
बखत परे पै काम न आवैं, छिन में होत पराये।
करिया सांप बाँवी के कैयें, उनखां दूध पियाये।
बखत परे पै बे डस लेबैं, फिर न जगें जगाये।

इस प्रकार भी हमें धोखा देकर चले गये। लेकिन राधा अपने निश्छल प्रेम की दुहाई देती हैं –

मधुकर होत न प्रीत पुरानी, उत्तम जन की जानी।
ईसुर कयें प्रीत उत्तम की, निबहे भर जिन्दगानी।।

आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' ने गोपी–विरह का बड़ा सुन्दर वर्णन अपने काव्य में किया है –

कइयो मन मोहन सें जाकें, तुम ऊधौं समझाकें।
हमसी नारि अनाथ छोड़ गये, सौत कूबरी पाकें।
माधौ सें बिरथई ले आये, हम खाँ जोग लिखाकें।
मन प्यारे कयैं कहें राधिका, सखियन कौं समझाकें।

राधाजी ऊधौ से कृष्ण को छलिया बताते कहती हैं –

अपनौ तुमें जान गिरधारी, तासैं कीनी यारी
हमकौं छोड़ गये मनमोहन, कुबजा भई प्यारी।
राधा कहत कृष्ण की मूरत, विसरत नईं बिसारी।
मन प्यारे कयैं बिकल राधिका ऐसे बैन उचारी।

ऊधौ–गोपी सम्बाद काव्य 'श्याम–संदेश' में कविवर घासीराम व्यास की अपनी विशेषता है। यहां गोपियां योग–कुयोग की बातें को सीधे से नकार श्री कृष्ण के प्रेम की अनुरागिनी हैं। ऊधौ श्रीकृष्ण वियोग में दुखी गोपियों को ज्ञान और निर्गुन ब्रह्म का पाठ पढ़ाते हुये कहते हैं –

छांड़ि गये घनश्याम अजां
तुमहूँ तौ हिये कछु बुद्धि विचारौ।
झूठी सबै जग प्रीति प्रतीति है,
सोने सों जीवन व्यर्थ न गारौ।
'व्यास' कहैं गुन सान की गैल,
गहौ गुन गान है गेह सँवारौ।
निर्गण ब्रह्म कौ ध्यान करौ,
सिद्धि की साधना जोग कौं धारौ।

गोपियों के उत्तर –

हम योग कुयोग कौं जाने कहा,
रसना रस रास रसालिनी हैं।
गुनहीन गँवारिनी ग्वारिनि हैं,
पर प्रीति प्रतीति की पालिनी हैं।
'द्विज व्यास' कहैं तुम ऊधौ सुनो,
सदा सूधी सुचाल सुचालनी हैं।
भले भूखी रहैं कि चुगैं मुकता
हम मानस–राज–मरालिनी हैं।

इतना ही नहीं राधा गोपियों के हृदय की पीर की बात कर कहती हैं –

फिरि फिरि फेरि फेरि हरि मग हेरि हेरि
हारीं जिय सूखिगी वियोग जाई नैंन नीर।
प्रेम की पियासी इन ग्वारिन गँवारिन कौं,
योग उपदेशन पठायौ भलौ बलवीर।
ऊधौ जू कैसे कैं दिखाबै उर वीरि तुम्हैं,
तब तुम जानते हमारी ये व्यथा अधीर।
हमरौ सौ हीय होतो – हीय में जु नैंन होते
नैनन कैं होतो हीय, हीय में जो होती पीर।

निर्गुन से सगुन उपासी राधा और गोपिकायें दो टूक बात ऊधौ से कहती हैं –

मृगछाला बिछाये वियोग की हैं,
मनमाला जपै उन नाम की हैं।
तन काम की भस्म रमाये रहैं,
यहाँ रस्मैं न योग के काम की हैं।
वनवासी बनी न बनै कबहू
जो निवासी सदा ब्रजधाम की हैं।
तुम ऊधव न घात की बातें करौ
हम चातकी तो घनश्याम की हैं।।

यहाँ पर निर्गुन का गुन से और वि–योग का योग, तथा वन–बासी से सुन्दर ब्रजवासिनी होने की बात कह ऊधौ के ज्ञान के घात का प्रतिघात किया गया है। गोपियां ऊधौ को टका सा उत्तर देती हैं कि यहां तुम्हारे योग का कोई जोग नहीं है। क्योंकि वे तो श्रीकृष्ण के प्रेम की चकोरनी हैं –

इत होयगो योग को योग नहीं,
रस प्रेम के भोग विभोरनी हैं।
मृदु माधुरी मूरत की अलनी,
नलिनी कल कान निहोरनी है।
घनश्याम घटा की छटा में महा,
मदमाती सुमंजुल मोरनी हैं।
सुखकंद सदा ब्रजचन्द जू के,
मुखचन्द के चारु चकोरनी हैं।

इस प्रकार ज्ञान के शुष्क मार्ग को भक्ति के सगुन सन्मार्ग को आनन्ददाई निरूपित कर गोपियां ऊधौ के ज्ञान की धार को कुंद कर देती हैं। 'व्यास' के इन छंदों में भाव–रस अलंकार सभी का उत्कृष्ट रूप का प्रगटीकरण हुआ है। यहां इतना और इंगित कर दूं कि 'भक्ति' को देशभक्ति का स्वरूप व्यास जी ने इस प्रकार से दिया है। देश–भक्ति के आगे उन्हें सब कुछ बेकार लगता था। आचार्य सेवकेन्द्र जी इन सभी भ्रमर गीतकारों से विलग हैं क्योंकि इनकी गोपिकायें 'बेचारी' नहीं मान–गुमान–भरी हैं –

ऊधव जो वह उच्च हिमांचल,
तो हम पुण्य प्रभा हैं प्रभात की।
वे सरसी रुह की अनुहारि
अहैं हम संगिनी भृंग जमात की।
वे गुन वारे कहौ तुम निर्गुन,
कैसें प्रतीति करैं यहि बात की।
वे जदि चन्द्र चकोरिनी तौ हम,
वे घनश्याम अहैं हम चातकी।

सीधी–सादी गोपियाँ ऊधव के निर्गुन को गुनवारे बता कर निरुत्तर कर देती हैं। फिर ऊधौ से श्रीकृष्ण की ब्रज आने व उन्हें स्मरण करने की बात पूंछती हं।

ऊधव जा तुम सांची कहो, इव आइवे की इतै ठानत हैं।
ठानत ह्वै हैं न जो पै कहूँ, तो हमें अपनी कर मानत हैं।
मानत ह्वै हैं न सेवक इन्द्र तौ, प्रीति पुरातन रानत ह्वै हैं।
रानत ह्वै हैं न नेक हूँ ताहि, तौ स्याम हमें पहिचानत ह्वै हैं।

इस प्रकार गोपियों की भक्ति–भावना के प्रवाह में ऊधव की ज्ञान की धार विलीन हो जाती है। वह भाव–विभोर हो ब्रज और ब्रजवासी सभी को प्रणाम करते हैं। ईसुरी तो ब्रज की माटी को नमन कर कहते हैं –

अपनी कान्ह जीभ में चाही, बिन्द्रावन की माही
पा न सके पाई न औरे, पावे की परिपाटी।
पाओ स्वाद काऊ ने नइयाँ, मीठी होत के खाटी।
बेई रज ईसुर हिसदारी में, ब्रजवासिन ने बाँटी।

यही देश प्रेम है। देश (ब्रज) वंदना के स्वर पं. घासीराम व्यास ने ऊधव के माध्यम से कहलाये हैं –

हन तरु बेलि बन वीथन प्रणाम ब्रज
गिर सरितान पुण्य पानी को प्रणाम है।
ब्रज रस रीति नीति नेहन प्रणाम ब्रज
खग मृग धेनु सुखदानी को प्रणाम है।
'व्यास' वार–बार ब्रजवासिन प्रणाम,
ब्रजवान को प्रणम ब्रजवानी को प्रणाम है।
ब्रज को प्रणाम ब्रजरज को प्रणाम
ब्रजराज को प्रणाम ब्रजरानी को प्रणाम है।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड के कलियों ने भ्रमर–गीत परम्परा की सगुण काव्य धारा प्रवाहित कर काल–देश–परिस्थितियों के आधार पर जन–मन के विचारों को नवीन रूप प्रदान किया है।

– रामायण ६९५/३,
सिविल लाइंस, झांसी (उ.प्र.)

लुप्त होते बुन्देली गहने

— डॉ. दयाराम वर्मा 'बेचैन'

बुन्देली के गहने लुप्त होने के कई कारण हैं। भीषण मंहगाई का कारण तो है ही। इसके साथ वर्तमान भौतिकवादी युग की अनेकानेक आवश्यकतायें भी मानव जीवन को प्रभावित कर रही हैं। आज के युग में राजनैतिक व सामाजिक वातावरण प्रदूषित होने से अधिक गहने पहनना लोगों को कम पसन्द है पहले मनुष्य अपने आप को अधिक सुरक्षित समझता था इसलिये वह गहनों का प्रयोग भी शौक में करता था। बुन्देली के लुप्त होते गहनों का संक्षिप्त परिचय निम्न है —

शीसफूल — पटियां परी हुई हों उसके ऊपर चांदी या सोने का फूलाकार का गहना ऊपर। से चूनर या ओढ़नी होती थी।

दावनी — सिर पर पटियां पार के अर्थात् चुटिया करने के बाद तीन सांकरों से युक्त तीन हुकों से युक्त गहना। एक हुक मांग की सीध में ठीक पीछे बालों में फंसाया जाता था। शेष दो बायें दायें कानों की ओर बालों में। इस दावनी में (बोरा) रुनका/रौना पड़े रहते थे।

टिकली — चश्मा के कांच के बराबर गोल गोल चांदी या सोने की होती थी। जिसे माथे पर लगाई जाती थी। इससे मुख मंडल की शोभा बढ़ती थी।

कन्नफूल — चांदी या सोने के बड़े बड़े गोल–गोल गहने होते थे। आधुनिक टॉप्स का बड़ा रूप माने जा सकते हैं। कुछ में कान की सुरक्षार्थ सांकर या जंजीर भी डाल दी जाती थी ताकि कान जल्दी न छिने।

बारी — कानों में चांदी या सोने की बारियां महिलाएं पहिनती थी। मुस्लिम महिलाएं एक एक कान में ५–५ तथा छः छः बारी पहनती थी।

सांकर — यह ४–५ लड़ों की चांदी की जंजीर होती थी। यह गले में पहनी जाती थी।

हमेल — चांदी या सोने के सिक्कों को जंजीरों में जड़ दिया जाता था तथा बीच में बड़ा ताबीज (बोरें) से युक्त पड़ा रहता था। गले में हार जैसा इसका पहनावा था।

खंगौरिया (सुतिया) — सोने का पत्ता मढ़ा हुआ तांबे की खगौरिया पर होता था इसका प्रचलन अत्यल्प है।

कटीला, गुलबंद, बिचौली — सोने के गले के आभूषण हैं। थोड़े–थोड़े अंतर से इनकी बनावट होती है।

लल्लरी — सोने के दाने जो बेर बराबर होते थे। धागा पिरोकर उन बड़े–बड़े दानों की बनती थी। पुरानी महिलायें कहीं कहीं आज भी पहने मिल जाती हैं।

पुंगरिया — यह सोने की होती है। अब इसका स्थान छोटी कील या छोटी पुगरिया ने ले लिया है।

बुल्लाक/बेसर — नाक के नीचे वाले भाग ओंठ पर लटकता रहता था इसमें नग या मोती भी पड़े रहते हैं।

नथ — नाक का आभूषण है। इसके कई रूप हैं। इसका भी प्रचलन कम गया है।

पटेला — चांदी के चपटे पत्ते के आकार के चूड़ा समान पट्टादार होते थे। हाथों के गहने थे। पट्टादार होने के कारण पटेला कहलाते थे।

ककना — बड़ा सुंदर गहना था। मटर से बड़े गोल गोल चांदी के फलों से युक्त कब्जादार होता था। जिसे कील से व धागा से मुहरों को बांधा जाता था।

दौरी — हाथों में पहनी जाती थी। चौड़ी पट्टी का कला से युक्त होती थी।

छन्नी — चांदी के तारों की जाली सी बुनी हुई होती। मुहरों पर बंध होते थे।

गुंजे/वगवां — चांदी तारों से निर्मित चौड़ी पट्टी। गुंजें होती थी। कलाइयों की नाप के अनुसार छोटी बड़ी बनती। बगवा भी हाथ में पहने जाते थे।

बरा, बजुल्ला बांके — बाजू पर पहने जाते थे। चांदी बनते थे।

पखुरियां — बाजू पर पहनी जाती थी। चांदी के से बनती थी। यह गहना भी बड़ा सुन्दर था।

नौगरें तबिजियां — नौगरें तिरखूंट की (सिंगार) आकार की होती थी। हाथों में तबिजियों के साथ पहनी जाती।

पैजना — कसकुट के चांदी के कई आकार प्रकार बनते थे।

झाझें, लच्छा, छैल चूड़ी, अनौखा — पैरों पहिनने के गहने थे। लच्छे तारों को गूंथ कर बनते थे। झांझे च के पत्ते पर कढ़ाई करके बनती थी। घोड़ों को भी नाच कराते स यह झांझे नचाने वाले पहनाते थे। छैलचूड़ी पट्टादार होती लच्छों के साथ पहनी जाती थी। इसी प्रकार अनौखा भी होते थोड़े लच्छों के अंतर से रिंग के समान बनते थे। लुप्त हो गये

कड़ा — चांदी के ठोस सरिया से पांव में गोल–गोल छल्ले पहने जाते थे।

चुल्ला — कसकुट मिश्रित चांदी की चमक लिये में पहने जाते थे। लम्बे लम्बे ग्लास से लगते थे। कुंदा में का बांस की कील से जोड़ दिये जाते थे।

छला–चुकटी — सुहागिने पैरों में अंगुलियां पह थी। जैसे आजकल स्त्रियां मीना धारण करती हैं।

बजना

बिछिया — पांव की अंगलियों में पहिनने के लिये थे।

अनौटा — पांव के अंगूठे पर बड़ा कल्ला कलाकारी युक्त तथा छल्ले से युक्त जंजीरों से युक्त गहना होता था। भी लुप्त है।

— ग्रा.पो. स्यारवी (झांसी) 3

कवि हरदयाल की सैरों में सीता वनवास

– डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

बुन्देलखण्ड के सैर साहित्य में पौराणिक पात्रों श्री गणेश, हनुमान, राम एवं कृष्ण आदि के कथा प्रसंगों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से मुखरित किया गया है। बाल्मीकि एवं तुलसी की भांति सैर रचनाकारों ने भी श्रीराम के लीला प्रसंगों को लोकमन व लोकदृष्टि के अनुरूप प्रस्तुत किया है। लोक साहित्य में रामकथा के कतिपय प्रसंग शिष्ट साहित्य से भिन्न नई पृष्ठभूमि में विकसित एवं सृजित हुए हैं उन्हीं में से रामकथा का एक सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग सीता वनवास है। सैर रचनाकार हरदयाल ने सीता निष्कासन का कारण सर्वथा नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। सैर रचनाकार के अनुसार श्री राम की बहिन शांता सीता से रावण का चित्र अंकित कर दिखाने का आग्रह करती है। ननद के आग्रह पर सरल ह्दया सीता दस सिर व बीस भुजाधारी रावण का चित्र अंकित कर देती हैं जिसे शांता श्रीराम को दिखाकर सीता के अरि–अनुरागी होने की शिकायत करती है। राम सीता द्वारा अंकित रावण के चित्र को देख क्षुब्ध हो उठते हैं तथा वास्तविकता को जाने बिना ही सीता, निष्कासन की कठोर प्रतिज्ञा ले लेते हैं। सैर में वर्णित उक्त प्रसंग दृष्टव्य है –

दोहा : सुमरो माता सरस्वती, गणपत को कर ध्यान।
सीता के वनवास का, सुनो लगाकर कान।।

सोरठा :गुरु के चरन मनाय, राम राम सब सुजन को।
कहौं सैरन में गाय, वंदोवास जिह विधि भयो।।

छन्द : भगनी को नातो राम से सुनिय जरा चित लाय कै।
शांता ननद जो सिमा की पूंछन लगी ढिग आय कै।
कैसे कटे दिन लंक में भाभी कहो समझाय कै।
कौन बरन रावन है बली मूरत बता लिखवाय कै।

सैर : अनचित न बता मुख से का रई उचार कै।
बाको में नहीं देखो दृष्टि पसार कै।
लंका में विपत काटी दृग आंसू ढार कें।
निस दिवस नाथ चरन हिय रही धार कै।।१।। टेक
दुःख दियो असुर भारी वनमाह डार कै।
माया रची अनेकन प्रभु दई जार कै।
कियो पतिव्रत धारन पूरन समार कै।।२।। टेक

लावनी: कौल किरिया धरवाई सिया को कहन लगी शांता बाई।
रावन की तस्वीर बनाकर दिखला दैव मौय भौजाई।
कैसे हैं दसबीस भुजा देखन को तबियत चाई।
ननदी ने वाचा में फाँसकें जबरई मूरत लिखवाई।

सैर – भगनी के भवन श्रीराम गये पधार कै।
सीता की लिखी मूरत धर दई निकार कै।
चुगली लगाई प्रभु सें मुख लयो बिगार कै।।३ टेक
पतिव्रता नहीं भाभी लीजें विचार कै।
भगनी के बैन सुनकै हरि रये निहार कै।
भासत दयाल सिया दई मन से उतार कें।।४।। टेक

लोक विख्यात कारणों में रजक दम्पति विवाद तथा रजक द्वारा दिया गया उपालम्भ भी सीता निर्वासन का एक कारण लोक रचनाकारों ने माना है। सैरकार ने इस प्रसंग को भी सैर में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

दोहा : भगनी गृह से मम भवन, आये चित बिगार।
सिंहासन पर बैठ के, कर रये राम विचार।

सोरठा: कर रये राम विचार, सुनिये ध्यान लगाय कै।
होय कछु उपचार, क्रोध छाय रयो प्रभुतन में।।

छन्द : धोबी रहे इक अवध में ता नार से इक रार भई।
कछु खोट उसकी देख के धोबिन को भारी मार दई।
नारी के हिय में सोस छवो को रुस के वन राय लई।
निस में रही घर छोड़ कैं दूजे दिना फिर आय गई।

सैर: जब निकर गई घर सैं बदकार ते हराम।
जहाँ रही रात उतइ जाव हमसें का काम।
खो दई लाज घर की कर दीनों बदनाम।
करकसा नार तोखो आने न देऊ धाम।।१।टेक
सीता चुराई रावन भयो भारी संग्राम।
यो असुर मार घर में बैठार लई बाम।
न बता नीत मौखा जान न श्रीराम।।२।। टेक

लावनी: लंकाजीत राम घर आये अवधपुरी सारी खुसहाल।
दूत फिरत ते रामचन्द्र के छिप छिप सबके सुने हवाल।
सुनके बातें जब धोबी की नेत्र हुये हैं उनके लाल।
भर के क्रोध गए रघुवर ढिग मन में छायो सोच अपार।

सैर : दूतन ने आय सर नवाय कीन्हों प्रनाम
वा रजक की कहावत वरनी वचन मुलाम।
सुन दुखी भये प्रभु रै गये हिय को थाम।।३।।
फिर दूतन ने मुख से फरमायो के कलाम।
लायो भरत बुला जल्दी सब पायें आराम।
करजोर दयाल हरि को सुमरत हैं आठो याम।।४टेक

गुप्तचर द्वारा सूचित रजक प्रसंग को सुनकर श्रीराम अत्यन्त ही व्यथित हो उठते हैं वे दूतों से भरत, लक्ष्मण आदि भ्राताओं को बुलवाते हैं सैर रचयिता ने इस कथा को सैर में अत्यन्त ही स्वाभाविकता के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

दोहा : दूत कहत कर ज़ोर के, सुनो भरत चित लाय।
चलिय मेरे साथ में, रघुवर रहे बुलाय।।

सोरठा: चरनों में सिर नाय, बार बार विनती करो।
उठो वेग चित लाय, व्याकुल हो गये भरत जी।।

छन्द: लक्ष्मन भरत शत्रुघन चले मन में भये दिलगीर हैं।
आये प्रभु के निकट जब बोले नहीं रघुवीर हैं।

घबराय गये जा दशा लख दृगनन से ढारत नीर है।।
तामस में बिराजे नाथ हैं अब कौन सी तदबीर हैं।

दोहा : तीनों बीर दरबार में, रहे हैं रुदन मचाय।
नेत्र खोल दये प्रभु ने, लीन्हों निकट बुलाय।।

सैर : समझाय भरत जी को बोले बचन उचार।
रथ साज लायो जल्दी करियो नहीं अबार।
सिया को बैठार छोड़ आओ बिपिन के मंझार।
प्रभु बैन सुनत भरत गिरे खा धरन पछार।।१।टेक
किह कारण रघुबर ने ऐसो कियो विचार।
शत्रुघन लखन प्रभु को देखते हैं बार बार।
न बात कढ़त मुख सें अंसुआ रहे हैं ढार।।२।टेक

लावनी:कम्पत गात भरत जी सोचें कौन तरा समझे कैसें।
बनभारी है विकट भयानक कोमल सिया कमल जैसें।
कहाँ करें विश्राम धाम सित सहो जाय न सो बासें।
कौन करो तदबीर पीर रघुबीर क्षमा कर ले दैसें।

सैर: विधना ने विकट आफत सिया पे जा दयी डार।
तकसीर कौन पर गई जो कोपे करतार।
बीरन की विनय सुनत नहि तनकऊ चितधार।।३।।
न तजत टेक रघुवर आखिर भये लाचार।
होके अधीर तीनों वीर खाई मन में हार।
भासत दयाल प्रभु की माया अगम अपार।।४।टेक

करुण रस से आपूरित इस सैर का भाव एवं शिल्प दर्शनीय है। सैर रचयिता ने बड़े ही सुन्दर ढंग से लोकमत एवं राजाज्ञा की सर्वोपरिता को निरूपित किया है। राजाज्ञा के समक्ष सभी विवश हैं, केवल आत्मक्रन्दन ही अभिप्रेत है। सैर रचयिता ने भरत आदि भ्राताओं की शोक संतप्त मनोदशा का अत्यन्त ही कारुणिक चित्रण इस सैर में प्रस्तुत किया है –

दोहा : चरित भरत लक्ष्मन सहित, हो गये भौत उदास।
त्राहि त्राहि करने लगे, सुन सीता वनवास।।

सोरठा: आज्ञा होवे नाथ, माहुर पहुँचावो सिया।
चरनन नाऊँ माथ, विनय करों कर जोर के।।

छन्द: पौचाऊँ जाके जनकपुर आयसु तो दीजे दास को।
माता जगत की जानकी भेजो नटी वनवास को।
रघुनाथ को समझावे भरत रो रो कै भर रये सांस को।
बदला न रुख तनकऊ प्रभु भासत वचन नही हास को।

सैर: सुनो भरत वीर नीति ज्यादा बतावना।
मम वचन मान लीजें बातें बनाबना।
दे दैओ श्राप तुमको हमको सतावना।
जो सिया न निकारो तो हमें पाव ना।।१।। टेक
वनमांझ छोड़ आओ मन में डरावना।
महलन में राख नाहक नांव धरावना।
वनवास जिकर बाकों तन कऊ जतावना।।२।टेक

लावनी: वानी कठिन प्रभु ने ठानी व्याकुल भये तीनों प्रानी।
अर्सुअन धार गिरत दृगनन से होत आज सरबस हानी।
समझाओ बहुभांति नाथ को विनय हमारी न मानी।
बिवस हो गये भरत शत्रुघन चल दीनें लक्ष्मन ज्ञानी।

सैर : करो भौत जतन राखों एकऊ उपावना।
प्रान तजत नही रघुवर ज्यादा हरावना।
जा परी गरे आके बीर कठिन भावना।।३।। टेक
बोले भरत से लक्ष्मन भाई रुआवना।
ले जाव सिया बन को ममता बढ़ावना
भासत दयाल रंग सें सैर काये गावना।।४।टेक

राजाज्ञा को शिरोधार्य कर लक्ष्मण आसन्न प्रसवा मां सीता को जनकपुर से बुलावा आया है, का बहाना करते हुए वास्तविकता से अनभिज्ञ रखते हैं। सैर रचयिता ने इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है –

दोहा : गये लक्ष्मन सिया महल में, बोले वचन उचार।
तुम्हें बुलाये जनक नृप, हो जाओ तैयार।।

सोरठा :दयो आयुस रघुनाथ, भेजन चलहौं साथ में।
बरनन नांऊ माथ, रथ सज ठाड़ों द्वार में।।

छन्द : सुन बैन लक्ष्मन के सिया मन में बहुत हरसाइ है।
माता पिता के भवन को तैयारी तुरत करवाई है।
न भेद पायो राम को माया कहा रचवाई है।
ड्योढी पे रथ मंगवाय के विराजी सुमर रघुराई है।

सैर : न जान परत करमन की गतमत न्यारी।
दिलगीर भये अजुध्या के नर और नारी।
रो रये भरत चरत, परो संकट भारी।
वनवासस जात रथ में बैठ जनक दुलारी।।१।। टेक
जब जनकलली लखी प्रजा रोवत सारी।
कछु जान परत छल सों जा बात विचारी।
लक्ष्मन के दृगन दिखा परे अँसुंआ भारी।।२।टेक
रथ बेसुमार हाकों लक्ष्मन ने अगारी।
बियावान विकट पर्वत चहुँ ओर निहारी।
गंगा के तीर आंके भई अधिक दुखारी।।३।टेक
बैठारो तुरत लक्ष्मन ने नाव मंझारी।
नावक ने पार कर दयो जब गिरा उचारी।
पितु देश की डगर ना जा आय हमारी।।४।। टेक

लावनी: देखो विकट उजाड़ बियावान सिया भौत जब घबराई।
कह लक्ष्मन से कहाँ जात ले सांचो हाल देव बतलाई।
तब लक्ष्मन देवर ने हाल सब साचो साचो समझाई।
व्याकुल होकर गिरी धरन पर मुरछित भई सीता माई।

सैर : बानी आकाश जा भई सिया रहे सुखारी।
लक्ष्मन जी दुखी होकै, लख रहें पछारी।
भासत दयाल करम रेख टरत न टारी।।५।। टैक

भ्रातभक्त लक्ष्मण जी माता सीता को मूर्छित अवस्था में एकाकी छोड़कर अयोध्या की ओर लौट पड़ते हैं। सीता की दी दशा की कल्पना मात्र से ही हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ता है। करुणा की साक्षातमूर्ति असहाय सीता की विकल स्थिति

चित्रण सैर रचयिता ने इस प्रकार किया है –

दोहा : वानी सुन आकाश की, रोवे लक्ष्मन वीर।
सीस नवा करकें चले, मन में हो दिलगीर।।

सोरठा :मन में हो दिलगीर, थर थर कंपे सकल तन।
भली करी रघुवीर, का तुमखां सूझो प्रभु।।

छन्द : वन में तड़फ मर जाय, सीता सेर सिंह भख जायगो।
पार मेरी न बसावें को उसे समझायगो।
जल अन्न काँसे पायेगी को हितु वन में ल्यागो।
येसो लगत मन में मेरे रघुवीर ढिग को जायेगो।

दोहा: रुदन करत लक्ष्मन लगे, उलट अवध को जाय।
सीता की मूरछा जगी, सोच करै मन माय।।

सैर : न नजर परत कोई घबरावे वन में।
देवर लखन कहां गये छल करके छिन में।
कर रयी विलाप ध्यान धरे राम चरन में।
रथ को निहार बार–बार सोचत मन में।।१।टेक
जल ढार ढार नैनन सर पटक अवन में।
मचो हाहाकार वन मंझार पक्षी गन में।
दुखयारी को त्यागो नाथ ऐसे पन में।।२।टेक

लावनी: रही नीर को ढूढ़ सिया, जी खोज नही तनकऊ पावें।
एक पीपल का पेड़ वहाँ पर ता नीचे बैठी रोवें।
चैन परत न हरि दरश बिन कैसे मन को समझावें।
रात दिवस करुणा कर करके द्वगनन आंसू बरसावें।

सैर : हे नाथ मेरी करनी बिगरी का जनम में।
जो त्यागी दुखयारी राखी न सरन में।
तकसीर बता देते राती न भरन में।।३।टेक
आठहुँ याम सेवा में करी तरन में।
धोखे से काड़ दीनों राखों न धरन में।
भासत दयाल कसर नहीं राखी मरन में।।४।टेक

शोक एवं करुणा से आपूरित इस सैर का कथानक अत्यन्त व्यापक है राजाराम की आसन्न प्रसवा परित्यक्ता रानी सीता ने वन में पुत्रों को जन्म देते समय कितनी ग्लानि एवं पीड़ा का अनुभव किया होगा? कितनी विकलता रही होगी पतिप्राणा सीता के मन में? इसकी कल्पना से ही हृदय वेदना से विकल हो उठता है। सीता का समग्र जीवन दु:खों से आपूरित रहा। वन में असहाय एकाकी सीता को ऋषि बाल्मीकि ने देखा और उन्हें पुत्री रूप में, स्वीकार कर अपने आश्रम में आश्रय दिया। सैर रचयिता ने इस प्रसंग को सैर में अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है –

दोहा : माया प्रभु की अगम है, भेद न कोई पाय।
सीता जी की कूंख से, पुत्र जन्म लियो आय।।

सोरठा: होकर हाल बेहाल, का विपदा वन में परी।
कहा आयें भयो लाल, छूटो जब घरबार सब।।

सैर: लेते जन्म अवध में गीत गाती नारी।
मैं दान दहेज देती बहुत सबको भारी।
वन में ना काम देत अकल आज हमारी।
विधना ने विपिन बीच काय आफत डारी।।१।टेक
पंडित प्रवीन करते आय ग्रहा उचारी।
डंका निशान बजते बहु अपरम्पारी।
मंगल पिता मनाकें करते खातिरदारी।।२।टेक

लावनी: जब से उमर संभारी मैंने ऐसी विपदा न भोगी।
विध ने रेखा लिखी करम में आन जुरी सौं संजोगी।
जाके मौत सीस पर खेले बचना पावे वो रोगी।
देख कुँवर की ओर सिया जी धीर धार हो रई मौगी।।

सैर : कहूँ ठोर न ठिकानों दीखत न अगारी।
लालन को देख द्वगनन भए अँसुवा जारी।
वन पशुअन से कैसे बचे जान तुम्हारी।।३।टेक
वनवासनी जन्म से हो रही दुखारी।
मम प्रान तजौ ऐ मन सीता ने विचारी।
ऋषि बालमीकि आये दयात धीरज धारी।।४।टेक

अयोध्या की महारानी सीता ने वन में पुत्र को जन्म दिया है। मिथिलापति विदेहराज की पुत्री, चक्रवर्ती राजा दशरथ की पुत्रवधु एव जगदाधार प्रभु श्रीराम की धर्मपत्नी आज जंगलों में अपने पुत्र को जन्म दे रही है उनका करुण, क्रन्दन वनप्रान्तर में गूँज रहा है। वन के सभी प्राणी इस आर्तपुकार से आकुल व्याकुल हैं। ऋषि वाल्मीकि सीता के निकट आ उनसे निष्कासन का कारण पूछते हैं। सैर रचयिता ने ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचने से पूर्व ही पुत्रजन्म का वर्णन सैरों में किया है। जबकि लोकगीतों में ऋषि आश्रम में ही पुत्र जन्म का वर्णन मिलता है। शोक एवं करुणा के भावों के आपूरित सैर दृष्टव्य है –

दोहा : रुदन सुनत धाये ऋषि, वालमीक गये आय।
सीता से पूछन लगे, भारी लाड़ लड़ाय।।

सोरठा: कौन पुरुष की नार, सांचौ हाल बताय दे।
कोहे पिता तुम्हार, सोच हमें भारी भयो।

छन्द : का खोट बेटी तुम कियो वनवास दयो का ख्याल है।
थरथर हिया कम्पे मेरो यह देख तेरो हाल है।
व्याकुल बदन सारा हुआ जन्मों तू वन में लाल है।
डिगो ध्यान मेरो रुदन सुन आश्रम पे चल ततकाल है।

दोहा: सुनकर ऋषि के वचन को, गयो नैन जलछाय।
धीरज धर कहने लगी, सीता जी समझाय।।

सैर : राजा जनक की बेटी रामचन्द्र पति आंय।
वनोवास दियो प्रभु ने का मन गई समाय।
ना आज तलक मौसे कौनहुँ भई खताय।
का विपत ऋषि पूछो हमसै कही न जाय।।१।टेक
देवर लखन ल्याये गए भाग मुख छिपाय।
मूर्छित हो गिरी धरनी करत रही हाय हाय।
जो हाल सकल साचों तुमको दियो बताय।।२।टेक

लावनी: ऐसे में बन आई ऋषि जी विपदा दीनी है भगवान।
पुत्र हुआ ये वन में माही हो रई हो भारी हैरान।।
विपत सही न जावै हमपै महाराज सुनलो धर ध्यान।
ऐसो लगत प्रान तज देवें सत्य बात तो मोरी मान।

सैरः विधना के लिख अंक भाल को इन्हें मिटाय।
मम नाथ बिना जीवन तनकऊ नही पुसाय।
कर कर विलाप नैनन सें नीर रई बहाय।।३।टेक
वन पशुअन को देख के जैहे कुँअर डराय।
जो होय उचित ऋषि जी सो कीजिये उपाय।
भासत दयाल रघुवर के चरनन सीस नाय।।४।टेक

पतिपरायणा अनन्य उपासिका सीता को धर्मपुत्री स्वीकार कर ऋषि बाल्मीकि उन्हें आश्रम ले आए। वहीं सीता के पुत्र का लालन पालन एवं शिक्षादीक्षा हुई। सैर रचयिता ने इसका वर्णन सैर में इस प्रकार किया है –

दोहाः बालमीक बोले वचन, लली न हिम्मत हार।
सम्बोधन करने लगे, बार बार पुचकार।।

सोरठाः बाबुल जनक तुम्हार, शिष्य हमारे आय वे।
नाकर सोच विचार, डेरा डारो मम कुटी।।

छन्दः वन सें ल्याऊँ मूल कंद पुत्री तुमे जिमआऊँगों।
बालक लऊ परचाय कै सो नित कथा सुन आऊँगो।
चलो वेग लेलो कुंवर को पालन वचन कर आऊँगो।
घबराब न कछु दिनन में रघुवर से भी मिलआँऊगों।

दोहा : मम चौका बरतन करो, ऐइ काम तुम्हार।
पूजा हित जल ल्याइयो, नित बेटी सुकुमार।।

सैरः लयो कुँवर उठा ऋषि की जो आज्ञा पाई।
आगे चले मुनि जी सिय संग लिवाइ।
ललना के काज पलना ऋषि दियो घलाई।।१।टेक
बालक सुवाय नीर लेन गई गागर उठाई।
बावड़ी के निकट वृक्ष एक दियो दिखाई।
मरकट की सेन देख देख दहसत खाई।।२।टैक

लावनीः बूढ़ी बदरिया आई पास में सीता से बोली बानी।
कैसे आई तुम इत वन में कौन विपत सर पे आई।
दियो हाल बतलाय सकल सुनो बदरिया लजयानी।
लाल हमेशा संग में राखो छोड़ करी नादानी।

सैर : सिंह भालु विकट इत हैं कौन लैहे खाई।
कल कौलाइयों कुँवर के दरस देव कराई।
भर करके नीर कुटिया की सुरत लगाई।।३।टेक
पलना से उठा ललना ताय दूध पिलाई।
जलपान ग्रहन करके मन खुसी मनाई।
निस भासत दयाल बालमीक कथा सुनाई।।४।टैक

बाल्मीकि कृत उत्तररामायण में वर्णित सीता पुत्र कुश के जन्म की कथा को सैर रचयिता ने नवीन रूप में प्रस्तुत किया है ऐसा लोक विश्वास है कि सीता ने केवल लव को ही जन्म दिया था कुश का जन्म तो ऋषि बाल्मीकि के तपोवन से कुशा द्वारा हुआ है। इस कथा प्रसंग को सैर रचयिता ने नवीन पृष्ठभूमि में विकसित कर इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

दोहा : कथा सुनी सिया मात ने, कियो रात विश्राम।
भोर भयो जल को चली, करे ऋषि को काम।।

सोरठाः गोद लिये कुँवर, सरपर धारी गगर है।
लीनी गगर उतार, पनघट पर आई जवै।।

छन्द : लो कुँवर लाई साथ में देखत बदरिया धाई है।
लीनो उठाय गोद में पुचकार मन हरसाई है।
आय ऋषि जब कुटी में लाल न देत दिखाई है।
सीता तजेगी प्रान को माया ऋषि रचवाई है।

दोहा : बालमीक घबराय के, कीनो सोच विचार।
तपोबल से माया रचूं जभी होय उद्धार।

सैर : माया रचाय काया काँस से करी तैयार।
हूबहूँ बना बालक जब जान दई डार।
रोदन के करत लालन पलना में दयो पार।
लगे करन जाय पूजा राम राम मुख उचार।।१।टेक
जल भर के आई सीता गागर धरी उतार।
गोदी में पुत्र लोको ऋषि ने लियो निहार।
तब कुश के प्रान लैवे को कर रये विचार।।२।टेक
गये नजर बचा बाल जगो कर ना पाये बार।
रोदन के सुनत सिया गई वेग ही पधार।
कर जोर सिया ऋषि से विनय करे बारबार।।३।टेक
दई गमा बुद्धि जो तुम बालक को रहे मार।
बिगरे जन्म तुम्हारे हत्या हुये सबार।
सुन बैन कठिन छोड़ बाल हो गये लाचार।।४।टेक
ठानों में कथा भूलचूक लीजियो सुधार।
सब श्रोतागण सज्जन को करों नमस्कार।
भासत दयाल प्रभु के चरनन हिय धार।।५।टेक

इधर सीता को अकेला वन में छोडत्रकर लक्ष्मण अयोध्या लौटना, राजमाताओं की विकलता एवं परलोक गमन द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान तथा लवणासुर नामक अ संग्राम, लवकुश द्वारा अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को बांध लेना भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न से, उनके युद्ध आदि का वर्णन भी साहित्य में अत्यन्त विस्तृत एवं नवीन ढंग से हुआ है। उदा स्वरूप सीता को वन में अकेला असहायावस्था में छोड़कर अ आगमन पर लक्ष्मण एवं समस्त राजपरिवार की विकलता का ही मार्मिक चित्रण सैर रचयिता ने किया है। इस सैर में करुण अपने समस्त अंगों उपांगों ने साथ अभिव्यंजित हुआ है दृष्टव्य है –

दोहा : लक्ष्मन पहुँचे अवध में, सुनो अभी धरध्यान।
कैसें छोड़ी जानकी, कीनौ सभी बखान।।

सोरठाः सभी रहैं है रोय, हाट बाट तोर दिये।
का मिल गयो हरि तोय, सीता को वनवास दिये।।

छन्द : लक्ष्मन जी रोदन करत जब महलन के भीतर आये
हा हा करें व्याकुल भये दृगनन में जल भर ल्याये
माता से कये समझाय के सीता को हाल सुनाय है
श्रीराम ने मम हाथ से बाको सो वन छुड़वाय हैं।

सैर : लक्ष्मन ने कथा सीता की सकल उचारी।
कौसला सुमंत्रा कैकई सुन भई दुखारी।।
अपराध बिना सुन्दर वनवास सिधारी।
तज दये प्रान तीनऊँ प्रभु की वे मातारी।।१।टेक
खलबल मची अवध में रोय नर उर नारी।
रघुवर ने खबर पाई सोच कीनो भारी।
लक्ष्मन सुमंत्र से जबै बोले करो तैयारी।।२।टेक

लावनी: करी तैयारी क्रियाकर्म की रुदन करत लक्ष्मन रघुवीर।
महलों से ले चलो मुकरबा तारी जाय सरजू तीर।
चिता बनाई आग लगाई भारी मन में भये दिलगीर।
कर्मकाण्ड कर भये ठाड़े सुर मुन नर बंधबाबे धीर।

सैर : गुरु को बुलाय हाथ जोर अर्ज गुजारी।
नगरी की प्रजा वेद सारु नैवती सारी।
भोजन कराय दान पाये भाट भिखारी।।३।टेक
इक अरज और तुमसे है गुरु हमारी।
अश्वमेध रचूं करवा लैव छत्तरधारी।
भासत दयाल रंगत जा नई निकारी।।४।टेक

लवकुश द्वारा अश्वमेष यज्ञ के अश्व को बांधने एवं राजा राम की सेना से युद्ध का वर्णन सैर रचयिता अत्यन्त ही ओजस्वी शैली में किया है। वीर रस की सुन्दर योजना इस सैर में दृष्टव्य है।

दोहा : दक्खिन दिस को जात है, सेना भई तैयार।
आए हैं वनखण्ड में, उतर गंगा के पार।

सोरठाः कजरी वन में आय, वन भारी लख डर गये।
घोड़ा दिया छुड़ाय, लसगर ता पीछे चलो।।

छन्द : छाले परे सबके पगन, ऋषि की कुटी ढिग आये हैं।
लख बाज को दोनो कुंवर जब रूख से बँदवाये हैं।
लसगर के योधा यो कहें किनके कुंवर कहलाये हैं।
लवकुश ने पाती छोर के पढ़ के वचन फरमाये हैं।

सैर : छोड़ो है बाज यज्ञ काज साज सजाकै।
हम करैं समर उनसे न कहें डरा कै।
घोड़ा न दैयँ हरगिज जैयँ हारी खाकै।
सुन बैन शत्रुघन जी डटे सनमुख आकैं।।१।टेक
भगजाव बाल सनमुख ना आब कजाकै।
छोड़ो तुरंग जाब पलट कुसल मनाकै।
किन कै हो पुत्र नाम कहो माता पिता कै।।२।टेक

लावनी: शत्रुघन के वचन सुनै यह लवकुश भये मन में रिसयाय।
बिन बल घोड़ा कहि को छोड़ो छत्री हुये क्यों रहे डराय।
बालक बालक कहौ हमेशा भारी मन में रहे गरवाय।
जग में जोधा कोई न जानो सनमुख रहे वचन सुनाय।

सैर : रणकरन लगे दोऊ धरे कदम जमा कै।
लवकुश खुशी से वन में रहे बान चला कै।
सेना भरत की सारी दई धरन गिरा कै।।३।टेक
कछु सूर भगे डर डर मनमान बचा कै।
कोई समर त्याग जा रये गृह पीठ दिखाकै।
भासत दयाल मजलिस में सैर बना कै।।४।टेक

वीर लव–कुश भरत, लक्ष्मन एवं शत्रुघन जैसे महाबली योद्धाओं को परास्त कर धराशायी कर देते हैं। अन्ततोगत्वा राजाराम स्वयं युद्ध के लिए आते हैं। वहीं वन प्रान्तर में ही गुरुश्रेष्ठ बाल्मीकि जी एवं कर्तव्यपरायणा, अग्निपरीक्षिता परित्यक्त सीता से उनकी भेंट होती है तथा लवकुश उनके ही पुत्र हैं इस तथ्य का रहस्योद्घाटन होता है। राजाराम लवकुश सहित सीता से अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं जिसे अस्वीकार कर सीता धरती मां की गोद में समा जाती है। धरनीसुता के धरती में अप्रत्याशित विलय से राम का हृदय चीत्कार कर हा हाकार कर उठता है। व्याकुल व्यथित राम गुरु वाल्मीकि की आज्ञा शिरोधार्य कर पुत्रों सहित अयोध्या लौट आये। सैर रचयिता ने इस सभी प्रसंगों का बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन किया है।

शिष्ट साहित्य एवं लोकसाहित्य में सीता वनवास के मूल में निहित कारणों में पर्याप्त अन्तर है। शिष्ट साहित्य में लोकमत के समस्त राजाराम की विवशता जहां सीता निर्वासन का मूल कारण है वहीं लोक साहित्य में सीता निर्वासन प्रसंग सर्वथा नूतन मौलिक एवं विस्तृत रूप में मिलता है। जो अत्यन्त ही कारुणिक है। भवभूति की करुणा वहाँ साकार हो उठी है। शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य की सीता के चरित्र में भी पर्याप्त भिन्नता है। लोकसाहित्य की सीता शिष्टसाहित्य की सीता की भांति स्वामी की हर आज्ञा की मूक अनुगामिनी नहीं है। वह स्वाभिमानिनी एवं मुखर है तथा अपने आत्मसम्मान व नारीत्व के प्रति पूर्ण सचेत एवं जागरूक है।

— सहा० प्राध्यापक, हिन्दी
३०, तमराई मुहल्ला, छतरपुर म.प्र.

चौकड़ियाँ

— लल्लूमल चौरसिया

अपनौं ने जो दरद दिये हैं, हँस के सहन किये हैं।
खाये घाव कही न मौ सैं, घुट घुट घूंट पिये हैं।
फट न जाये प्रीत की चादर, थिगरा जोर सिये हैं।
बार बार धोखा खाकें भी, उनके लिये जिये हैं।।

जीवन जोत मलिन भई भारी, उकसा उकसा हारी।
दरकौ दिया रुकन न पावै, भर भर चिकनई डारी।
भभक भभक के कारख करके, कर दई काया कारी।
लाख जतन कर हारे तउं पै, बुझवे की तैयारी।।

इक दिन खाली पिंजरा रैहै, पलौ सुआ उड़ जैहै।
रंग रोगन सब मन कौ धन है, कछू काम न दैहै।
कैसउ बन्द किवरिया करियौ, छिन भर न रुक पैहै।
अपनी मन मरजी कौ मालिक, मरजी सैं चल दैहै।।

— सीताराम कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

ओरछा में कुतक्क लीला

– सुधा रावत 'क्षमा'

ओरछा आज जहाँ अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के लिये प्रसिद्ध है। वहीं इतिहास इसके शौर्य, वीरता, त्याग बलिदान की यशगाथा गाते नहीं थकता। ऐतिहासिक नगरी होने के कारण यहाँ विशाल किला, भव्य महल, अनोखी छतरीं और अनूठे मंदिर विद्यमान है। जिनका पुरातात्विक महत्व तो है ही साथ ही ये पर्यटकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में भी पूर्ण सक्षम है। इन इमारतों का शिल्प व चित्रकला दोनों ही बेजोड़ है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की राजनीति का केन्द्र होने के कारण इसका राजनैतिक महत्व भी है। और धार्मिकता की बात करें तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अयोध्या का वैभव छोडत्रकर जिस स्थान पर स्वयं पधारे हों, या यूं कहें कि भक्ति की डोर में बंधे चले आये हों, तो वहाँ का तो कण–कण धार्मिकता में पगा हुआ होगा ही।

बेत्रवती की कल–कल धारा के साथ, भक्ति की अवरिल धारा ओरछा में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। यह पावन नगरी धर्म की नगरी है। जहां पहुँच कर व्यक्ति राममय हो जाता है। दीन–दुनियाँ से बेखबर भूख–प्यास से विरक्त। मानो आनंद की सरिता में गोते लगाता मन बार–बार भक्ति, विश्वास और आस्था की त्रिवेणी में डुबकी लगा कर तृप्त होने का प्रयास करता है परन्तु बाहर आकर प्यासा ही रह जाता है। मन भरता ही नहीं राम–नाम की माया लूटने का जितना प्रयास किया जाता है। वह बढ़ती ही जाती है। यूं तो आनंद मेघ यहां हर समय बरसता ही रहता है, और भक्त गण सुख की फुहारों से सराबोर हो कर ही लौटते हैं। परन्तु कुछ विशेष दिवसों में मानो स्वर्ग पृथ्वी पर उतर कर ओरछा का रूप धारण कर लेता है। जैसे रामनवमी को राम जन्मोत्सव अगहन शुक्ल पंचमी विवाह पंचमी, अगहन कृष्ण दोज – कुतक्क लीला, गंगा दशहरा, निर्जला, एकादशी, आसाड़ में रथयात्रा, सावन तीज, और होली आदि।

रामनवमी, होली और कुतक्क लीला यानी अगहन कृष्ण दोज के समय तो श्री रामराजा अपने दरबार सहित मुख्य मंदिर से निकल कर बाहर बरामदा में आन विराजते हैं। भक्तगण उनकी मनमोहनी मूरत और हीर–जड़ित चरण–कमलों को निकट से लख धन्य हो जाते हैं। आषाड़ में रथयात्रा के माध्यम से श्री रामराजा, माता सीता भैया लक्ष्मण व बजरंग बली तथा पूरे दरबार के साथ रथ यात्रा का आनन्द लेते हैं। अपने भक्तों के नयनों को दरस लाभ देने के लिये पूरे तीन दिन बाहर विराजते हैं। सावनतीज पर झूला महोत्सव का त्रिदिवसीय उत्सव अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न होता है। इन विशेष उत्सवों, पर्वो में न सिर्फ ओरछा वरन् आसपास के गांव कस्बों के लोग भी उमंग और उत्साह के साथ शामिल होते हैं।

विवाह पंचमी में श्रीराम सीता विवाह की भव्यता देखते ही बनती है। विवाह से एक दिन पूर्व जो पँगत दी जाती है। उसका वर्णन पृष्ठों पर किया जाना असम्भ्व हो यदि आपको इस पंगत में शामिल होने का सौभाग्य नहीं मिला तो समझो आपने सही भोजन का आनंद लिया ही नहीं। सभी तरह के व्यंजन मिठाइयां, पूरी, कचौरी और ऊपर से गारियों की बौछार – "राजाराम से करें ररियाँ, जनकपुर की सखियाँ" और "कुत्ता पाल लो ओ मोरे नये जजमान" जैसी रसीली गारियों संग पंगत का आनंद दोगुना हो जाता है। इस अद्वितीय सुखानुभूति से कोई वंचित नहीं रहना चाहता हर वर्ग, हर धर्म–सम्प्रदाय के लोग साधु–संत महात्मा सभी चाव से शामिल होते हैं इस समारोह में।

विवाह पंचमी से पहले अगहन कृष्ण द्वितीया के दिन एक अनूठी लीला यानी "कुतक्क लीला" का आयोजन ओरछा में प्राचीन काल से होता आ रहा है। जो अपने आप में अपूर्व व अद्वितीय है। श्रीकृष्ण लीला को "दानलीला" भी कहते हैं। राममंदिर प्रांगण में कृष्ण लीला का आयोजन बात आश्चर्य करने लायक नहीं, तो सोचने लायक तो है ही।

ओरछा का नाम आते ही सबसे पहला विचार श्री राम राजा का ही आता है। श्रीराम को अयोध्या से रानी कुँवरि गणेश द्वारा ओरछा लाया जाना ऐसी अद्भुत् घटना है। जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण ओरछा राममय हो गया। ओरछा के राजा बनने के बाद श्रीराम की अनेक लीलाओं का उदय हुआ। पं. गबद्दूदास से साक्षात् वार्तालाप हो या बालरूप धर के बच्चों के साथ गिल्ली डण्डा व लुका छिपी का खेल हो, अथवा आगन्तुक महात्मा के लिये अपनी अंगूठी गिरवी रखकर भोजन की व्यवस्था करने जैसे कार्य। ऐसी अनेक रोमांचकारी घटनाओं व चमत्कारों का घटित होना इस बात का साक्षी बना कि श्री राम ओरछा में साक्षात निवास करते हैं। यूँ तो ओरछा रामराजा के नाम से ही जाना जाता है किन्तु रामराजा के आगमन से पूर्व यहाँ जुगलकिशोर का मंदिर सबसे प्रसिद्ध था और महाराज मधुकरशाह परमकृष्ण भक्त थे। ओरछा के जुगल किशोर मंदिर की मूर्तियाँ वि.स. १६९५ में पन्ना स्थापित कर दी गईं और अब वह पन्ना के जुगल किशोर के नाम से जाने जाते हैं। आज भी ओरछा में अनेक कृष्ण मंदिर हैं। राजाराम मंदिर के प्रांगण में ठीक रामराजा के सामने कृष्ण–राधिका जू का मंदिर है। रामराजा के ओरछा आगमन के पीछे भी श्रीकृष्ण भक्ति की प्रेरणा है। सत्य तो यही है कि राजा मधुकरशाह की कृष्ण भक्ति से प्रेरित होकर और राजा के उलाहनों से व्यथित होकर ही तो रानी ने श्रीराम को अयोध्या से ओरछा लाने का प्रण ठाना। यह लीला भी लीलाधर जुगल किशोर की ही तो थी। राम को ओरछा सौंपकर स्वयं पन्ना जा विराजे। रामराजा की तरह जुगलकिशोर जू. की भी अनेक बाल लीलायें प्रचलित हैं। वे भी पन्ना की गलियों में बच्चों के संग आकर खेलते हैं। कभी उनका कुर्ता फटा मिलता तो कभी अंगोछा में दाग लगे होते थे। रामराजा मंदिर प्रांगण में कृष्ण लीला का होना यही दर्शाता है कि यहाँ राम और कृष्ण समान रूप में पूजे जाते रहे हैं क्योंकि "राजाजी थे कृष्ण उपासक, रानी राम दिवानी।" बृज की रासलीला, महाँरास लीलायें तो सबने देखी सुनी होंगी किन्तु

"कुतक्क लीला" सिर्फ ओरछा में ही आयोजित होती है। इस बात पर जरा भी संदेह नहीं होना चाहिये कि कुतक्क लीला का अविर्भाव राजा मधुकरशाह के शासन काल में ही हुआ होगा। राजा श्रीकृष्ण भक्ति में लीन रहा करते थे। वे महिनों मथुरा–वृन्दावन में रह कर भगवान श्री कृष्ण की पूजा अर्चना किया करते थे। वहां की रास लीलाओं से प्रेरित होकर ही उन्होंने ओरछा में कुतक्क लीला प्रारम्भ की होगी। कार्तिक पूर्णिमा पूजन के दो दिन बाद यानी अगहन माह कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन सुबह से ही ओरछा में लोगों का आगमन प्रारम्भ हो जाता है। आसपास के गाँव खाली हो जाते हैं। गुलाबी हल्का ठंडा मौसम, प्रतिदिन की तरह सुबह रामराजा की जगार नौ बजे आरती, १२ बजे प्रसाद के लिये पिक बंद और प्रसाद लगने के बाद चरणामृत व प्रसाद वितरण होता है। जो प्रसाद रामराजा के यहां लगता है उसे कलाकंद कहते हैं यह भी सिर्फ ओरछा में ही बनता है। कलाकंद का स्वाद मुंह में घुल भी नहीं पाता कि घुंघरू की झनक संग बांसुरी का स्वर सुनाई देता है। आ गये–आ गये की फुसफुसाहट के बीच श्री कृष्ण रूप धरे कलाकार पीताम्बर, माथे पर मोर मुकुट, बाहों में बाजूबंद, कानों में कुण्डल, लिलाट पर चंदन–रोरी का लम्बा तिलक, और अधरों पर बांसुरी के स्वर, हाँ ऐसा ही मनोहारी रूप लेकर तो आते हैं, वह नृत्य करने लगते हैं उसके साथ अनेक महिलायें भी अपने कदमों को रोक नहीं पाती और मगन होकर नाचने लगती हैं। कुछ देर बाद बांसुरी दुपट्टे में खोंस कर हाथ में दही का पात्र मुख में दही लगा कर लीलिये प्रसाद लीजिये प्रसाद, कहते हुये सबको दही का दान देते हुये, नृत्य में झूमते हुये पूरे प्रांगण में घूमते हैं। लोगों में प्रसाद लेने की मानो होड़ लग जाती है। किसी को तो प्रसाद मिलता है और किसी की तरफ हाथ बढ़ा कर वे प्रसाद स्वयं खा लेते हैं, और उसे कुतक्का दिखा देते हैं सब लोग ठहाका लगा कर हंसते हैं और वे आगे बढ़ जाते हैं। घन्टों यही क्रम चलता रहता है। बस यही कुतक्क लीला का प्रारूप है। दानलीला का इतना सजीव और मनोहारी चित्रण हमने कहीं नहीं देखा। कलाकार की उम्र ७० वर्ष से अधिक किन्तु फुर्ती और भाव भंगिमायें देखने लायक, सचमुच अद्भुत! मुख मंडल की आभा ऐसी मानों स्वयं श्रीकृष्ण प्रकट होकर दानलीला कर रहे हों। चेहरे पर वही लावण्य वही चितचोर मुस्कान, चंचल चितवन वही अप्रतिम सौन्दर्य। मान लिया जाये कि श्रीकृष्ण स्वयं पधार कर नृत्य करते हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। ओरछा के संदर्भ में तो बिलकुल भी नहीं, क्योंकि इस पावन भूमि पर तो कई बार श्रीकृष्ण स्वयं पधार कर भक्तों के साथ नाचे हैं।

सं. १६३८ की बात है। महाराजा मधुकरशाह का राज्य था। राजा श्रीकृष्ण भक्ति तो सभी जानते हैं। वे रात्रि में जुगल किशोर के दर्शन किये बिना सोते नहीं थे। वर्तमान चतुर्भुज मंदिर के ठीक पीछे दक्षिण की तरफ वेतवा नदी की ओर एक मंदिर है, जिसमें उस समय जुगल किशोर विराजमान थे। महाराज प्रतिदिन वहां दर्शनों के लिये जाते थे। एक दिन राजकीय कार्य वश विलम्ब हो गया राजा समय पर दर्शनों के लिये नहीं पहुंच सके। और जब कार्य से निवृत्त हुये तो रात्रि के १२ बज गये किन्तु आदत के मुताबिक मंदिर पहुंच गये। कुछ सेवक भी उनके साथ थे। पट बंद होने के कारण राजा मंदिर के पीछे पहुँचे चरण छुये और भजन गाने लगे। गाते–गाते मगन हो गये तो नृत्य भी करने लगे। उनका नृत्य इतना मोहक था कि उनके साथ उनके सेवक भी नाचने लगे। तभी क्या देखते हैं कि मंदिर का मुख पूर्व से घूमकर पश्चिम की ओर घूम गया और जुगल किशोर स्वयं प्रकट होकर राजा के साथ नृत्य करने लगे तब देवताओं ने उस अद्भुत दृश्य को देखते हुये भाव–विभोर होकर स्वर्ण पुष्पों की वर्षा की। वे पुष्प पृथ्वी पर आकर गिरे और ओरछा राजघराने (टीकमगढ़) में वे स्वर्णपुष्प आज भी सुरक्षित हैं। इस घटना की पुष्टि भक्त कवि पं. हरिराम व्यास ने अपनी पुस्तक में की है। "कनक भवन महिमा" के पृष्ठ ९३ से ९५ तक में भी इस घटना का वर्णन है। ओरछा के इतिहास में कई स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है।

उन्हीं भक्त शिरोमणी महाराज मधुकर शाह की देन है ओरछा में कुतक्क लीला! किन्तु खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि गत वर्ष कुतक्क लीला करने वाले कलाकार का स्वर्गवास हो गया। और इसी के साथ इस लीला का भविष्य भी खतरे में पड़ गया। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि प्राचीन परम्परायें और रीतियाँ आज के इस आधुनिक युग में पीछे छूट रही हैं। लोगों का ध्यान मनोरंजन के आधुनिक साधनों की ओर अधिक है हमें अपने पारम्परिक तीज–त्यौहारों की जानकारी तक इन्टरनेट से निकालनी पड़ रही है। इससे शर्मनाक और क्या होगा? हम अपने बच्चों में अपने संस्कार भी नहीं दे सकते, फिर उनसे उम्मीद क्या करें? यही कारण है बहुत सी परम्परायें तीज–त्यौहार लोकोत्सव तो खत्म ही हो गये।

ओरछा में भी पुरानी परम्पराओं में कमी आई है। खासकर कुतक्क लीला के मुख्य कलाकार के निधन के बाद तो इस वर्ष परिमा तक यह निश्चित ही नहीं था कि अब कौन करेगा कुतक्क लीला? वर्षों पुरानी परम्परा का निर्वाहन कौन करेगा? लगता है पुराने कलाकार ने अपना कोई शिष्य भी तैयार नहीं किया वरना यह समस्या उत्पन्न ही न होती। हो सकता वे शिष्य बनाना चाहते हों पर किसी ने इस ओर रुचि ही न दिखाई हो। जो भी हो, पर क्या यह बरसों पुरानी परम्परा टूट जायेगी? क्या हमें अब कुतक्क लीला कभी देखने को नहीं मिलेगी? ऐसे कई प्रश्न मैंने रामराजा मंदिर के मुख्य पं. श्री रमाकान्त दीक्षित जी से पूछे वह भी बहुत चिन्तित लगे। आश्वासन भी दिया कि कोशिश करेंगे कि यह परम्परा आगे बढ़ाये। ऐसी परम्परायें ऐसे उत्सव जो सिर्फ ओरछा ही नहीं सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की पहचान हैं बंद नहीं होने चाहिये।

अपनी परम्पराओं को बचाने के लिये शासन का मुँह नहीं ताका जाना चाहिए। शासन के साथ मंदिर प्रबंधन व जन भागीदारी से ही विलुप्त होती परम्पराओं को बचाया जा सकता है। विडम्बना यही है कि जिसके पास जो भी कला है वह अपने साथ ही ले जाना चाहता है। एक तो नई पीढ़ी का पुरानी विधाओं की ओर झुकाव ही नहीं है। जिनकी रुचि है भी तो उनको मार्गदर्शन नहीं मिलता। इस तरह हम कैसे बचा पायेंगे अपनी संस्कृति और परम्पराओं को?

– गीत बंगले फेस २,
दुर्गेश बिहार, जे.के. रोड, भोपाल

बुन्देलखण्ड के अभिलेखों का ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में महत्व

– राधाकृष्ण बुन्देली

बुन्देलखण्ड एक विषम प्राकृतिक संरचना वाला प्रदेश है, जो चार सरिताओं के सीमांकन से आवृत है।

अति प्राचीन काल में यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात नहीं था बल्कि इसे पृथक–पृथक नामों से पुकारा जाता था। इसे बुन्देलखण्ड नाम से उस समय पुकारा गया, जब से बुन्देलों का शासन इस धरती पर रहा। इस क्षेत्र में गौण आदिवासियों का राज्य रहा है इसलिये इसके एक भू–भाग को गौणवाना के नाम से पुकारा जाता था। मुंशी श्यामलाल के अनुसार ६५० वर्ष पूर्व इस क्षेत्र के भू–भाग को गौणवाना के नाम से पुकारा जाता था। जब यहाँ चन्देलों का शासन उपलब्ध हुआ उस समय इस क्षेत्र को जेजाकभुक्ति के नाम से पुकारा गया। इसकी पुष्टि सन् ११८२ ईस्वी के मदनपुर अभिलेख से होती है।

अरुण राजस्व पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुनुना।
जैजाकभुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन लूनिता।।

पुराणों से यह बात स्पष्ट होती है कि महाभारत के समय इस क्षेत्र को चेदि देश के नाम से पुकारा जाता था धसान के आस–पास का क्षेत्र दशार्ण के नाम से तथा कालिंजर के आस–पास का क्षेत्र कालंजर प्रदेश के नाम से जाना जाता था। सम्राट अशोक से लेकर हर्षवर्धन के समय तक इसके एक निश्चित भू–भाग को विन्ध्याटवी के नाम से पुकारा जाता था। यहाँ पर हीरा पाए जाने के कारण इस क्षेत्र के एक भाग को बज्रदेश के नाम से पुकारा गया। पुराणों में इसे मध्यदेश और युद्ध देश के नाम से पुकारा गया। मुसलमान शासक इसके एक भाग को ढहाल के नाम से पुकारते थे। कालान्तर में इस क्षेत्र का विभाजन हवेली, कुटरा, खटोला, गुणाना, बनफरी, धंधेरीगढ़, पंवारी, गहोरा, पठार, पैलेपार, ऐलेपार और चन्देरी के नाम से हुआ।

बुन्देलखण्ड चाहे जिस नाम से पुकारा गया हो, उसका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व चिरकालिक है, जिसे कोई भी व्यक्ति नकार नहीं सकता। इस क्षेत्र में जो भी प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध होते हैं वे प्राचीनतम् दृष्टिकोण से मौर्यकाल के हैं। मौर्यकाल के पहले का कोई अभिलेख सम्भवतः इस क्षेत्र में उपलब्ध नहीं होता। इस क्षेत्र में अभिलेखों की खोज अंग्रेज विद्वानों ने की थी। ये अभिलेख अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में संकलित किए गए हैं।

सम्राट अशोक का एक अभिलेख जबलपुर के सन्निकट रूपनाथ में उपलब्ध हुआ है। यह अभिलेख ३२० ई.पू. का है। इसी जमाने का एक अभिलेख सांची में भी उपलब्ध हुआ है। यह स्तम्भ लेख है। सम्राट अशोक के अतिरिक्त शुंगवशीय नरेशों के अभिलेख भी यहां उपलब्ध होते हैं। भरहुत में एक स्तम्भ लेख शुंग वंशीय नरेश का उपलब्ध हुआ है। इसी वंश के नरेशों का एक अभिलेख बेसनगर अथवा विदिशा में उपलब्ध हुआ है।

कुछ अभिलेख यहाँ गुप्तवंशीय नरेशों के भी उपलब्ध होते हैं। यह अभिलेख गुप्त वंश के प्रारंम्भ से लेकर उत्तर गुप्तों तक के हैं। समुद्रगुप्त का एक अभिलेख एरण में उपलब्ध हुआ है। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की विजय और उसके ऐश्वर्य का वर्णन है। इसी वंश के एक अभिलेख उदयगिरि में उपलब्ध हुआ है। उदयागिरि विदिशा के सन्निकट है तथा यह गुफा लेख के रूप में विख्यात हैं। इसमें संवत्सर ८० पड़ा हुआ है। तथा इसी अभिलेख को आषाढ़ मास की द्वितीया को अंकित कराया गया। इसी सम्राट का एक अभिलेख साँची में भी उपलब्ध होता है।

कुमार गुप्त प्रथम का एक अभिलेख भिलिसा में उपलब्ध हुआ है। इसमें दिया गया संवत्सर इस प्रकार है–

छ ''महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज–
श्री कुमार गुप्तस्याभि –
(व) र्द्दमान–विजय–राज्य–संवत्सरे षष्ण्वते''

उत्तर गुप्तों ने एरण को अपनी राजधानी बनाकर अनेक वर्षों तक राज्य किया जिसका उल्लेख अनेक अभिलेखों में है। बुद्ध गुप्त का एक अभिलेख एरण में स्तम्भ लेख के रूप में उपलब्ध होता है। ये गुप्त संवत् १६५ का है, इस अभिलेख में है। सम्राट की प्रशंसा और उसके कृत्यों का उल्लेख है। यहीं पर एक अभिलेख स्तम्भ अभिलेख के रूप में मानुगुप्त का भी उपलब्ध होता है। यह गुप्त संवत् १९१ का है।

उत्तर गुप्तों के पश्चात् यहाँ पर हूणों का भी शासन रहा तथा उन्होंने अपने अभिलेख अपने शासन के प्रारम्भ में अंकित कराए। हूण शासक तोरणमाण का एक अभिलेख एरण में उपलब्ध हुआ है। जिसमें यह तारीख उपलब्ध होती है –

पृथु–कीर्तो पृथु–द्युतौ। (१)
महाराजाधिराज–श्रीतोरमाणे प्रसाशीत। (१)
फाल्गुन–दिवसे दशमे इत्येवं राज्य वर्ष मास दिनैः(१) एतस्यां

हूण नरेश मिहिकुल का एक अभिलेख ग्वालियर में भी उपलब्ध होता है। इस अभिलेख समय का उल्लेख कुछ इस प्रकार है –

''अभिवर्द्धमान–राज्ये पंचदशाब्दे नृप–वृषस्य।। (१)५
शशिरश्मिहास–विकसित–कुमदोत्पल–गन्ध–शीतलामोदे(१)
कार्मिक–मासे प्राप्त गगन – (पतौ) (नि) र्म्मले भाति। (१) ६''

उपरोक्त अभिलेख चन्देल युग के पहले के हैं। जिनकी उपलब्धि बुन्देलखण्ड में हुयी है। इनकी भाषा पाली और संस्कृत है। इन्हें वे ही लोग पढ़ सकते हैं। जो विशेषज्ञ हैं और अभिलेखों में व्यक्त ऐतिहासिक घटनाओं पर सही अर्थ लगाकर उसकी अभिव्यक्ति कर सकते हैं।

– विजय पुस्तक भण्डार, बलखण्डी नाका बांदा

बुन्देली फागों में लोकविश्वास

— डॉ० कुन्जीलाल पटेल 'मनोहर'

लोकविश्वास बुन्देलखण्ड की जीवनशैली की सांस्कृतिक विरासत है। इस क्षेत्र में अनेक लोकविश्वास प्रचलित हैं, जिनमें धार्मिक लोकविश्वास, प्रकृति सम्बंधी लोकविश्वास, तंत्र–मंत्र या जादू–टोना सम्बंधी लोकविश्वास आदि प्रमुख हैं। इन लोकविश्वासों का उद्‌भव कब, कैसे और क्यों हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर जटिलता के घिराव में हैं, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ग्रामीणों ने भय आदि से छुटकारा पाने के लिये तथा सुख की प्राप्ति के लिये इन लोकविश्वासों को अपनाया होगा।

धर्म हमारी संस्कृति का संजीवनी तत्व है और यह लोकविश्वासों से निरन्तर पुष्ट होता रहता है। देवताओं के प्रति अडिग आस्था इस अंचल की अपनी विशेषता है। देवता तो देवता हैं ही, भूत–प्रेत भी हमारे यहाँ देवता–रूप में पूजित हैं। हरदौल, दूल्हादेव, गुरैया, अछरूमाता, बरमबाबा, मसान, खुरदेव, पँरिया, ग्वाल, दानें दिवान, वैरवासिन आदि किसी न किसी के सिर आते भी हैं और अपनी पूजा लेते हैं इनमें से अधिकांश की पूजा श्रद्धा के कारण न होकर भय के कारण होती है। अनिष्ट निवारण, सन्तान प्राप्ति, आदि उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त भूत–प्रेतों और देवी–देवताओं की मनौती मनाई जाती है।

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण जनता में तंत्र–मंत्र और जादू टोना सम्बंधी अनेक अन्य मान्यतायें प्रचलित हैं। पुत्र प्राप्ति के लिये किये गये अभिचारों, जंत्रों–मंत्रों और टोटकों–टोनों का वर्णन एक फाग में देखिये –

तुमखां लला लला मरजाने, एक लला के लानें।
बहुतक पूजे देवी–देवता, भूत प्रेत अरु दाने,
जंत्र–मंत्र चेटक अरु टोना, कर–कर हारे स्याने।
कइयक गड़ा तबिजियां बांधी, कोऊ न लगे ठिकाने।
जौ है हाल कहत गंगाधर करम करे मनमाने।।

बुन्देलखण्ड में यह लोकविश्वास है कि बच्चा या अन्य कोई जितना अधिक रूपवान होगा, उतनी ही जल्दी उसे नजर लग जाती है। नजर लग जाने पर तांत्रिक आदि अपने तंत्र–मंत्र से नजर को झारते–उतारते हैं। इसी प्रकार की स्थिति का यथार्थ चित्रण निम्न फाग में उपलब्ध है–

नोनें नई नजर के मारें, राती रजऊ हमारें।
रोजऊ रोज झरईया गुनियां, दस दस दइयां झारें।
मंत्र पढ़ा के लट बंधवादई, जंत्र गरे में डारें।
विधना उदना अलफ बचावें, जिदना पटियां पारें।
ईसुर रोज रजऊ के ऊपर, राई नौन उतारें।

किसी रूपवती नायिका को पनघट पर पानी भरते समय किसी पापी की नजर लग जाती है उसका प्रभाव भी देखिये –

लचकी करयाई जल भरतन, नीची गरदन करतन।
ना मालूम काऊ पापी की, निघा बदन पर परतन।
खाकें झौंक गिरी तिरछौहीं, बनी नहीं डग धरतन।
ईसुर घायल भई कुंआं पै, भौत बची मैं मरतन।।

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण जनता में जादू–टोना जंत्रों–मंत्रों आदि लोकविश्वासों की जड़े इतनी गहरी पैठ चुकी हैं कि लोकविश्वासों को लोक जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है। नजर से बचाव के लिये शिशु के माथे पर चन्द्राकार डिठौला लगा दिया जाता है, तथा कुछ स्त्रियां अपने छोटे बच्चों की हथेलियों, पैरों और गालों पर भी नजर निवारण के लिये काजल लगा देती हैं। कुछ स्त्रियां अपने बच्चों के गले में नजर बट्टू तथा सिंहादि के नख पहनाती हैं। नजर–बचाव की नाना–विध सुरक्षायें की जाती हैं –

बारे झूल रहे पालन में, जसुदा के आंगन में।
ईसुर कात नजर के लाने लगों कजर गालन में।

प्रकृति सम्बंधी लोकविश्वासों के अन्तर्गत पशु, पक्षी, आकाश, पृथ्वी और वनस्पति सम्बंधी अनेक लोकविश्वास बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। उदाहरणार्थ बेलपत्र भगवान शंकर को चढ़ाया जाता है, पीपल में बरमदेव का वास माना जाता है तथा नीम के पेड़ में भवानी का वास माना जाता है। इसी प्रकार से बांस जलाने में बंश–नाश होती है तथा तुलसीदल के पान से मोक्ष की प्राप्ति। सांपों की पूजा करना, बिल्ली का रास्ता काटकर निकल जाने पर अशुभ मानना, भोर होते ही मगरे पर कौवा बोलने में किसी नवागन्तुक या अतिथि के आगमन की पूर्व सूचना मानना आदि लोकविश्वास आज भी इस प्रखंड में विद्यमान है।

ग्रामीण अंचलों में आज भी यह लोकविश्वास है कि संकटकाल में महुआ के वृक्ष ही सहायक होते है। इसलिये इनको काटा नहीं जाता है। किसी महुये के पेड़ के काटने पर लोकवाणी का यह उद्‌गार देखिये –

इनपै लगे कुलरियां घालन, मउआ मानुस पालन।
इनै काटबौ न चइयत ते, काट देत जे कालन।
ऐसे रूख भूंख के लाने, लगवादये नन्दलालन।
जे कर देत नई सी ईसुर, मरी मराई खालन।

लोकविश्वास के अन्तर्गत ही जादू–टोना और मोहिनी मंत्र की मान्यतायें लोक जीवन में विद्यमान हैं। मोहिनी मंत्र के शिकार एक श्रीमान् जी की स्थिति देखिए –

तुमने मोह कौ जादू कीना, जिया पराओ लीना।
पर गओं मंत्र मोहनी मोपै, बातन में पढ़ दीना।
गिरही खात रात दिन दौरत, जब कल परत कहीना।

ईसुर अपुन भई हैं मुदरी, मोहा करो नगीना।

लोकजीवन में आज भी यह लोकविश्वास प्रचलित है कि किसी कार्य का श्रीगणेश करने के पहले छींक का विचार किया जाता है। कार्य प्रारंभ में छींक होना अशुभ सूचक है –

हो गओ हरन जानकी जी कौ, चारौ कौन किसी कौ।
खेंचत गये धनुस की रेखा, जीके बाहर झाँकौ।
ढूंढ़न चले गये लछमन जू, चाव करो है कौकौ।
ईसुर असुभ दओ दसकंदर, धरतन रथ पै छींकौ।

हमारे लोक जीवन में सती–प्रथा भी लोकविश्वास के रूप में विद्यमान है। आज भी कहीं–कहीं इक्की दुक्की स्त्रियां सती होती देखी जाती हैं। सती और उसके सतीत्व के प्रति गहन श्रद्धा के कारण ही फागकार की वाणी से बरबस यह कहानी निकल पड़ती है–

सत्ती भई सुलोचन रानी, मेघनाद संग स्यानी।
कटी भुजा ने कलम पकरकें, कई कुरखेत कहानी।
चढ़ बिमान पै चली रामली, सुमरत सारंग पानी।
सिर दओं सौंप प्रीत अन्तस की, पारब्रह्म पहचानी।
इन्द्रजीत संग जरी ईसुरी, रावन की रजधानी।।

मनुष्य जन्म से आशावादी है, इसलिये वह अपने तथा अपने प्रियजनों की उन्नति, सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये हमेशा प्रयत्नशील रहता है। इसी विचार से प्रेरित होकर वह मंगल कामना के लिये टोटकों और जादू टोनों का आश्रय लेता है। इसीलिये तरह–तरह के तंत्र–मंत्र और टोना–टोटके गृहस्थ जीवन के बीच रिसे हुये हैं।

– ३/४ प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देलखण्ड में झांसी का उद्भव

– डॉ. (श्रीमती) अंजना अग्रवाल

आज जनपद झाँसी बुन्देलखण्ड का केन्द्र स्थल माना जाता है। बुन्देलखण्ड के अंतर्गत जनपद झांसी का उद्भव मध्यकाल से होता है। झांसी की स्थापना ओरछा के बुन्देला राजा वीर सिंह जूदेव द्वारा की गई थी।

ओरछा से ६ मील पश्चिम में स्थित बलवन्त नगर नामक क्षेत्र पर वीरसिंह का अधिकार था। यहीं एक पहाड़ी पर वीरसिंह जू देव जी ने झांसी का किला बनवाया जो राजा वीरसिंह जू देव द्वारा निर्मित ५२ किलों में से एक था। किले के आसपास के क्षेत्र को झांसी नगर की संज्ञा दी जाती है। झांसी शब्द की उत्पत्ति के बारे में मतभेद रहा है। एक परम्परा के अनुसार एक दिन वीर सिंह जूदेव जैतपुर के राजा के साथ ओरछा के किले के ऊपर बैठकर विचार विमर्श कर रहे थे और उसी समय झांसी के किले का निर्माण कार्य चल रहा था। वीर सिंह ने इस नई इमारत की ओर इंगित करते हुए जैतपुर के राजा से पूछा कि क्या आपको इस इमारत की दीवारें दिखाई पड़ रही हैं। जैतपुर राजा ने कहा झांई सी दिखाई पड़ रही हैं। तभी से इस स्थान का नाम झांई सा पड़ा पड़ गया जिसका अपभ्रंश झांसी हो गया।

उपरोक्त परम्परा की प्रामाणिकता का निश्चय करना अति कठिन है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि झांसी झाँई सा का अपभ्रंश हो गया होगा। वीर सिंह जू देव की मृत्यु के पश्चात जुझार सिंह राजा बने। जिन्होंने मुगलों के विरुद्ध बुन्देलां की स्वतंत्रता हेतु संघर्ष किया। इसको आगे बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल ने आगे बढ़ाया। जब मुगल सम्राट फर्रुखशियर ने अपने महान सेना नायक मु० खान बंगश को एक विशाल सेना के साथ छत्रसाल का दमन करने हेतु भेजा उसने पराक्रमता का परिचय देते हुए सन् १७२९ में छत्रसाल को जैतपुर किले में घेर लिया था। उसी समय पेशवा बाजी राव ने छत्रसाल की सहायता की और मुगलों को परास्त किया।

इस सहायता से द्रवीभूत होकर छत्रसाल ने पेशवा बाजी राव को अपना मानते हुये उनको अपने साम्राज्य का एक तिहाई भाग दे दिया। इसी हिस्से में झांसी शामिल था। इस तरह झांसी पर मराठों की सत्ता स्थापित हो गयी।

मराठों ने झांसी को अपना केन्द्र बनाकर अपनी शक्ति का प्रसार प्रारम्भ कर दिया नारो शंकर नामक मराठा ब्राह्मण को झांसी का सूबेदार नियुक्त किया। वह झांसी नगर के एक स्वतंत्र शासक की भांति दरबार लगाने लगा। अपने १५ वर्षों के कार्यकाल में नारोशंकर ने महाराष्ट्र के अनेक परिवारों को लाकर झांसी में बसाया। नारोशंकर के बाद महादजी गोविन्द, काकरडे, बाबूराव कोल्हातकर, विश्वासराव लक्ष्मण तथा रघुनाथ हरि नेवालकर झांसी के सूबेदार बने बाद में नेवालकर परिवार में सूबेदार का पद वंशानुगत हो गया। इसकी अन्तिम शासिका महारानी लक्ष्मीबाई थी। महारानी लक्ष्मीबाई ने ही भारत के ही नहीं विश्व के कोने–कोने में झांसी को प्रसिद्ध किया।

भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम अर्थात् सन् १८५७ की लड़ाई के झांसी को केन्द्र बनाकर रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे किये। और अन्त में शहादत को प्राप्त हुई झांसी पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

– शास. उच्च.मा. विद्यालय, रिठौराकलां
जिला मुरैना म.प्र.

दीवान बहादुर गोपाल सिंह 'गर्रोली'

– नरेन्द्र कुमार जैन

बुन्देलखण्ड की भूमि हमेशा से ही वीरों को पैदा करने वाली जानी जाती है। यहाँ की जलवायु का प्रभाव ऐसा ही है। यहां का सपूत अन्याय, अत्याचार को किंचित मात्र भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। अपने सम्मान एवं स्वाभिमान के लिये वह अपना सब कुछ खोने के लिये तैयार रहता है, यही भावना संघर्ष को भी जन्म देती है। इसी संघर्ष, त्याग, बलिदान के गुणों से विभूषित व्यक्ति थे। दीवान गोपाल सिंह (गर्रोली) जो गर्रोली राज्य के संस्थापक थे। इन्होंने अंग्रेजों से सतत् संघर्ष किया, और अंग्रेजों के सामने घुटने टेकने के बजाय अंग्रेजों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया।

गोपाल सिंह शाहगढ़ जिला सागर के निवासी थे। वे प्रारंभ में जसों के राजा छत्रशाल के नाती दुरजन सिंह व हरी सिंह की सेना में महत्वपूर्ण पदों पर रहे। सन् १७९० उन्होंने अली बहादुर से परगना कोटरा छीना और उस पर अधिकार स्थापित कर लिया,

अंग्रेज लेखक एरविन टी. एटकिन्सन ने अपनी कृति स्टेट स्टिकल ड्रिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट आफ दी नार्थ प्राविन्सेज आफ इंडिया में गोपाल सिंह को कुशल युद्ध प्रिय एवं अनुभवी योद्धा बताया है। उनको पराजित करने तथा अधीनता स्वीकार कराने हेतु अंग्रेजों ने तीन बटालियन (पैदल सेना) तथा रैजीमेंट कैवेलरी कमाण्डर विन्य के नेतृत्व में रखी। उसका मुख्यालय तरावन कर्वी के निकट है। उस वैरक के खण्डहर आज भी विद्यमान है। कमाण्डर विन्य तथा गोपाल सिंह की सेनाओं के बीच पिपरिया में घनघोर युद्ध हुआ जिसमें कमाण्डर विन्य तथा दूसरी सेना को गोपाल सिंह ने बुरी तरह पराजित किया और तरावन की फौजी छावनी को नष्ट कर आग लगा दी।

श्री गोपाल सिंह यद्यपि अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में एक साम्राज्यवादी शक्तिशाली शक्ति से संघर्ष कर रहे थे। उनके इस संघर्ष से पन्ना नरेश किशोर सिंह ने उन्हें १८ गांव जागीर में दिये। ये गांव उनकी मृत्यु १८३१ तक उनके पास रहे।

श्री गोपाल सिंह ने १२ वर्षों तक ब्रिटिश सरकार से भीषण संघर्ष किया, पर जब उन्होंने देखा कि वे अपने अभियान में लगभग अकेले पड़ रहे हैं और पन्ना एवं अन्य नरेशों ने आग्रह किया तो उन्होंने अंग्रेजों के समक्ष शर्तें रखीं। अंग्रेजों ने शर्तों को स्वीकार कर लिया। १८१२ में उन्होंने अंग्रेजों से मित्रता कर ली और वे एक सनद के आधार पर गर्रोली राज्य के संस्थापक बनकर उसका संचालन करने लगे। अंग्रेजों ने राजा बखत सिंह राजा मनसूक राजा विक्रम सिंह व अनेक सामन्तों की जागीरें भी उनके नियंत्रण में रखी। उन्हें फाँसी देने की सलाहकार समिति में रखा। इतने सारे अधिकार देने के बावजूद अंग्रेजों को गोपाल सिंह पर विश्वास नहीं था।

१८१४ में ऐसा समय भी आया जिसमें गोपाल सिंह को मारने का षड़यंत्र रचा गया। राजाओं की बैठक में गोपाल सिंह को भी आमंत्रित किया गया। जिस रास्ते से गोपाल सिंह को गुजरना था, उस रास्ते में गुप्त रूप से चार्ल्स के नेतृत्व में कुछ सैनिकों को रखा गया। गोपाल सिंह चतुर एवं होशियार तो थे ही उनको ज्ञात हुआ कि रास्ते में हम पर अंग्रेजी सेना का आक्रमण हो सकता है, वे भी एक छोटी सी कुशल सेना जिसमें १२५० सिपाही थे अपने साथ लेकर आये थे। अंग्रेजों द्वारा रास्ते में आक्रमण किया गया, गोपाल सिंह की सेना ने अंग्रेजी सेना को बुरी तरह से परास्त किया उनको मय हथियारों सहित बंदी बनाकर किले में कैद कर लिया।

गोपाल सिंह का अभियान बुन्देलखण्ड के पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, गढ़ाकोटा, कुटरा, उचेहरा, राज्यों के अतिरिक्त बघेलखण्ड के रीवा राज्य तक भी था जिससे अंग्रेज परेशान थे।

१८३१ में गोपाल सिंह का देहान्त हो गया। और उनके बाद दीवान बहादुर पारीक्षत गर्रोली के राजा हुये जिन्होंने १८८४ तक राज्य किया। गोपाल सिंह के निधन से एक योद्धा चला गया जिसने अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी बड़ी से बड़ी शक्ति से संघर्ष किया और अपने स्वाभिमान की रक्षा की। उनके शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते थे। यह सत्य है कि अंग्रेजों ने उनसे परेशान होकर ही उनके द्वारा रखी गयीं शर्तों को मानकर उन्हें सनद एवं गर्रोली का राज्य प्रदान किया था। स्वाभिमान, सम्मान की रक्षा में संघर्ष करने वाले गोपाल सिंह मर कर भी अमर रहेंगे।

– सी.१, सीनेट कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली–गौरव

– पं. राजकुमार पुजारी

नवेली नवेली, नवेली नवेली
नवेली बाँकी मधुर जा बुन्देली
    माथे की शोभा मुदन्ना दिवारी
    पाई फाग चौकड़िया सोहे सहेली
लांगुरिया लेद संग बूंदा विलवारी
दिनरी लाचारी उर गारी अलबेली
    सोहर मामुलिया चैती उर गैलहाई
    कजरी होरी संग अचरी की शैली
रसिया के संग झूला सावन में झूली
आल्हा मल्हार भजन अटका पहेली
    नौरता और कातिक, लम्टेरा लटकारी
    राई स्वांग सैरो उर रावला संग खेली
राछरो उर टप्पा भजन उर कजरियां
सुअटा अकती रमटेरा नौ फैली
    चन्द्र सखी गंगाधर ईसुरी बिहारी
    हीरा मोती लाल, रतन भरी थैली

– मोती निवास, पुजरयाना, पृथ्वीपुर टीकमगढ़

बुन्देली कथा –

गम्म कौ फल

– मनमोहन पाण्डेय

एक राजा हतो ऊकैं सन्तान नईं होत ती, ऊनें सात ब्याव करे पै एकउ कैं सन्तान नईं भई। सो ऊने सोचो कै ऐसे जीवे सैं तौ मरबौ अच्छौ उने अपनी सबरी रानियन खौं बुलाके कइ कै अगर हमायें सन्तान नईं होत तौ पैलऊ सातइ रानियन खौं मार डारैं फिर खुद मर जैं। सातइ रानियन नैं जब राजा खौं दुखी देख सो बे सबरी रानी रोउन लगीं उनें राजा के मरबे कौ और खुद के मरबे कौ डर हतो। जब बे कबऊँ पुरा परौस में लरका बिटियन की भोली भाली बातें सुनतीं तौ उनैं लगत तौ कै अपुन कितनी अभागिनें हैं। कै हमायें सात जनियन में सैं एकउ कैं सन्तान नईयाँ। राजा की सबसें छोटी रानी नैं राजा के समजावे खों खबासन सें कुवा दई कै वे आध ान सैं हैं। राजा नैं जांसै जा सुनी कै छोटी रानी आधान सैं हैं तो बड़े खुश भये। जब नौ मइना हो गये तौ रानी नैं कुवा दइ कै बेटी भई हैं। राजा खों बड़ी खुसी भई राजा नैं पूरे राज में डोंडी पिटवा दई गरीब गुरवन खौं खूबइ दान दऔ उर इनामें बांटीं और पंगतैं दईं। जब एक दिना राजा नैं कइ कै अबै तक हमने अपनी बेटी खौं नई देखौ तनक हमाए लिंगा ल्यावो खिलाबे कौ मन हो रऔ। रानी नैं कई कै बेटी खौं मूल लगे हैं सो राजा खौं बेटी कौ देखबौ नुकसानदार है। ऐसी जोसी कै गओ है। बेटी के लाने जो कछु खिलौना कपड़ा गानौं गुरिया चाने तो सो राजा देत रयें। जब जब राजा ने बेटी के देखबे कौ मन करो रानी ने कौनउं न कौनउं बहानों बना दओ। धीरें धीरें बेटी स्यानी हो गई तौ रानी नें राजा सें कई कै बेटी स्यानी हो गई है। कौनउँ अच्छे से कुँवर खों देख कें पक्यात धरवा दो। सो राजा ने नाऊ बामुन भेजे उनने एक दूसरे देश के राजा के कुंवर खों देख कें पक्यात धर दई। ब्याव कौ महूरत निकरो सो बरात आ गई। टीका पटा भऔ सबरे नैगचार भये जब भांवर परबे की घरी आई तौ रानी ने कुवा दई कै हमाये इतै कटार के संगै भांवर पराई जात है। सो उन्ने मंडवा में कटार भेज दई उर कटार के संगै भांवरें पर गई। अब बारात के बिदा होबे की बेरा आ गई सो रानी ने कुँवर खों अकेले में बुलाऔ और आंखन में असुवा भर कें अपनी सबरी कहानी सुना दई और एक पिंजरा दूला खों दै दऔ। ऊमें एक चिरइया हती, उन्नें कई कै बेटा हमने राजा की जान बचाबे उर अपनी जान बचाबे जा चिरइया पाली ती सो आज तुमें सौंपत हैं। जेइ तुमाइ दुलइया है उर जेइ तुमाइ सब कछू है। उन्ने दूला के पाँव पकर लये कै बेटा अब तुम चाओ तौ हमाये घर खों बचालो चाये मिटवा डारौ। दूला बड़ो समजदार हतो भाग्यवादी हतो। ऊनें सोचीं कै जो हमाये करम में हतो सो भऔ कोउ खों का दोष? ऊनें अपनी सास खों धीरज बंधाऔ उर कइ कै बाई तुम बिल्कुल नईं घबराऔ उर ना चिंता करौ मोरे भाग में जो बदो तौ सो पाऔ। मैं कोउ सें कभऊँ नईं केंव जब तक मोरे प्रान हैं कोउ खों ई बात कौ पतौ नई परन देंव। उर ईखों अपनी आँखन के सामूं राखों। बरात की जब बिदा भई तौ पिंजरा खों पीनस में धर दऔ पीनस के आंगू सिपाई उर पाछूं सिपाई हते बीच में बेटी की पीनस खों ढीमर लैजा रये ते बे मनई मन कै रये ते कै ई पीनस में बैठी बेटी कौ तौ कछु बजनइ नइयाँ। बे का जानें कै ई पीनस में चिरइया कौ पिंजरा आयै धरो। बरात जब घरै लौट आयी तौ कुँवर ने अपने पिता सें कई कै हमाइ बहू की पीनस घरै नईं जै और न कोउ ऊसे मिलवे आवे। और न कौनउ तरां कौ गाना बजाना खेल तमासा पूजा पाठ उर ना पंगत हुवै। बे अपनी बहू खों लैकें परवायरे महल में रान लगे जितै कोउ आउत जात नई हतो। कुंवर की बातें सुनकें सबखों सांप सौ सूंग गओ। कुँवर की मताई खों रोवौ आ गओ। बे सोचई ना पाई कै ऐसी कौन सी बात हो गई कै जीसें कुँवर ने विचारी बहू खों अकेलौ राखन चाउत है। मैं ऊके साके पारे नईं करा पाई। मताई जानत ती कै ऊकौ बेटा बड़ो समझदार है। कौनउ ऐसी बात जरूर हुइयै जीसें बहू खों अकेलौ राखौ चाउत है। बे जौ भी जानत तीं कै ऊके लरका कौ सुभाव भौत गुस्सैल है, कजन की दारैं ऊकी बात नईं मानी तौ भगवान जानें का हुइयै? रानी ने राजा खों समजा दओ कै जैसौ लरका कात सो ऊसई करौ। जब भौत दिना हो गये तौ मताई ने सोसो कै मोरी बहू कैसी हुइयै ऊपै काम बनत हुइयै कै नईं? सो ऊने एक छबुलिया भर चना भिजवा दये और कई कै बेटा बहू सें इन चनन के द्योल करवा दइयौ। कुँवर मूंड़ पै हाथ धर कें बैठ गये कै अब भद्द खुल जाने। ओई समय चिरइया बोली का सोस रये हौ। चिरइया कुँवर सें सांसऊं की घरवारी की तरां बात करत ती बा कुँवर खों अपने प्रानन से जादा चाउत ती और कुँवर सोइ उयै प्रानन सें जादा चाउत हते जब ऊँनें कुँवर खों देखो कै उनके मौं कौ रँग उतर गऔ।

जब ऊनें कुँवर खों करम पै हाथ धरै देखो तौ बा डरा गई। ऊने सोसी कै आज कुँवर खों ना जानें का हो गऔ। कुँवर ने कई कै हमाई मताई ने जे चना भेजे और कई कै इनखों दरवा दो अब को इनें दरत? काल जब दार नईं पौंचै तौ सब कोउ जान जै कै इनकी बहू कछू नईं जानत। चिरइया नें कई कै अपुन चिन्ता नईं करौ मोरे पिंजरा की सींक खोल देव कुँवर ने जब पिंजरा की खिड़की खोली तौ चिरइया फुर्र से उड़ गई और हजारन चिरइयन खों अपने संगै छत पै लुवा ल्याई। उन चिरइयन ने ईना के बीना देवल बना दये और अपने पंखन में फुकला नेंचें उड़ा दये। कुँवर नें देखी कै कौनउ देवल टूटौ नइयाँ। उन्ने देवल हवेली में भिजवा दये सब कोउ ने बहू की भौत तारीफ करी फिर उनकी सास ने धान भेजी चिरइया ने फिर उन चिरइन खों बुलाकें धान के एक एक चावल निकाल कैं पंखन सें उनके फुकला उड़ा दये। सब कोउ नें ऊ बहू

की भौत तारीफ करी कै बहू तौ भौत अच्छौ काम जानत है। एक दिना का भऔ कै कुँवर सें उनके पिताजी नें कई कै तुमें तीन दिना खों अपने रिश्तेदार की बरातै जानें। कुँवर भौत परेशान भये और बोले अब तुम नईं बच सकतीं मोये तीन दिना खों आन गाँव जानें अब तुम भूख प्यास सें मर जैव। ऊनें कइ कै तुम हमाई बिल्कुल फिकर नईं करौ हमाये पिंजरा की खिड़की खोल देव और किवरिया खोल देव सो मैं खा पी कें पिंजरा में लौट आहौं। कुँवर ने पिंजरा की खिड़की की सींक और किवरिया खोल दई और दुखी मन से बरातै चले गये। बिचारी चिरइया अकेली घरै रै गई। पिंजरा में जोंन डबुलिया धरी ती सो ऊके पांवन सें लुड़क गई। उयै प्यास लगी सो ऊने चोंच में डबुलिया दबा लई और बेर में गई। पैलें तौ ऊने जी भर के पानी पियो फिर ऊनें सोसी कै अपनी डबुलिया और भर लैऔं सो बा डबुलिया के बोझ के कारण उड़ नईं पाई। जैसें तैसें उड़बे सें डबुलिया खाली हो जावे। चिरइया भौत जिद्दी ती वा चाउत ती कै डबुलिया भर कैं अपने पिंजरा में पौंच जावै। सो वा घंटा भर सें डूब उतरा रई ती। इतने में शंकर पार्वती जू उतै सें निकरे। पारबती ने शंकर भगवान से पूंछी कै जा चिरइया का कर रई। शंकर जू नें कई कै एई सें हम तुमें संगै नईं लै आउत कै तुम संसार की हर बात खों देखती और बीच में अड़ंगा डार देती हौ। ई संसार में बन्न बन्न के पिरानी अपने करमन कौ फल भुगतत हैं। हमें उनसें का करने? पार्वती जू नें कई कै भगवान जा चिरइया पानी में काए डूब रइ और उतरा रई? शंकर जू ने ऊकी सबरी किसा पार्वतीजू खों सुनाई कै कैसें वा पली कैसें राजकुमार के संगै आई और इतै का कर रई। पार्वती जू ने शंकर भगवान सें कई कै भोलानाथ इयै लुगाई बना दो। भोलानाथ ने अपनी पेंती चीरी और ऊमें से तनक सौ रकत ऊपै छिटक दऔ जैसइ उनकौ रकत चिरइया पै परो सो वा एक सुन्दर लुगाई बन गई। उर बा धीरे धीरें घरै आई। राजकुमार जब बरात सें लौटे सो हाँपत हाँपत भगत आये कै चिरइया बची कै मर गई। जब बे भीतर गये तौ उतै भौतइ सुन्दर लुगाई अच्छे उन्ना कपड़ा गाने सें सिंगरी ठाड़ी ती। जैसइ कुँवर ने उये देखो सो उन्नें म्यान में से तरवार निकारी और मारबे खों तैयार हो गये। कुँवर ने गुस्सा हो कें कइ कै तें को आय और कांसे आई और हमाइ चिरइया खों कितै मार डारो और रोउन लगे। कुँवर की बात सुनकें रानी उनके गोड़न पै गिरी। ऊनें सबरी किसा राजा खों सुनाई कै कैसें चिरइया सें रानी बन गई। राजकुमार ऊकी बातें सुनकें भौत खुश भये। फिर उन्ने अपनी राजामाता खों संदेसौ दऔ। उनकी मताई नें गाजे बाजे से अपनी बहू खों बुलवाऔ सबरे राजभर में खूब खुशी भई। बे राजा के कुँवर और बे राजन की बेटी दोई जनें खुशी सें रान लगे।

जो कोउ अबेरा परे पै मन में धीरज उर भगवान पै विस्वास करकें काम करत ऊखों ऐसई अच्छौ फल मिलत जैसौ रानी खों चिरइया खों उर कुँवर खों मिलो।

— सुधासागर रोड, टीकमगढ़ म.प्र.

बुन्देली कविता —

किसान

— शीलचन्द्र चौधरी

कायखों खेवत आय सदा सें, तुम भारत की नइया।
परत अबेरा जब तुमपै, नइयाँ कोउ बात पुछइया।

भूख प्यास की खबर बिसारें, लगे रात धन्दे में।
जाड़ौ घामौ विसर सबइ तुम फँसे रात फन्दे में।।
एड़ी चोटी एक करत रत, तुम काये खों भइया।
कायखों................।।

उन्ना लों नइँ जूजत तुमखों, ढाँकन कों जा काया।
रानें परत सदा अधपेटा, जा ईसुर की माया।।
दार तेंउन तौ अजुर रात है, कैसें चड़त करैया।।
कायखों................।।

तित त्योहारन कभउँ भाग्य सें, बनें गोंऊँ के फुलका।
किलकन लगतइ हरजू बिरजू दोइ तुमारे लरका।
दो दो फुलकन के लानें बे, कर रए हाहा दइया।।
कायखों..............।।

कोउ बचो नइँ खा, रव तुमरी, सवरौ मुलक कमाई।
सम्पत सब भैंयन ने लैलइ, खा रय दूध मलाई।।
बदे तुमें बेइ नौन ठटउवा, जबै लगौ लौलइया।।
काये खो................।।

लौटे दुपरै आवै तुमखों, रोटी और महेरौ।
खावे सबखों मेंड़ मेंड़ सें, बड़े हेम सें टेरौ।
रात काटवे सेज तुमाई कोड़ौ और मड़ैया।।
काय खो................।।

साव और सरकार दोइ कौ, धरें मूड़ पै करजा।
देत देत पै मिलौ अखिरी बेइमान कौ दरजा।।
करजइ में पूरी भइ उम्मर तौऊ न चुके रुपैया।
कायेखों.............।।

जौन मुलक में पालन हारे, की ऐसी गत रैवै।
दूध मलाई खवा औरखों, खुदईं खकरियाँ खैवै।।
भोरन की भगवान बिना, नइयाँ कोउ बात पुछइया।।
काय खों............।।

देख कसाले अब किसान के हुकमबनों सरकारी।
जिमी जगा दिबवाई खूबइ, छुड़ा दियौ रिन भारी।।
खाद बीज सरकारी सें भव, नौनों 'शील' समइया।।
कायखों.............।।

— घुवारा, जिला छतरपुर म.प्र.

चन्देलों बुन्देलों के वैभव का प्रतीक बल्देवगढ़

— डॉ. के०पी० त्रिपाठी

बुन्देलभूमि पर चंदेलों एवं बुन्देलों का दीर्घावधि तक राज्य शासन रहा। जिन्होंने बुन्देलभूमि का रूप स्वरूप सौन्दर्य निखारने हेतु लगभग चार हजार तालाब एवं सैकड़ों दुर्गों का निर्माण कराया था। जिनका अपना स्वरूप सौन्दर्य है, न्यारी न्यारी छटा है कि जिन्हें देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसी ही एक चंदेल कालीन झील ग्वालसागर बल्देवगढ़ और झील की प्राकृतिक पाल पर बुन्देलों की यशगाथा करता खड़ा विशाल भव्य किला बल्देवगढ़। यहाँ चन्देलों की लोकोपकारी धरातलीय जल संग्रहण नीति एवं बुन्देलों की सामरिक सुरक्षा में चैतन्यता के एक साथ दर्शन होते हैं। बल्देवगढ़ की झील ग्वाल सागर एवं किला दोनों एक स्थल पर हैं। बुन्देलखण्ड का गौरव हैं। दर्शनीय हैं।

बल्देवगढ़—पूर्वकालिक ओरछा राज्य और वर्तमान जिला टीकमगढ़ के मुख्यालय टीकमगढ़ के पूर्वी अंचल में २५ किलोमीटर की दूरी पर २४.४६ उत्तरी अक्षांश एवं ७९.७ पूर्वी देशान्तर पर, टीकमगढ़—छतरपुर बस मार्ग पर स्थित है। बल्देवगढ़ आने जाने के लिये नौगांव झांसी ओरछा छतरपुर, टीकमगढ़, शाहगढ़, सागर, बिजावर, जबलपुर, दमोह से यात्री बसें चलती हैं।

चंदेल काल के पहले यह दक्षिणी बुन्देलखण्ड वनाच्छादित जलविहीन एवं जनविहीन मात्र चारागाही क्षेत्र था। धन्य है चंदेल राजा, जिन्होंने इस वनाच्छादि पठारी जल एवं जन विहीन भू भाग के विकास हेतु प्रारंभिक पहल की थी। जहां जल है वहीं जीवन है और विकास है, जैसी लोक कल्याणकारी भावना की राजाज्ञा को प्रदर्शित करता, महाराजा धंगदेव चंदेल (९५०—१००८ ई.) के शासन काल का शिलालेख खजुराहो में प्राप्त है —

"Attention was paid to irrigation work for the facility to cultiration. The khajuraho inscription of V.S. loll for Example, refer to the construction of Embankments to divert the course of ribers (V. 26) evidently for the benefite of the peaocentry concern. Expression like NALA (Canal) PUSKARNI (Tanks) and BHITI (Embankments) are met within different chandela records. These were usually located near the cultivable plates of land apparently to supply water to the fields (S.K. Mitra the early Rulars of khajuraho P. 80)

बल्देवगढ़ (बांध) की विशाल झील का ग्वाल सागर का निर्माण चंदेल राजा मदनवर्मा (११२९—६३) ने कराया था। मदनवर्मा ने महोबा में मदन सागर, अहार (मदनेशपुरी) में मदन सागर एवं बांध की पहाड़ी पर मदनेश्वर मठ तथा जतारा में मदन सागर विशाल तालाब बनवाये थे। मदनपुर (ललितपुर जिला) ग्राम भी उसी का बसाया हुआ है। मदनपुर का विशाल तालाब भी उसी का बनवाया हुआ है जो फूट गया था और उसमें अब खेती की जाती है।

ग्वाल सागर का बांध (पाल) लगभग साठ मीटर लम्बा, इतना ही चौड़ा एवं २५ मीटर ऊँचा है। जो दक्षिण दिशा की ओर जाते बड़ा पहाड़ एवं उत्तर दिशा की ओर से आते पेट का पहाड़ के समागम स्थल के दर्रा की पटार भर ही है। चूँकि इस क्षेत्र में पानी का पूर्णतः संकट था। जिस कारण इस क्षेत्र में न बस्तियाँ थी न कृषि विकास। कुछ ग्वाले (अहीर जाति के गायें पालने वाले लोग) पहाड़—टौरियों पर टपरे—बाड़े बगर बनाकर मवेशी चराते हुये घुमंतू जीवन बिताते विचरते रहते थे।

बड़ा पहाड़ एवं पेटका पहाड़ों के मध्य की पटार से गुरिया एवं गौर दो छोटी—छोटी नदियाँ प्रवाहित थीं। मदन वर्मा ने ग्वालों के सहयोग से पटार (दर्रा) पर सुदृढ़ चौड़ा एवं ऊँचा बंधान (पाल) तैयार कर २९ वर्ग किलोमीटर जलग्रहण क्षमता की विशाल झील तैयार करा कर गायों—ग्वालों के नाम पर ग्वालसागर नाम रख दिया था। जबकि उसने अपने नाम से बांध के पृष्ठ भाग में एक सुन्दर सदा जल भरी बावड़ी बनवाई थी, जिसे लोग आज भी मदनबेर कहते हैं। ग्वालसागर का मनुष्यों द्वारा बनाया बांध तो मात्र साठ मीटर लम्बा ही है परन्तु बांध के दोनों और बड़ा पहाड़ एवं पेटका पहाड़ प्राकृतिक भूधर बांध है। तालाब के अन्दर एक द्वीपवत् टौरिया है। बांध के ऊपर शिवजी का चबूतरा एवं मंदिर है। तालाब के अतिरिक्त पानी के निकास हेतु एक पथरीली पाँखी थी, जिस पर पट्टी बना दी गई थी। तालाब हर स्थिति में चाहे अल्प वर्षा अथवा अवर्षा हो पानी कभी नहीं सूखा है। लोगों के निस्तार एवं मवेशियों वन्य प्राणियों के पीने को पानी हर समय मिलता ही रहा है।

ग्वालसागर तालाब के पानी को बुन्देला शासन के समय से कृषि सिंचाई एक बाग बगीचों की सिंचाई को लिया जाने लगा था। जिसका लाभ बल्देवगढ़, दुर्गानगर, बनैरा, कैलपुरा, सेवार चंदूली, रमपुरा, जिनागढ़ जंगल, जिनागढ़ खास, बलवंतनगर देवीनगर, राजनगर, जटेरा, सुजानपुरा ऊगड़, सुजानपुराखास, जटेरा एवं श्यामपुरा जेसे पन्द्रह सोलह ग्रामों को मिल रहा है। इसकी दो नहरें बायीं ५ कि.मी. एवं दायीं २६ किलोमीटर लंबी है। जिनसे लगभग १५०० हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। ग्वालसागर सरोवर में मत्स्य पालन भी होता है। इसके मीठे पानी की रोहू मछली की मांग कलकत्ता में बहुत रहती है।

यदि वर्तमान में ग्वालसागर झील में वर्षाती धरातलीय पानी की आवक के स्रोत विकसित करा दिये जाए और तालाब के मध्य के टापू पर पर्यटक कोटेज स्थापित कर नौका विहार की व्यवस्था पर्यटन विभाग कर दे तो झील की उपयोगिता में चार चांद लग सकते हैं।

गुरिया गौर नदियों पर बांध बनवा कर विशाल ग्वालसागर सरोवर बनाने के उपरान्त तालाब के उत्तरी भाग की पेटका पहाड़ी पर 'बांध' नामसे बस्ती बसा दी थी। पानी हुआ तो घुमन्तू जीवन ठहर गया। बांध बस्ती एक सम्पन्न व्यापारिक कस्बा के रूप में प्रसिद्ध हो गया था। बराई (गन्ना), धान, तिलहन की खेती का विकास हुआ। गुड़, चावल, घी, अचार, गुली और महुआ का निर्यात बल्देवगढ़ क्षेत्र से चंदेरी को होने लगा था। चन्देरी के जैन पाड़ाशाह सेठ व्यापारी का टाँड़ौं (लद्दू बैल भैसे पड़ा) बल्देवगढ़ क्षेत्र में आकर दिशावरी वस्तुयें बेचते और बदले में इस क्षेत्र की उपज टांड़ों पर लादकर ले जाते थे। मदन वर्मा ने जनवसाहट एवं कृषि विकास के निमित्त तालाबों के निर्माण का सिलसिला बदस्तूर चालू रखा। इसके साथ ही क्षेत्र के बाहर के जैन व्यापारियों को बल्देवगढ़ परिक्षेत्र के सरकनपुर, अहार नारायणपुर लार बड़ागांव, नाबई ग्रामों में धार्मिक स्वतंत्रता संरक्षण एवं समान व्यवहार देकर, बल्देवगढ़ से चन्दैरी मार्ग पर बसने को प्रोत्साहित किया था।

ओरछा नरेश महाराजा विक्रमाजीत सिंह (१७७६–१८१७ ई.) ने मराठों की लूट, अराजकता एवं अत्याचारों से त्रस्त होकर सन् १७८३ ई. में ओरछा के बजाय टीकमगढ़ नगर को राजधानी मुख्यालय स्थापित कर लिया था।

१८१२ में उन्होंने बांध की सुन्दर गहरीं बादियों, घाटियों, उत्तर पूर्व एवं दक्षिणी पार्श्व में फैला ग्वालसागर तालाब एवं पश्चिमी पार्श्व में पहाड़ टौरियों की गहरी पटारों खंदकों में सैन्य सामग्री, आयुध भंडारण हेतु सुरक्षित सुदृढ़ बड़ा पहाड़ से पेटका तक विशाल किले का निर्माण करा दिया था। जितना मनोहारी ग्वालसागर का लेकव्यू है, उससे कम दुर्ग का फोर्ट व्यू नहीं है। लेक व्यू एवं फोर्ट व्यू ने बाँध (बल्देवगढ़) को गौरवपूर्ण ऐतिहासिक महत्ता प्रदान कर दी थी जो आज भी बरकरार है। यह दुर्ग बुन्देलखण्ड के बड़े किलों में से एक है। सुदृढ़ है, दुर्गम है एवं अजेय है।

किले का मुख्य किला दरबाजा बड़े पहाड़ को खड़ा काट कर पश्चिम दिशा को एक लम्बी सीधी ढाल पर खंदक की ओर बना हुआ है। खंदक से चढ़ाई चढ़ते दो मोड़े एवं तीन सुरक्षा चौकी पार करते कीला दरबाजे पर पहुँचते हैं, जो बांध के विशाल प्रांगण में खुलता है। दरबाजे के दायें बड़े पहाड़ पर आल्हा मुण्डा शिखर पर दो गुर्जें और एक सुरक्षा चौकी है। प्रथम गुर्ज पर एक विशाल तोप चढ़ी है। जबकि दूसरी गुर्ज में बारूद गोला एवं गोलंदाज रहते थे। तालाब के बांध प्रांगण में तालाब की ओर विशाल भव्य २४ खंभों पर खड़ा द्विमंजिला दीवान खाना भवन है। जिसके पार्श्व में शिवघाट पर श्री बल्दाऊ जी का विशाल मंदिर है। विक्रमाजीत सिंह ने बल्दाऊ जी को समर्पित करते हुये इस किले का नाम बल्देवगढ़ रखा था। इसी समय से किला एवं बांध कस्बा का नाम बल्देवगढ़ प्रचलन में है। कीला दरबाजे के अन्दर वाले प्रथम प्रांगण में बांयी ओर बाबा कपूर शाह की मजार है। शिव चबूतरा शिव घाट पर एवं तोपखाना है। इसी प्रांगण में किला परकोटा के अन्दर गलियारा है। जिसकी गुर्जों में सुरक्षा सैनिक रहते थे। इस प्रथम प्रांगण में तोपें खड़ी रहती थी, जिनमें भुमानी शंकर एवं गर्भ गिरावन तोपें प्रमुख थीं।

प्रथम चौक से एक विशाल दरबाजा को पार कर दूसरे प्रांगण (चौक) में प्रविष्ट होते हैं। चौक के दायीं ओर तालाब से लगा परकोटा है तो बायें पहाड़ पर अठमडियां महल और अन्य अनेक कक्ष हैं। तालाब से संलग्न घाट के पास एक महल है। घाट (स्नानादि के लिये और घोड़ों हाथियों को पानी पिलाने हेतु) पर्देदार है और सीधा ग्वालसागर तालाब में खुलता है। इस प्रांगण में एक लम्बी घुड़शाला है। छोटी तोपें गोला बारूद इसी प्रांगण में तालाब की पट्टी के किनारे के कक्षों में एवं सामने रखे रहते थे। रिसाला अधिकारी एवं तोपखाना के अधिकारी कर्मचारी भी इसी प्रांगण में रहा करते थे। घाट पर शिवजी है।

रिसाला प्रांगण के पूर्व में राजा निवास चौक है। इसे कचहरी चौक भी कहा जाता है। इस चौक के पश्चिमी भाग में पहाड़ी पर विशाल राजमहल है। जिसके लिये चौक से सीढ़ियां चढ़ते एक चांदे पर विशाल कचहरी दरबाजे से राजमहल प्रांगण में पहुंचते हैं। इस प्रांगण में एक अंधकूप, कोषागार, बारूदखानें रसद सामग्री के जखीरे रहे हैं। चौक के पूर्वी भाग में तालाब के अंदर रानी महल, रनिवासीय चौपरा (स्वीमिंग पूल) है। रानी महल बड़ा सुन्दर एवं विशाल है। चौपरा के मध्य में शिव मंदिर है।

राज निवस चौक के उत्तर में ३ मोड़ों एवं २ दरबाजों वाले एक संकीर्ण गलयारे में से चलते किला के दूसरे उत्तरमुखी दरवाजे पर किला मैदान पर पहुंच जाते हैं। इस दूसरे दरवाजे को खिड़की दरवाजा कहते थे। इस खिड़की दरबाजे पर बदायू सैय्यद साहब की मजार है। पश्चिम की ओर गौड़ बब्बा का चबूतरा है। विक्रमाजीत सिंह जी ने किले को जल दुर्ग बना दिया था। दक्षिण पूर्व में ग्वाल सागर था तो उन्होंने उत्तर दिशा में जुगल सागर तालाब एवं पश्चिम में धरम सागर तालाब बनवाकर किले को जल के मध्य कर दिया था। घाटियों खंदकों एवं तालाबों के जल भराव के कारण किसी भी शत्रु का दुर्ग तक पहुँचना असंभव ही रहा है। बल्देवगढ़ का लेक व्यू एवं फोर्ट व्यू वैभवपूर्ण है। दर्शनीय है।

— भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

मातवंदना

— कृष्ण मुरारी श्रीवास्तव 'सखा'

ठाँड़ीं मातु श्री मुस्क्याराईं।
अपने तेज पुंज सें बे तो भक्तन खों अन्वाराईं।।
कऊँ लक्ष्मी को रूप धरें बे, धन वर्षा कर जा रईं।।
कऊँ कऊँ सरस्वती बनमइया, विद्यादान करवा रईं।।
ममता रूप बनायें दुर्गा, बच्चन दूद पिवा रईं।।
कऊँ काली को रूप बनाबें, दुष्टन खाँ चटका रईं।।
बिनती सबकी सुनती माता, सब की लाज बचा रईं।।
कृष्ण 'सखा' पे कृपा कोर, अपनेई हाथ सजा रईं।।

— सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

बुन्देलखण्ड के कुछ स्थानों की विशिष्ट मान्यताएँ

–डॉ. लोकेन्द्र सिंह गुर्जर

बुन्देलखण्ड अंचल के ग्रामों–कस्बों का एक अपना लम्बा इतिहास है। इनके सम्बंध में जनश्रुतियाँ व मान्यताएं प्रचलित है जो इनकी विशेषताओं को प्रकट करती हैं। यहां पर कुछ स्थानों की विशेषतजाएँ दी जा रही हैं –

भद्रावती –इत चम्बल उत बेतवा, इत नर्मदा उत टौंस।
छत्रसाल सैं लरन की, रही न काहू हौंस।।

इस दोहे के गर्भ में प्रागैतिहासिक काल या अर्वाचीन काल की एक नगरी है। उस नगरी को पूर्व में भद्रावती आज भाण्डेर के नाम से जानी जाती है। पहाड़ियों की श्रृंखला में भाण्डेर की पहाड़ियों का उल्लेख भूगोल और इतिहास में विद्यमान है। यह नगरी पहुज नदी के पश्चिमी तट पर बसी हुई है। मेरे काकाजू दिमान मैहरवान सिंह ने मुझे बताया था और काशीप्रसाद जयसवाल की पुस्तक बुन्देलखण्ड दुर्ग में भी उल्लेख है कि कालपी और भाण्डेर सम्पूर्ण रूप से गुर्जर साम्राज्य समथर के हिस्से थे। एक व्यवस्था के कारण भाण्डेर ग्वालियर साम्राज्य को दे दी गई थी और ग्वालियर क्षेत्र के घास के मैदान समथर राज्य ने ले लिये थे। भाण्डेर सन् १८९८ तक ग्वालियर जिले का अनुविभाग रहा अब दतिया जिले में है। यह दतिया समथर मार्ग पर दतिया से तीस किलोमीटर और समथर से तीस किलोमीटर दूरी पर है। झांसी–लहार मार्ग पर यह झांसी से पचास किलोमीटर और लहार से भी लगभग पचास किलोमीटर है। भाण्डेर गल्ला की अच्छी मण्डियों में गिनी जाती है।

इतिहास विद्व जानते हैं हमारी लोक संस्कृति में भी नाग संस्कृति आत्मा के रूप में रची–बसी है। ग्वालियर जिले के अनुविभाग डबरा (उभौरा) से दक्षिण में बारह किलोमीटर के आसपास काली सिन्ध नदी के तट पर पवाँया नामक स्थान पर नागवंशियों की राजधानी थी। शिव को कन्धे पर लेके चलने के कारण ये नागवंशी भारशेव भी कहलाये। पवाँया से भाण्डेर नब्बे और एक सौ किलोमीटर की परिधि में है। इन भारशिवों के राज्य के कारण उस स्थान का नाम भाण्डेर कहलाया या भद्रावती।

यह क्षेत्र सघन वन का क्षेत्र था। पहूज नदी में गन्धक पाया जाता था इससे फोड़ा फुन्सी ठीक हो जाते थे। सर में फोड़ों के कारण मुण्डन (छौर कर्म) भी करा लेते थे। धीरे–धीरे यह स्थान तीर्थ के रूप में विकसित हो गया इसलिये भी उसे भद्रावती कहा गया।

भगवान कृष्ण की कन्या का नाम भी भद्रावती था कदाचित उनका कोई सम्बन्ध यहां से रहा हो वैसे बृजभूमि भाण्डेर की सीमा से मिलती थी। फलित ज्योतिष से एक नक्षत्र का नाम भद्रावती है हो सकता है इसके कोई ज्योतिषाचार्य यहां रहते हों।

यहाँ सघन वन था। उसमें समी (छैकुर) के वृक्षों का बाहुल्य था। समी को भी भद्रावती कहते हैं। यह भी एक कारण इसके नाम का हो सकता है। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर हाथी पाये जाते थे। इस स्थान पर भद्र जाति का हाथी पाया जाता था। इस कारण भी इसका नाम भद्रावती था। हाथी भद्रावती के साथ साथ शिवपुरी चन्देरी, विदिशा, पन्ना और ऐरछ में भी हाथी पाये जाते थे।

भाण्डेर – साहित्यिक दृष्टि से और लोक श्रुति के आधार पर इस नगर के परिवेश में वट वृक्ष भी बहुल रूप में पाये जाते थे। वट वृक्ष को भी भाण्डीर कहते हैं। भाण्डेर नाम होने का कारण प्रतीत होता है। जनश्रुति है कि यहाँ भाण्डीर मतावलम्बी लोग रहते थे। वे मिट्टी के पके भाण्डों में रहते थे। भाण्ड मिट्टी के बर्तनों में से एक बड़ा बर्तन था जो डहर से दौगुना बड़ा होता था। क्वचित आज का स्लीपिंग बैग! उन भाण्डीर लोगों के कारण इस नगरी का नाम भद्रावती से भाण्डेर हो गया।

भिटारी – यह ग्राम पंचायत है। भाण्डेर से लगभग पच्चीस किलोमीटर इन्दरगढ़ मार्ग पर है। अकबर की फौजों का डेरा यहाँ था। बड़ी बड़ी भाटियायें यहाँ खोदी गई थी। उन पर सेना का भोजन बनता था। भटिया पर भोजन बनाने के कारण भोजन बनाने वाले पुरुष भटियारे और नारियां भटयारिन के नाम से जानी गई। इसके बाद के समय में ये भटयारे सराँय चलाते पाये जाते हैं। समथर में मेरे होश तक सन् १९४७ तक सरांय थी। इसे भटियार और भटियारिनी बोलते थे।

तालगांव खसिया – ग्राम पंचायत भिटारी से तालगाँव उत्तर पश्चिम में पन्द्रह–सोलह किलोमीटर के आसपास है। इस गाँव को खसियन का तालगांव कहते हैं। उस गांव में खसिया (हिजड़े) रहते थे। ये हिजड़े भी सोलहवीं शताब्दी के आसपास अस्तित्व में आये। श्रीमती सुशीला देवी ग्राम बरका और रामसिंह सिरौनिया पूर्व सरपंच सालौन ने भी पुष्टि की थी कि तालगांव के हिजड़ों का रुतबा दिल्ली सम्राट के जमामखाने तक था।

ठगों का रुआ – ग्राम पंचायत सालौन के बीस किलोमीटर और इन्दरगढ़ से सालौन की ओर को पांच किलोमीटर पर स्थिति है। यहाँ ठगी का कार्य करने वाले शातिर ठग निवास करते थे। आंखों का काजल भी चुराने की युक्ति यहां चरितार्थ होती थी। यहां के ठक चैन्नई और मुम्बई तक अपना क्षेत्र मानते थें। वैसे समूचे हिन्दुस्तान में विख्यात हैं। अब इस ग्राम का नाम रुआ जीवन हो गया है। ये सभी दतिया जिले के ग्राम हैं।

श्योपुर – यह नगर अभी हाल क्वाचित १९९८ तक मुरैना जिले का अनुविभाग था। अब जिले के गौरव से गौरवान्वित है। मैं यहां रहा हूँ। इस नगर के पास में नदी बहती है इसका पुल लाखा बंजारा गुर्जर ने बनवाया था। यह पुल श्योपुर को कोटा

(राजस्थान) से जोड़ता है। इस नगर को भट्टियों का नगर कहा जाता था। वे भट्टियां आदमियों के कलेजे खा लेती थी ऐसी किवदन्ती लोक जीवन में द्वार–द्वार तक प्रचलित है किस्से कहानियों में है। जो भी हो मगर हां मैंने नदी में स्नान का दृश्य १९८० के पश्चात् अपनी आंखों से देखा है। नदी पर घाट बना है। पुरुष नारी स्नान करते हैं। रहते अलग–अलग हो लेकिन कन्या युवा, प्रौढ़ा और वृद्ध सभी के तन नग्न होते थे, बदन पर मात्र एक तौलिया पुरुषों की भांति लपेट कर स्नान करती। बीस–पच्चीस वर्ष हो गये हैं। मेरे विचार से आज भी वहां कुछ न कुछ शेष दृष्टव्य हो सकता है।

रूसिया और रावण – दोनों नाम पुरुषों के नहीं हैं, बल्कि विदिशा जिले के ग्राम हैं। रूसिया ग्राम के लोग कहते हैं हमारे पूर्वज रूस देश से आये थे इसलिये ग्राम का नाम रूसिया रख लिया। अहीरों में रूसिया गोत्र पाया जाता है। वहीं गहोई वैश्य समाज में भी रूसिया गोत्र के वैश्य विद्यमान है।

रावण ग्राम में रावण की विशाल मूर्ति लेटी हुई है। लोगों का कहना है कि रावण यहां आया था कुछ दिन रहा भी। उसी ने इस गांव को बसाया था। यहां के लोग भगवान की पूजा कम और रावण की अधिक करते हैं।

नरवर चढ़ै न बेड़नी, बूंदी छपै न छींट।
गुदनैठा भोजन नहीं, ऐरछ पकै न ईंट।।

ऐरछ – झांसी जिले का अति प्राचीन नगर है। इसे हिरनाकश्यप की राजधानी के नाम से भी जानते हैं। यहां हाथी भी होते थे। लेकिन यहां के जोगी आज भी चेन्नइ, मुम्बई तथा सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में मशहूर हैं। यहां के जोगी हाथियों के साथ भ्रमण करते हैं और मन्दिरों पर महन्त हैं। खूब सम्पन्न भी। इनसे कोइ पता पूंछे तो ये बतलाते हैं –

ऐरछ नगरी करील खेरा, यहां रहे सन्तों का डेरा

जिस नगरी की गउऐ पुन्छ की तरफ से पानी पीती है। पुंछ एक नगर है। पूंछ और ऐरछ के बीच बेतवा नदी बहती है। नदी के पूर्वी तट पर ऐरछ है और पश्चिमी तट पर पूंछ। जोगी झूठ भी नहीं बोले और आश्चर्य भी उत्पन्न कर दिया।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड सृष्टि की सम्पूर्ण अच्छाइयों और बुराइयों से परिपूर्ण है। यहां की संस्कृति में न जाने क्या क्या छिपा है? खोज की अति आवश्यकता है ताकि प्रमाणिकता प्राप्त हो सके।

– रघुवंश नगर, भाण्डेर मार्ग
दतिया (म.प्र.)

प्रेरक प्रसंग "मधुकर शाही तिलक"

–डॉ० वन्दना जैन

ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह का जन्म ओरछा में वि०सं० १६०० के लगभग हुआ था। उन्हें वि.सं. १६२१ में ओरछा का राजसिंहासन प्राप्त हुआ था और उन्होंने वि०सं० १६५९ तक ओरछा का राज्य किया। वे बड़े ही भक्त और साहसी राजा थे। आपके सम्बन्ध की अनेकानेक किंवदन्तियां बुन्देलखण्ड के गंव–गांव में प्रचलित हैं। आप कृष्णोपासक और व्यास जी के शिष्य थे। आपकी रानी गणेशदेवी रामोपासिका थी। अयोध्या से वे ही श्रीरामचन्द्र जी की मूर्ति लाई थी। उन्हीं के आग्रह से ओरछे में विशाल मंदिर बनवाए गये थे, जो कि अब भी विद्यमान हैं। भगवान राम के मंदिर और राम की मूर्ति के सम्बन्ध में अनेकानेक जन–श्रुतियां हैं और उनसे महारानी साहिबा की धर्मपरायणता और भक्ति का सजीव वर्णन मिलता है।

महाराज मधुकरशाह तो अपने धर्म और उपासना में इतने दृढ़ थे कि कठिन से कठिन अवसर आने पर भी वे उपासना और ध्यान नहीं छोड़ते थे। कहा जाता है कि बादशाह अकबर के दरबार में एक बार महाराज मधुकरशाह आगरा गये थे। भारतवर्ष के प्रमुख राजे–महाराजे उसमें सम्मिलित हुए थे। अकबर बादशाह ने एक दिन यह घोषणा कि कि उनके दरबार में तिलक लगाकर कोई न आया करे। दूसरे दिन और सब राजे–महराजे तो बिना तिलक लगाये ही दरबार में गये, किन्तु महाराज मधुकर शाह तिलक लगाकर ही दरबार में पहुंचे पहले तो बादशाह अकबर आप पर बहुत ही कुपित हुए, किन्तु आपकी स्पष्टवादिता और धर्म–दृढ़ता पर प्रसन्न हो, आपकी प्रशंसा करने लगे। कहने लगे कि सचमुच ही इस दरबार में सच्चे तिलकधारी (टिकैत) आप ही हैं। अतः आज से यह तिलक "मधुकरशाही तिलक" के नाम से विख्यात होगा। मैंने तो केवल साहस की परीक्षा की थी। मुझे इसमें बिल्कुल आपत्ति नहीं कि कोई तिलक लगाकर दरबार में आवे इत्यादि इस विषय में एक कवित्त भी प्रचलित है –

हुकुम दियो है बादशाह ने महिपन को,
राजा, राव, राना, सो प्रमान लेखियतु है।
चंदन चढ़ायो कहूं देव–पद वंदन की,
देहो सिर दाग जहां रेखा रेखियतु है।।
सूनो कर गए भाल, छोर–छोर कंठमाल,
दूसरों दिनेस और कौन देखियतु है।
सोहत 'टिकैत मधुसाह' अनियारों इमि,
नागन के बीच मनियारों पेखियतु है।।

– ए/५, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगर मालवा, जिला शाजापुर(म.प्र.)

आँधी

– डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

रामलखन जब कक्षा सें निकरो, तब ऊनें विचारो कै जो तो ओई सिक्षा आय, जीखों मैकाले नें कई ती कै ई तराँ की सिक्षा से ई देश कौ पढ़बे वारो खून सें अंग्रेज रैहै उर ई देह सें भारत कौ। ऊनें तै करो कै बौ अँगरेज न बनहै, चायँ पढ़ाई छोड़नें परै। ईसें ऊनें स्कूल जाबो छोड़ दओ।

पिता नें पूछी – रामलखन, स्कूल जाबो उर पढ़बो काये छोड़ दओ?

रामलखन – मोखों अँगरेज नईं बननें। मैकाले ने कईती कै ई तराँ की सिच्छा सें पढ़बेवारो खून सें अँगरेज बनहै उर बाहर सें ई देश कौ।

पिता नें कओ – अब का करहौ?

रामलखन – अपनी खेती, जो नौकरन – चाकरन के भरोसें डरी रात।

पिता – बेटा, पढ़–लिखकें करते, तो कछू अंतर दिखातो। हर युवक कम सें कम बी.ए. तक पढ़कें रोजगार में लगो चाइये।

रामलखन – अँगरेज बने सें तो बच जैहों, भारत कौ बनो रैहों।

रामलखन नें खेती सँवारी, तौ पैदावार बढ़ गई उर ऊके बेंचबे सें जौन फायदा भओ, सो ऊसें ऊनें स्कूल के लानें अपने मन की इमारत बनवाबो सुरू कर दओ। तीन–चार कमरा बन गये, पै उनके सामूँ बरामदा नई बन पाओ उर ना प्राचार्य कौ कमरा। ऐसई दूसरी साल तीन–चार कमरा बने उर प्राचार्य कौ कमरा सोऊ बन गओ, तीसरी साल बरामदा उर प्राचार्य के रहबे कौ घर बन गये। तीन साल में काफी बड़ी इमारत खड़ी हो गई। चौथी साल लड़कन–बिटियन के बैठबे के लानें फट्टियाँ उर अध्यापकन खों मेज़–कुर्सी खरीद लई गईं। खेती कौ विषय अनिवार्य कर दओ गओ। ऊके समझबे खों गाँव के दो खेत बारी–बारी सें हर किसान के जिम्मे हो गये। ई तराँ खेतीखों केन्द्र में रखकें पढ़ाबे की योजना बनी। विषय ते पशु–पालन, बाजार कौ अर्थशास्त्र उर कृषि तथा हिन्दी।

कछू लोग अंग्रेजी विषय के पक्ष में हते, पै रामलखन नें ऊखों मंजूर नईं करो, ऊनें कई – हमाई राष्ट्रभाषा हिन्दी आय, सो ऊकौ पढ़बो तो उचित लगत, पै अंग्रेजी की का जरूरत? हमखों अंग्रेजी संस्कृति अपनें गांव में नईं लाउनें। बे पिता जू खों डैड कात उर मताई खों मम्मी। उनकी संस्कृति में मरजाद उर लिहाज नइयाँ। बेशर्मी उर आजादी सीमाखों तोड़कें तक रई हैं।

गाँव वारे एक – लेकिन भैया अंग्रेजी सें तो काम परत रात। कायें सें कै सरकारी कागज तो अंग्रेजी में अउत। दूरदर्शन में सबई मंत्री अंग्रेजी में बोलत उर अंग्रेज़ी सें पढ़ो–लिखे की पैचान होत। ईसें अंग्रेजी कौ महत्व हमायी समाज में आज लौं है।

गाँववारे दो – अंग्रेजी की क्लास लगें चाइये बड़े लरकन की, जो इण्टर में पढ़त। या फिर बी.ए. के लरकन खों अनिवार्य कर देव।

रामलखन – जो अपुन नें ठीक कई। बड़े होयसें बे लरका ऊके यानी अंग्रेजी के प्रभाव में नई गँसत। लेकिन कछू फैसन सो है कै अंग्रेजी पढ़ो–लिखो तनक ज्यादा विद्वान लगत। ऊमें बोलबौ की ताकत कछू ज्यादा आ जात।

गाँववारे दो–पै अंग्रेजी संस्कृति छूत की बीमारी जैसी फैलत।

रामलखन – दूसरन की नकल करबो हमखों अच्छो लगत। अपनो मठा सबखों पतरो लगत उर दूसरे की पतरी कौ बरा बड़ौ दिखात। अपनी संस्कृति सें हम बरसन सें जिआ रये, सो ऊसें अघा गये। ऐई सें डैडी उर मम्मी सब जगाँ फैल गये। उन्नें दादा उर माता जी खों घरसें बाहर कर दओ। कछू अंग्रेजी के सब्द सीखकें हम दूसरन पै रुतबा मारबे की आदत सें लाचार हैं।

गाँववारे एक – भैया, एई सें अपुन नें पढ़बो छोड़ोतो।

रामलखन – मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि हते अपनेई बुन्देलखण्ड के, जिन्ने लिखोते कै –

सिक्षे, तुमारा नास हो, तुम नौकरी के हित बनी।
हतभागिनी जीती रहो रक्षक तुमारे हैं धनी।।

ऐसो तो कै अंग्रेजी पढ़े–लिखे अपनो उद्यम भूलत जात उर नौकरी तलासत फिरत। अंग्रेज नें एई के लानें अंग्रेजी सुरू करीती कै अंग्रेजी पढ़कें अपनो उद्योग भूलन लगहैं। उन्नें बंगाल में रेसमी कपड़ा बुननवारन के हाँत कटवा दये ते। जीसें इंग्लैण्ड कौ कपड़ा कौ जौ देस बाजार बन जाय।

गाँववारे दो – महात्मा गान्धी ने जेई सें विदेसी कपड़न की होरी जलवाई ती उर स्वदेसी कौ गीत गबवाओतो–

- हुकुम गान्धी कौ निभाओ प्यारी बन्नी
  मोरी बन्नी पैरो स्वदेसी साड़ियाँ
  बिदेसी को अगिनि में जराओ प्यारी बन्नी।।
- गान्धी जी महाराज महत्मा, मोरो बनरा मोह लियो।
  मोह लियो भरमाइ लियो, खादी सें सजवाय दियो।
  हाँत तिरंगा झंडा दे दे, सत्याग्रह करवाय दियो।।

रामलखन – बौ समय तो संघर्ष कौ हतो, उर ऊ समै संघर्ष के गीत खूब गाये गये –

कित्तन कै घरबार बिक गये, कित्तन खाई गोलीं।
कित्तै हँस हँस झूला झूलै, फाँसी के झूलनवा।
मैया तोरे कारन हो, बापू तोरे कारन हो।।

गाँववारे दो – अंगरेजन में ई संघर्ष में बड़े जुलुम करे। उन्नें औरतन के सिर काटे –

बाँदा लुटो रात कें गुइयाँ।
सीला देबी लड़ी दौर कें, संग में सौक मिहिरियाँ।
अंगरेजन नें करी लराई, मारे लोग लुगइयाँ।
सीला देबी कौ सिर काटो, अंगरेजन नें गुइयाँ।
भगी सहेलीं सब गाँडन सें, लैकें बाल मुनइयाँ।
'गंगासिंह' टेर कैं रै गये, भगो इतै ना नइयाँ।।

रामलखन — अँगरेजन नें दमन करबै में गजब कर दओ। सिरों में चूना बुझवाना, हाँत—पैरन में कीलें ठोकना, उर गाँडन खों जला देना कितने जुलुम गिनांव।

एक लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ सुनें —

चूना मूँड़न पै बुझवा दये।
हाँत—पाँव में कीला ठोंके, पाछे सें संदवा दये।
जार दओ है बिला बिलखुरा, लूटो जन भगवा दये।
'खान फकीरे' काँलों कइये, ऐसे हाल करा दये।।

गाँववारे दो — अंगरेजन नें सारी नीति कों छल—कपट उर प्रलोभन में बदल दओ तो पहली आजादी की लड़ाई बुन्देलखण्ड में १८४१—४२ ई. में सुरू हो गई ती। 'पारीछत कौ कटक' गवा है कै जैतपुर के दीवान खों उर तोपन के गोलंदाज खों सोने कौ गानो दैकें मिला लओतो। जीसें पारीछत की जीत हार में बदल गई ती। 'लाला दिमान आन मिला उनका अंगी' सें कायस्थ दीवान कौ अंग्रेजों सें मिल जाबो स्पष्ट लगत उर 'देती न दगा तोपें तो भौ भारथ परतो' से जाहिर है कै दीवान के संगै गोलंदाज सोऊ हतो। ऐईं तराँ अंगरेजन की कूटनीति सोऊ चलतती।

रामलखन — झाँसी के किले के युद्ध में दूलादेव खों रानी की तरफ सें फोड़कें ह्यूरोज में प्रलोभन दैकें अपनी तरफ मिला लओतो उर दूलादेव नें अंगरेजन के चढ़बे के लानें किले कौ फाटक खोल दओ तो। एईसें भग्गी दाऊ जू 'श्याम' दूलादेव कौ पुतरा अपने बाँससे लटकाएँ राततें।

गाँववारे एक — जो तो बताओ भैया, ई स्कूल खोलबे में इतनो व्यय उर परीश्रम काये लगाओ?

रामलखन — नगरन के स्कूलन की पढ़ाई नौकरी—चाकरी के लानें होत। तुमनें एक अंग्रेज मैकाले कौ नाउँ सुनो हुहै। ऊनें जो पढ़ाई अंगरेजन की संस्कृति की नकल के लाने बनाईती। बौ काततो कै ई सिक्षा सें पढ़बेवारो खून सें अंग्रेज हूहै। सो मैंने ऊ ढंग की पढ़ाई छोड़ कैं खेती करबो अच्छो समझो। मोरे खेती करे सें उपज ज्यादा भई, सो ऊखों बेंचकें स्कूल की जा इमारत खड़ी करी उर ऊकी पढ़ाई में खेती खों केन्द्र में रखकें जौन विषय हम किसानन के लानें सीखबो जरूरी है, बेई विषय इतै पढ़ाये जात, जिनसें गाँव कौ भलो होत उर आदमी अंग्रेज नईं बनत।

गाँववारे दो — भैया, अपुन नें जो गाँव को बड़ो उपकार करो उर विचारन में सोऊ सत्याग्रह — सौ कर दओ।

गाँववारे एक — अपुन नें तो अपने विचार कौ साकार रूप धर दओ उर जैसो गान्धी जू करतते, बैसई अभ्यास करकें बता दओ। मोरी समझ में ऐसो विद्यालय हर गाँव में भओ चाइये उर ऐसो विचार गाँव—गाँव में फैलें चाइये।

गाँववारे दो — मैं तो जो सोचत कै भैया कौ जो सिक्षा कौ रूप गाँडन—गाँडन में फैलत रहै।

रामलखन — फैलै खों तो विचार कौ जेई रूप आय। विद्यालय तो ऊकौ मूर्त रूप आय। विचार तो आँधी की तरह गूँजत उर फैलत, ऊकी भाषा समझ में आबौ जरूरी है।

गाँववारे एक — भैया, विचार की आँधी अब ना थमहै, उर बौ सबखों बहा लै जैहै।

गाँववारे दो — आँधी तो चलन लगी है, अब हम सोऊ चकित हैं।

रामलखन — जै हो ऊ विचार की कै हमें अबै हथियारन सें नहीं लड़नें, पै विचार के निरनै कौ स्वागत करने है सबकोऊ खों।

(यह कहानी डॉ.गुप्त के पुत्र प्रवीण गुप्त के सौजन्य से प्राप्त)

— मंगलम्, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर

बुन्देली माटी

— डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

आग और पानी वाली बुन्देलखण्ड की माटी है
अपने सें दूने की गर्दन सदा समर में काटी है
सब की विपदा काटन बारे पै जब विपदा है आई
सरन लई बुन्देलखण्ड की राम लखन सीता माई
चित्रकूट रह बारह बरसें बढ़े अगारी रघुराई
पंचबटी सें सीता हर गई ढूँढ़त फिरे दोई भाई
ठनी लड़ाई लंकापत सें जोधन की परपाटी है,
अपने से.............।।

विन्ध्याचल सौ सबल संतरी करत रात दिन रखवाली
आल्हा ऊदल सें दिल्लीपत हारत रहे सदा पाली
गोरन कौ मों कारौ कर गई ती रानी झाँसी वाली
बुन्देली माटी की घाटी, घाटी हल्दी घाटी है
अपने से.............।।

छत्रसाल के छत्रीपन की गूँजत गरज सिंहवाली
बात राखबे विष पी गए हरदौल बुँदेला बलसाली
तानसेन की तान तैरती तरन तरन तारन वाली
खजुराहे की कला सबई सें अलग सुघर साँचे ढाली
भेदभाव और मनमुटाव की खाई हमने पाटी है।
अपने से...............।।

काँ लो तुमें सुनाएँ ऐसी जानें कितनीं बातें हैं
सोने वाले दिन हैं जाके चाँदी वाली रातें हैं।
बगरौ रहत बसंत बराबर नेहा की बरसातें हैं
भले काम करबे बारन की जन्मीं इतै जमातें हैं
सीधी सीख 'शिवाजी' सीखी चढ़ी न उल्टी पाटी है
अपने से................।।

— नारायणपुरा,
गुरसरांय (झांसी) उ.प्र.

बसंत

— डॉ० अवध किशोर जड़िया

बागन में विलसंत लसंत पलाशन मौरन में मधुमंत है।
भौरन भीर कों है भ्रमवंत और कोकिल के कल में किलकंत है।
चंद्रिका में चमकन्त औ चंद्र की हेरन में हुलसंत हसंत है।
पौन रसंत सुधा सरसंत विभा बरसंत अनंत बसंत है।

पीरे पलाशन में पुलकंत औ छ्योलन में छवि कौ छलकंत है।
मंजु मधूक के फूलन में मलयानिल की मधुता महकंत है।
राजत राजरसाल रसा रमनीय पै जो रस राशि रसंत है।
गंध गुलाब की है गमकंत भयो प्रसरंत महंत नसंत है।

नायिका पर बसंतारोपण —

गंध बसंती समीर की कैंधो, ये सुन्दरी की शुचिश्वास की है।
ये पियराई फटी सी परै, यह फूलन पीरे पलाश की है।
आन लगे है नये दल पैदल ये गति कोरी हुलास की है।
सुंदरी की शुचि देह पै मानों अवाई भले मधुमान की है।

मानिनी के मुख की छवि कैंधो ये मंजरी मंजु रसाल की है।
कामिनी कंठ की है ये कला कै कला पिक के स्वर जाल की है।
पीरी प्रभा है पलाश प्रसून की कै छवि माल—प्रवाल की है।
ये मधुता है मधूक की कैधौं अवाई महामहिपाल की है।

होंठ खुले हुये हैं खिलके किधौं दाड़िम ये दरकाने लगे।
ये दृग पूतरीं है या सरोज पै भृंग भले से भुलाने लगे।
गोल अमोल कपोल पै ये गुंल गुच्छ गुलाब के गाने लगे।
माधव के ही बहाने सबै अँग अँग पै प्रेम बहाने लगे।

जब या तन पै ऋतुराज रमे, मन श्याम इतै विहरौ चहै जू।
गुल गोल गुलाबन की गरिमा गुण गोविन्द ज्ञानी गहो चहै जू।
कर कंजन की वरमाल मृणाल समेत गरे पहिरो चहै जू।
हरि हार गये मन माधव पै, मन माधव कौ हू हरो चहै जू।

वधू —शिषिरा, वर—वसंत —

आमन के मन फूले फिरै मुख बौरै सुबौरै दिखान लगे हैं।
द्रखतन के तन आज पुरातन पातन सों विलगान लगे हैं।
मूक नहीं पिक कूक की हूँक बसंती बयार बसान लगे हैं।
शर्द की साँची हू लाश जलायिवे तेज पलाश दिखान लगे हैं।

आवत है ऋतुभूप धरा के सरूप अनूप दिखान लगे हैं।
पा प्रिय रे तरुगात भये पियरे हियरे हरषान लगे हैं।
भौरन की लगै तान मनो अभिनन्दन गान सुनान लगे हैं।
लाल प्रवाल की माल लिये यह तेज पलाश दिखान लगे हैं।

बागन बीच बसंत बस्यो वर बौरन लागीं सबै अमरईया।
खास हुलास भरें हिय में हँसि फूलन लागीं सबै छ्योलईया।
पातन कौ लग्यो पातन हौन तरुन में आन लगीं अवलईया।
साज नये दल नाज़ लिये अब आज भये ऋतुराज अवईया।

वियोगिनी का बसंत —

अंत गये जाके कंत इकंत में देत बसंत अनंत कलेशू।
माधवी बात बहात है बैरिन ठीक ठिकाने पै ठोकत टेशू।
कूकत कोकिल हू विपरीत रसाल हू देत नहीं उपदेशू।
धीर नहीं मन में बन में लिये कामकमान कृसानु से टेशू।

वासंती घनाक्षरी —

आई ऋतु माधवी सुहाई मंजुलाई नव्य,
चारु कोडिला हू कोकिलाई करने लगी।
पुंजन प्रसून पै प्रकट पियराई आई,
पवन प्रवीण पहुनाई करने लगी।
रसिक रसालन सो रिसन लग्यो है रस
भौंरन की भीर चतुराई करने लगी।
ऊपर सों मोरन की कूक अनियारी वसुधा
की सम्पदा सही सवाई करने लगी।

कुंजन में कूंजने लगी है कीर की लकीर,
कारी कोकिला हू कलाकारी करने लगी।
वन के दुकूलन पै फूल हैं गुलाबन के,
पौन पै सुगंधि हू सवारी करने लगी।
बसन भये है पीत बसन लगे बसंत,
ऋतु नये दल की तैयारी करने लगी।
आँमन के दामन में आवन लग्यो है रस,
मौरन की खनक खुमारी करने लगी।

त्रिभंगी बसंत —

आयो बसंत रसनिधि रसंत व्यापत अनंत बिनु कंत सखी।

नव नवल पत्र नव भरें इत्र, विखरान लगे आमन आँमन।
मौरन की मोहरन कों भरकें, कै दामन से भरकें दाँमन।
उत धनी घनी भईं अमरइयाँ इत धनी नहीं भेजे धांवन।
मैं कहाँ जाऊँ गावन लागे देखो रसाल गाँवन गाँवन।।

वृंदावन दावन लग्यो गरौ कानन में वेणु वजंत सखी।
आयो बसंत रसनिधि रसंत व्यापत अनंत बिनु कंत सखी।।

फूले गुलाब गुल बेहिसाब भरि के शबाब कलियाँ फूलीं।
क्या खूब आब है लाजबाव लतिका लजवंतीं अनुकूलीं।
अपने ही ख्याब में बनि नबाव भृंगावलियाँ भ्रम में भूलीं।
जैसे मधुऋतु की शुचि शराब में अग जग की गलियाँ झूलीं।

छू लीं सीमाएं अंतस की अंतस कौ राजा अंत सखी।
आयो बसंत रसनिधि रसंत व्यापत अनंत बिनु कंत सखी।।

— प्रा. स्वास्थ्य केन्द्र, ललपुर
जिला छतरपुर

बुन्देलखण्ड के अज्ञात कलम के सिपाही कविवर देवीदयाल गुप्त

– डॉ. शंकर लाल शुक्ल

बात १७–११–१९४७ की है। स्वनाम धन्य साहित्यकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी उन दिनों टीकमगढ़ के कुण्डेश्वर पर रहकर 'मधुकर' मासिक का सम्पादन कर रहे थे। समथर स्टेट के भूतपूर्व सूबेदार, स्वतंत्रता सेनानी श्री नारायण सिंह परिहार का पत्र मिला – "क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ, फिर भी लिखने का दुस्साहस कर रहा हूँ और वह यों कि आपके पास से आकर श्री देवीदयाल जी घर पहुँचते ही निमोनियाँ से पीड़ित हो गये। मुझे उनके आने तथा बीमार होने का एक चलता हुआ संदेश मिला। फौरन जाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि हालत पिछले नौं दिनों से खराब है। फिर भी चेष्टा की किन्तु बेकार हुई और गत बुधवार को स्वर्गवासी हो गये।

पुनश्च: कविराज की शैया पर सिरहाने एक कविता धरी मिली। बीमारी की हालत में कब लिखी थी – कह नहीं सकता। किन्तु आत्मिक अभिलाषा स्पष्ट है अतएव सेवा में प्रस्तुत कर प्रार्थी हूँ कि आत्मिक शांति हेतु इच्छा पूर्ण करनी ही चाहिए। भले ही हिन्दी जगत न अपनाये, पर मित्र जगत तो अपनायेगा ही। वह कविता यह थी–जैसे अबै लौं कृपा करी दीन पै,

या सें भविष्य में दूनी बतइयो।
जौ अपराध भये मुझ पै इतै,
ताकी हू भूल न चित्त में लइयो।
औगुन कौ हृदयौ तौ कहावत,
आप बड़े, करुणा खों दिखइयो।
आशा मेरी कर दीजियो पूरन,
एक किताब अवश्य छपइयो।

– कहना न होगा कि पं. बनारसीदसास चतुर्वेदी ने एक–एक रुपये तक चन्दा लेकर कवि देवीदयाल गुप्त और उनकी कविताओं के संबंध में १४ पृष्ठों की लघु पुस्तिका, लोक सेवक कोआपरेटिव प्रेस लिमिटेड टीकमगढ़ (विन्ध्य प्रदेश) से छपवाई थी।

कवि देवीदयाल गुप्त ग्राम ढेरी (तत्कालीन समथर स्टेट का एक गाँव) के रहने वाले थे। आजकल यह गाँव जिला झाँसी की मोंठ तहसील ग्राम पूँछ के निकट है। अपना परिचय उन्होंने एक कवित्त में इस प्रकार दिया है –

पुत्र वासुदेव का बुन्देलखण्ड–वासी व्यक्ति,
जन्मभूमि ढेरी ग्राम वैश्य–वंश बोरा हूँ
केवल उपासक सिंहवाहिनी का सदा,
दाहिनी है किंकर पै भक्ति भाव कोरा हूँ।
सुजन समाज में सनेह सरसाता सदा,
किन्तु गर्वशालियों का गर्व–मुख मोरा हूँ।
देवी कवि–कोविद–कृषा का अभिलाषी बड़ा,
कविता–कला का अनभिज्ञ तुक जोरा हूँ।

कविवर देवीदयाल गुप्त नाम–मात्र को ही पढ़े लिखे थे। कविता का वरदान उन्हें भगवान से मिला था। बात–बात में तुक जोड़ देना व कविता बना देना उन्हें खूब आता था। विभिन्न विषयों पर कविता बना बनाकर गाँव के लोगों का खूब मनोरंजन किया करते थे। एक बार एक बाबा बाहर से आकर उन्हीं के घर में रुका। इन्होंने मानवता के नाते उसकी खातिरदारी की। रात में किसी चोर ने उस बाबा का सामान चुरा लिया। गाँव के लोगों ने बाबा के कान भरे और चोरी में कवि का नाम लिखवा दिया। ये जेल चले गये। यह समाचार जब ठा. नारायण सिंह परिहार तक पहुँचा तो उन्होंने महाराज समथर से यह कहकर कि यह कवि बहुत गरीब और सीधा है, यह चोरी कर ही नहीं सकता और वह भी अपने घर ठहरे बाबा की। गाँव के कुछ लोगों ने षड़यंत्रपूर्वक इसको फंसवाया है। महाराज ने सही बात समझकर कवि को मुक्त करवा दिया।

ठा. नारायण सिंह परिहार के पिता का नाम श्री रणदूला सिंह परिहार था। जेल से छूटने के बाद कवि देवीदयाल गुप्त ने कृतज्ञता स्वरूप श्री नारायण सिंह परिहार की प्रशंसा में 'नारायण दशक' नाम से दस छन्द लिखे। एक छन्द देखिये –

जोरदार जनता जगाता जाति जोश जोभ,
सुभट भगादो परतंत्रता कसाले की।
सबक स्वतंत्रता सिखाता सो स्वतंत्र बनो,
खाक में मिलादो शान शाह मतवाले की।
भारत को फूट फूट फूट ने रुलाया बहुत,
चेत जाओ बेगवान जीवन निराले की।
कीरत की वाटिका धरातल पै हरी रहे,
ठाकुर नरानसिंह फतेपुर वाले की।।

यह वह समय था जब देश में स्वाधीनता संग्राम चल रहा था। कवि दयाल ने परतंत्रता के इस यज्ञ में अपनी लेखनी की आहुतियाँ देकर अपने क्षेत्र में स्वाधीनता की अग्नि जलाई थी –

आलस भगादो भूत भय का नशादो अभी,
ध्यान विसरा दो मोह प्रबल निकामी का।
वीरता बतादो पाठ पढ़ादो स्वतंत्र रटें,
भावना भरादो काम करें निज स्वामी का।
पैर को जमा दो शत्रु आसन हिला दो वेग,
जाति में जगादो जोश बाँकी नेकनामी का।
सर्ग खून का दो हाय पिंगला मचादो वीर,
तोड़दो तड़ाक ताड़ बन्धन गुलामी का।

राष्ट्र के सोते नवयुवकों में जोश भरते, उन्हें नींद से जगाते धुर–ग्राम्यांचल में जन्में, पले पुसे और बढ़े कवि देवी दयाल की ये पंक्तियाँ किसी राष्ट्र–कवि से कम नहीं हैं –

देख के भयंकरता सारा जग जाग गया,
हो रहा कुलाहल कराल नहीं जागे तुम।

नींद मोहिनी के गले डाली गलवाही पड़े,
मोहित असीम हुये, प्रेमफन्द पागे तुम।
छीन लिया शासन तुम्हारा अपकीरत ने,
तापर अचेत वीरकर्म में न लागे तुम।
नाहक में जन्म लिया भार मेदिनी के बने,
दूध को लजाया लाल देश के अभागे तुम।

बुन्देलखण्ड के रणबाँकुरों – पूर्वजों के बलिदान का यशगान करते कवि देवीदयाल गुप्त ने भारत माता को संबोधित करके जोश–ओजभरी अनेक कविताओं का सृजन किया था। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

पूर्वजों की बान पाली, पाली नहीं डाली कभी,
शत्रु पाली पूर्व पाली, गौरव घमण्डी हैं।
वीरता की बेदी पर वीर बलिदान हुये,
रण को न पीठ दी है उदित उदण्डीं हैं।
दीन को सताया न, प्रहार किया पीछे पड़े,
धर्म धुरधारी वंश विरद विमण्डी हैं।
धीरज को बांध, बांध तोड़ दे न साहस का,
तेरी बेड़ी तोड़ देंगे ये बुन्देलखण्डी हैं।

बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य का भी उन्होंने अनेक छन्दों में मनोहारी वर्णन किया है। इस छंद को देखिये जिसमें शची भी, बुन्देलखण्ड के सौन्दर्य को देखकर अमरपुरी को भूल जाती है–

द्रुमावली दृश्य दिखलाती अंक बैठी हुई,
पौन साथ करती विहार झुक झूमा लेत।
करती किलोल लोल देखती बसुन्धरा को,
जननी के चरण पखारने को चूमा लेत।
कूक रही कोकिल स्वतंत्रता सिखाती हमें,
पथिक विमोद जाते प्रेम का सुघूमा लेत।
अमरपुरी को भूल जाती ललचाती शची,
देखकें बुन्देलखण्ड देवराज चूमा लेत।

बुन्देलखण्ड के सुदृढ़ किलों, पहाड़ियों पर बने दुर्गों, सिंह द्वारों, नगर के चारों ओर बने परकोटों तथा सुदृढ़ कपटों आदि का वर्णन कवि देवी प्रसाद की रचनाओं की थाती है –

सुदृढ़ बनें है दुर्ग, दुर्गम पहाड़ियों पै,
कोट की मनोज कला चारों ओर झूमी है।
सिंह द्वार उन्नत कपाट लोह कीला लगें,
हस्तियों की खोपड़ी विशाल व्यग्रघूमी है।
हिम्मत हिरानी पटरानी हुई सुभटों की,
देखके विपक्षियों की दृष्टि बनी धूमी है।
हुआ न प्रवेश, हार गये प्राण लेके भगे,
वीरता अलंकृत बुन्देलखण्ड भूमी है।

बुन्देलखण्ड के नर–केहरी किसी के अधीन होकर कभी नहीं रहे। स्वाभिमान, मर्दानगी और वीरता से आप्लावित बुन्देली–बहादुरों ने शत्रु के श्रोणित से माँ के चरण पखारे हैं –

हस्ति से उतार मुण्ड प्राण निरमोही लड़े,
देश भारती के पद लाल मतवाले हैं।
चरण पखार डाले माँ के शत्रु श्रोणित से,
होकर अधीर पड़े नहीं पर पाले हैं।
मान मुच्छ ऐंथते ही रहे रण जीवन में,
हुये परतंत्र नहीं झेलके कशाले हैं।
सुन्दर स्वतंत्रता का विश्व में जगेगा दीप,
विकट बहादुर बुन्देलखण्ड वाले हैं।

कवि देवीदयाल गुप्त खड़ी बोली और बुन्देली दोनों के ही सशक्त हस्ताक्षर हैं। बुन्देली में भी उन्होंने अनेक सुन्दर कवितायें लिखी। उनके ग्राम ढेरी व उसके आसपास गाँवों के अनेक लोगों को आज भी उनकी रचनायें कंठस्थ हैं। 'गइयन की टेर' नामक एक कविता यहाँ उद्धत है। गाय जब तक स्वस्थ रहती है तथा दूध देती है तब तक मालिक उसे खूब खली व चारा खिलाते हैं परन्तु दूध देने वाली उसी गाय को दूध छूट जाने पर उसे भरपेट चारा नहीं देते हैं और अंत में उसे कसाई के हाथों बेच देते हैं। गाय की करुण कथा को कवि ने इस प्रकार ठेठ बुन्देली में वर्णित किया है –

गैया ठांड़ी डांग में भूखी रई रमाय,
चारौ चरवें खों नई, मोये कई न जाय।
हत्यारे मानत नईं रूँद मोल लै लेत,
जोत बखर कें मैंड़ खों मिला खेत में देत।
दिन डूबै आये घरै, दये टटेरे डार,
लई दौनियाँ हाँत में सैंटे लई निकार।
दूध दही जौनों मिलौ तौनों सांचौ लाड़,
आई छुटाने की घरी, दौंचन लागे हाड़।
जौ देही बूढ़ी भई बैठो उठौ न जात,
चार रुपइया में दई बैंच कसाई हांत।
सबरी अँसुआ ढारती, धरैं करम पै हांत,
रे गुलाल तेरे बिगर को सुनहै गौबात।

टकसाली बुन्देली शब्दों का अद्भुत, सशक्त और सटीक प्रयोग कवि देवी दयाल की रचनाओं में अनूठे रूप में देखने को मिलता है। बुन्देलखण्ड में तीज–त्यौहारों, उत्सवों, व पर्वों पर प्रयुक्त होने वाली विशुद्ध ग्राम्य सुलभ शब्दावली जैसी देवी दयाल जी की कविताओं में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

कवि देवी दयाल गुप्त ने बुन्देलखण्ड यहाँ राजाओं, योद्धाओं, नदियों, तीर्थों, महापुरुषों, वीरांगनाओं, स्वाधीनता संग्राम आदि का खूब वर्णन किया है अपनी रचनाओं में। देवी दयाल गुप्त की रची विविध रचनाओं को हम निम्नलिखित प्रभागों में विभाजित कर सकते हैं – १.काव्य रत्नाकर (विविध छन्द), २. दरिद्र पच्चीसी (दरिद्रता पर लिखी रचनायें), ३. पंगु पच्चीसी, ४. लक्ष्मी पच्चीसी, ५. बुन्देलखण्ड, ६. साहित्य प्रसून, ७. विचित्र वीरांगना, ८. नवीन रत्नावली, ९. वीरांगना पद्मिनी, १०. गारी सुमति, ११. सुदामा चरित्र, १२. कवि यात्रा, १३. उदर पचीसी, १४. कृष्ण चीर हरिणम, १५. दुर्गाष्टिक, १६. रसराज, १७. नारायण सिंह दशक।

– भाण्डेर,
जिला दतिया (म.प्र.)

नरहरि कृत अवतार चरित्र की हस्तलिखित प्रति का सामान्य परिचय

— डॉ॰ मोहन लाल गुप्त 'चातक'

बारहट नरहरिदास कृत अवतार चरित्र की हस्तलिखित प्रति बहुत समय से मेरे निजी संग्रह में है। कृति में रचनाकाल आषाढ़ कृष्णा अष्टमी सं. १७३७ विक्रम दिया गया है। ग्रंथ की समाप्ति की पुष्पिका के अनुसार प्रतिलिपि काल सं. १८९८ विक्रम है।

अवतार चरित्र की हस्तलिखित प्रति ३० से.मी. लंबे एवं २१ से.मी. चौड़े आकार के देसी कागज के २९० पत्रों अर्थात् ५८० पृष्ठों में है। उक्त प्रति की लिखित पंक्ति की लंबाई २३ से २४ से.मी. तक है तथा प्रत्येक पृष्ठ में २७ से २९ तक पंक्तियां है। उपलब्ध कृति के पृष्ठ के दोनों ओर लाल मसि से दोहरा हाँसिया खींचने के पश्चात् काली मसि से ग्रंथ लिखा गया है। बायीं ओर वाले पृष्ठ के बायीं ओर हाँसिए के ऊपरी भाग पर अवतार या काण्ड का नाम तथा दायीं ओर के हाँसिए के तीने के भाग में पत्र संख्या लिखी हुई है। ग्रंथ के ऊपर मोटे पुट्ठे की जिल्द पर जरी के फूलयुक्त धारीदार पीले रंग का कपड़ा चढ़ा है।

अवतार चरित्र 'महाकाव्य' की विषय वस्तु विस्तृत है। इस ग्रंथ में बाराह, सनकादिक, कपिलदेव, पृथु, ध्रुव, नृसिंह, वामन, मन्वन्तर, धन्वंतर, परशुराम, रामावतार, कृष्णावतार, बुधावतार एवं कल्की अवतार प्रभृति २४ अवतारों का वर्णन किया गया है, किन्तु कवि का मन रामावतार में अधिक रमा है। सम्पूर्ण ग्रंथ के ५८० पृष्ठों में से ३५८ पृष्ठों में मात्र रामावतार का विभिन्न काण्डों में विस्तृत वर्णन हुआ है। अवतार चरित्र का दूसरा नाम स्वयं कवि ने अवतार गीता भी बतलाया है — 'अवतार—गीता ईश्वरी करि भगति कवि नरहर करी'।

नरहरि दास जी ने राम कथा के सभी मार्मिक प्रसंगों का मनोरम वर्णन किया है यथा स्वयंवर कथा परशुराम संवाद, रामवन गमन पर दशरथ की शोकाकुल दशा, केवट प्रसंग, सवरी प्रसंग, हनुमान—रावण संवाद, अशोक वाटिका में सीता का वियोग वर्णन इत्यादि का बड़ा स्वाभाविक, रोचक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है इसके अतिरिक्त रामाश्वमेध एवं राम के बैकुंठ प्रस्थान की कथा पर भी कवि ने लेखनी चलायी है। कवि ने सबरी प्रसंग एवं हनुमान—रावण संवाद स्मृति कतिपय प्रसंगों का गोस्वामी तुलसीदास की अपेक्षा और अधिक विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया है। सीताहरण के पश्चात् प्रवर्षण गिरि पर निवास के अवसर रामचरित मानस में वर्षा का जो वर्णन है उसमें गोस्वामी जी की उपदेशक प्रवृत्ति अधिक प्रकट हुई है। किन्तु नरहरि कृत उस समय का वर्णन अधिक स्वाभाविक एवं सरस है उसमें प्रकृति का आलंबन तथा उद्दीपन रूप में भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त अवतार चरित्र में कवि ने हनुमान जन्म कथा सीता जन्म कथा, देवासुर संग्राम में रानी केकयी का दशरथ से वरदान प्राप्त करने की कथा, श्रवण मुनि प्रसंग, रावण वाणासुर संग्राम ऐसी अंतर्कथाओं विषयानुसार संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे रामावतार के कथानक में स्पष्टता, रोचकता एवं बोधगम्यता की अभिवृद्धि हुई है।

कविवर नरहरि दास जी ने रामावतार की कथा में सम्पूर्ण रसों का समावेश किया है तथा उनकी अलंकार योजना विषय प्रभावोत्पादक, विभावानुभाव उद्बोधक एवं रस संप्रेषक है। रामावतार ग्रंथ के प्रारम्भ में कवि ने बड़ी तन्मयता से दो छन्दों में भूत—भावन शिव की स्तुति की है उसकी कतिपय पंक्तियां प्रस्तुत हैं —

विषय विनास वेश रहत विषै हीरत,
सूल औ कपाल इहि संपति सहेत है।
देखो धों अभूत भूत भूतनाथ एको पल,
भजै है जो भृत्यनामानि अभ्रत फल देत हैं।

उक्त स्थल पर नरहरि ने शंकर जी के भयानक वेश, विषय विनास एवं मुक्ति प्रदान करने के युग की अनुशंसा करते हुए उनका भक्तिन्मय स्तुति गान किया है, यहां पर भावाभिव्यक्ति के साथ शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों दोनों का बड़ा स्वाभाविक योगदान है विषै (विष और विषय) में श्लेष, अभूत—भूत शब्दों में निरर्थक यमक एवं अनेक स्थलों पर दृश्यवृत एवं श्रुत्य अनुप्रसंगों का भी सुन्दर प्रयोग है साथ ही अंतिम पंक्ति में भृत्यनामानि अमृत फल देत है, वाक्य में विरोधाभास अर्थालंकार काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर रहा है।

— २००, बड़ाबाजार, झांसी उ.प्र.

महारानी लक्ष्मीबाई

— सरोजा रावत

लक्ष्मी जू महारानी, उनकी न कौनऊँ सानी।
वे सन्तान अकेलीं, नाना के संगे खेलीं।
सस्त्रन की सखी सहेली, वे भौतई हतीं सियानी।
मात—पिता की दुलारी, नैन पुतरिया प्यारी।
सब बिटियन सें न्यारी, हतीं वे भौतई ज्ञानी।
भई जब तनक सियानी, बनी झांसी की रानी।
पै विधना ने का ठानी, राजा बिन भई रजधानी।
गोरन ने करी मनमानी, रानी ने हार न मानी।
झुंकतीं कैसे महारानी, वे हतीं बुन्देली पानी।
सेना फिर एक बनाई, गोरन खौं धूल चटाई।
औ श्खूबई भई लड़ाई, वा सब की जानी मानी।
अपनन ने करी गद्दारी, सबरी सेना गई मारी।
भईं वीर गती खौं प्यारी, वे धन्य हतीं कल्याणी।
लक्ष्मी जू महारानी, उनकी न कौनऊँ सानी।।

— श्री हरिहर निकुंज, एफ—७, गीत बंगले फेस—२, दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

पारम्परिक गौरइयाँ, हुर्रइयाँ एवं सुहागलें

— कु. रामकुमारी गुप्ता

बुन्देलखण्ड लोक संस्कृति का गढ़ है। यहाँ कई प्रकार की परम्पराएँ, रीति–रिवाज, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास, पूर्व–उत्सव एवं शादी–व्याह के रीति–रिवाज, उनमें की जाने वाली लोक रीति का अपना अनूठा महत्व है। इन लोक संस्कृति की रक्षा में महिलाओं का विशेष योगदान, है। परिवार, समाज के विकास में नारी की सराहनीय भूमिका रहती है। वे अपनी सन्तान की दीर्घायु की कामना के लिए हरछठ, सन्तान सप्तमी का व्रत/पूजा करती हैं वहीं अपने पति की दीर्घायु एवं सुख समृद्धि के लिए गनगौर, तीजा (हरतालिका) एवं महालक्ष्मी जैसे व्रत रखती हैं।

घर परिवार के सुख सम्पन्नता हेतु व्रत–उपवासों के अतिरिक्त परिवार में मांगलिक अवसरों पर गौरइयाँ, हुर्रइयाँ एवं मनोकामना की पूर्ति, संकटों से मुक्ति हेतु सुहागलें करने की बुन्देलखण्ड में अति प्राचीन परम्परा है। इन आयोजनों में भी देवी–देवताओं की विधिवत पूजा अर्चना करने विशेष रूप से देवी जी की पूजा करने की लौकिक परम्परा है। महिलाओं के इस प्रकार के आयोजनों से महिलाओं के पारस्परिक सम्बन्धों में मृदुता, समरसता एवं सम्मान के साथ ही सामाजिक सम्बन्धों में दृढ़ता बढ़ती है। महिलाओं के इन विभिन्न आयोजनों का विवरण प्रस्तुत है।

गौरइयाँ — लड़के की बारात जाने के दूसरे दिन गौरइयाँ होती हैं। घर की सफाई लिपाई आदि के बाद समाज की सुहागिन महिलाओं को गौरइयाँ के रूप में आमंत्रण दिया जाता है। सभी के आने पर मण्डप के बीचों–बीच दो चौक बनाये जाते हैं, जिनमें मामी, भाभी, बहिन या बुआ दो महिलायें अपना सोलह श्रृंगार, माहुर आदि लगाकर, माली द्वारा लाई गई मोरियाँ माथे पर बांधकर चौक में बैठती हैं। मौन धारण किये हुए दोनों महिलायें छटा–छटो, करती हैं। अन्य महिलाएं चूड़ी बेचने वाली मनहारिन, फरिया (वस्त्र) का जाल बुनने वाले कोरी कोरिन आदि का प्रहसन करने के बाद मण्डप के चारों ओर अन्य आमंत्रित महिलाएं भोजन करने के लिये बैठती हैं। भोजन में समूदी रोटी (कढ़ी, चना की दाल, भात, बरा, भूरा, घी, फुल्का) परोसी जाती है। भोजन परोसने के बाद तांबे के पात्र (गंगासागर) में जल, दूध, थोड़ा घी, एवं शक्कर डालकर चौक में बैठी हुई महिलाओं के आगे से धार शुरूकर मण्डप के चारों ओर बैठी हुई महिलाओं के आगे से धार डालती हुई मैर के घर (कुलदेवता) तक जाती हैं जहां वे पात्र रख कुल देवता को प्रणाम कर मण्डप के नीचे बैठी हुई महिलाओं से भोजन प्रारंभ करने हेतु जय जगन्नाथ कहती हैं। इस प्रकार पंगत शुरू की जाती है। सभी के भोजन के बाद बीच में बैठी हुई दो महिलाएं अपने अपने पति का नाम लेती हुई कहती हैं कि अमुक अपने साले, भानजे भतीजे आदि की बारात में गये हैं वहां से बहू लिवाकर लायंगे वे अपना मौन तोड़ती हैं इस प्रकार विभिन्न प्रकार के हास परिहास करती हुई अपने–अपने घर प्रस्थान कर जाती हैं।

आज की भागम–भाग दुनियाँ में नए प्रचलन के अनुसार कन्या पक्ष वरपक्ष के शहर में आ जाते हैं जिससे शादी ब्याह सुबह ३–४ बजे तक ही निपट कर प्रातः ६–७ बजे तक नववधू भी घर आ जाती है। ऐसी स्थिति में घर में जो नाते रिश्तेदार महिलाएं ही मण्डप के नीचे बैठकर गौरइयों का दस्तूर कर लेती हैं समूदी रोटी के स्थान पर मिठाई का प्रयोग कर लिया जाता है।

हुर्रइयाँ — लड़की की शादी के बाद जब वह ससुराल के मायके आती है तथा लड़का की शादी के पश्चात् बहू के घर आने पर किए जाने वाले सुहागिन महिलाओं के आमंत्रण को 'हुर्रइया' कहा जाता है। क्षेत्रानुसार इन्हें गड़गड़इयाँ, दरजनियाँ भी कहते हैं। हुर्रइयाँ गुरुवार के दिन ही होती हैं। हुर्रइयाँ करने का विचार आते ही आयोजक एक–दो दिन पूर्व देवी जी को चढ़ाने हेतु रोरी, काँच का बूंदा, बिन्दी, मेंहदी, माहुर, बिछिया, काँच की चूड़ी (चढ़ाने के अतिरिक्त सुहागिन महिलाओं को देने के लिए) सुविधानुसार साड़ी बिलाउज का प्रबंध कर बुधवार की शाम को आयोजक परिवार, समाज, पास–पड़ोस की सुहागिन महिला को आमंत्रित करने जाती हैं ताकि वह आमंत्रित महिला गुरुवार की सुबह नहाने के पश्चात् ही चाय दूध पीवें। हुर्रइयों में महिलाओं की संख्या निश्चित होती है इकहरी में आयोजक महिला सहित आठ जिसमें एक ब्राह्मण महिला का होना अनिवार्य रहता है दोहरी में सोलह महिलाओं का होना आवश्यक होता है। एक ओर जहाँ महिलाओं की संख्या निश्चित रहती है वहीं दूसरी ओर खाद्य सामग्री बेसन की (बूंदी के लड्डू, बेसन के लड्डू या बेसन की पूड़ी पपड़िया) हो जिसका वजन सवा पाव प्रत्येक आमंत्रित महिला के लिये अनिवार्य होता है। खाद्य सामग्री के साथ ही प्लेट में भुने हुए छिले चना तथा थोड़ा–थोड़ा गुड़ रखते हैं।

पूजन की विधि — कमरे के बीचों–बीच गोबर से लीपकर उस पर आटे से चौक बनाकर एक धुला हुआ सफेद चादर बिछाकर पोतनी या छुई मिट्टी की छोटी–छोटी पांच डली खाते हैं, इन्हें 'ओसान देवी' का रूप माना जाता है। कलश दीपक, पूजा हेतु हल्दी, चावल, रोरी, फूल, अगरबत्ती, एक बिना लगा हुआ पान, प्रसाद आरती थाली में सजाकर रख लिया जाता है। सभी आमंत्रित महिलाओं के आ जाने पर उनके, पैरों में मेंहन्दी माहुर एवं माथे पर टीका लगाया जाता है। पूजा स्थल के चारों ओर बैठने के क्रम में सात या चौदह महिलाओं में पहले ब्राह्मण महिला, नववधू, अथवा बेटी इसके बाद शेष सभी महिलाएं बैठती हैं। पूजा करने हेतु आयोजक महिला बीच में बैठकर पूजा करती हैं। आयोजक परिवार या कोई अन्य सहयोगी महिला आमंत्रित महिलाओं की गोदी में खाद्य सामग्री की प्लेट रखती हैं सभी मौनधारण कर लेती

हैं। आयोजक महिला ओसान देवी की पूजा प्रारंभ करती हैं। षोड़शोपचार से पूजा के पश्चात् सुहाग सामग्री (रोरी, माहुर, मेंहदी, बिन्दी, चूड़ियां, बिछिया वस्त्र एवं द्रव्य) चढ़ायी जाती है जो बाद में ब्राह्मण महिला को भेंट की जाती हैं। २०–२५ चूड़िया एवं बिन्दी के पत्ते तथा लगे २०–२५ पान भी चढ़ाये जाते हैं कहानी कही जाती है यथा – एक राजा थे उनके कुंवर हुए जो बड़े उत्पाती थे। पुनः रानी गर्भवती हुई, राजा ने कहा कि रानी बेटी होय तो उसे चारपाई के नीचे दबाकर मार डालना रानी ने हाँ कह दिया। नौ–दस माह बाद रानी के बेटी हुई कुंवर के मना करने पर उसे राजा से छुपाया गया। राजा ने कहा कि चिरैया मुनैया हुई हैं। बेटी को महल की छत पर छुपा दिया। कुछ समय बेटी के बड़े हो जाने पर वह छत पर घूम रही थी राजा की नजर छत पर गई राजा ने रानी से पूछा कि छत पर कौन है रानी ने कहा कोई नहीं किसी की छाया होगी राजा नहीं माने वे छत पर गये बेटी को पकड़कर रानी के सामने लाकर खड़ा किया और यह कौन है रानी ने सच कह दिया कि महाराज कन्या का जन्म हुआ था। किन्तु कुंवर के मना करने पर आपसे झूठ कहा गया कि चिरैया मुनैयाँ हुई है। अब तो राजा को गुस्सा आया उन्होंने कहा कुंवर को बुलाओ उस समय कुंवर शिकार खेलने गये थे। राजा ने दरबाजे पर परवाना टांग दिया जिस पर कुंवर को देश निकाला लिखा हुआ था, दो सिपाही खड़े कर दिये उनसे कहा गया कि कुंवर महल में प्रवेश न करके यह परवाना पढ़ें। कुंवर के आ जाने पर सिपाहियों ने परवाना की ओर संकेत किया। कुंवर ने परवाना पढ़ा उन्होंने चिरैयां मुनैयां साथ में ली क्योंकि वे चिरैया मुनैयां से अधिक स्नेह करते थे, चल दिये। बेटी ने सुना कि भाई का देश निकाला हो गया है। उसने कहा कि मेरे कारण भाई जा रहा है मैं भी जाऊँगी वह भी चल दी साथ में। रास्ते के भाई ने बहिन से कहा तुम पेड़ के नीचे खेलों मैं कुछ शिकार करके लाता हूँ। बहिन तुम चिरैया मुनैयां को चुन एवं पानी देती रहना। ये मुरझा न जावें। भाई के जाने के बाद बहिन खेलने में लग गई उसका ध्यान चिड़ियों की तरफ से हट गया वे भूख प्यास से कुम्हला गईं। अब तो बहिन रोई। कन्या का रोना देखकर औसान देवी प्रकट हुईं उन्होंने कन्या से रोने का कारण पूछा। कन्या ने रोने का कारण बताया ओसान देवी ने कहा तुम रोओ मत तुम सवा छटाक, सवा पाव चना, गुड़ की हुरईयाँ बोल दो तुम्हारी चिरैया मुनैयाँ जी (जिन्दा हो) जावेंगी। बेटी ने कहा माँ हम जंगल में चना गुड़ कहाँ से लायेंगे ओसान देवी ने कहा तुम्हें गुरुवार के दिन यहीं पर चना गुड़ मिल जायेंगे। चना भुनाकर हुरईयां कर लेना इतना कहकर ओसान देवी अर्न्तध्यान हो गई। कन्या ने सवा छटाक चना की हुरईयां बोल दीं। चिरैया मुनैयाँ की ओर मुड़कर देखा तो वे फुदक रही हैं। भाई के शिकार से आने के बाद पूरी बात बता दी। अगले दिन गुरुवार था सुबह वहीं पर चना और गुड़ मिल गया भाई चना भुनाने के विचार से आगे बढ़ा कि रास्ते में बारात जा रही थी कुंवर ने कहा भैया हमारे चना भुना दो लोगों ने कहा हमें लड़का का विवाह करना, मुर्हुत निकल जायगा और आगे बढ़ गये। कुंवर ने कहा कोई बात नहीं। कुंवर चल ही रहे थे कि कुछ व्यक्ति मुर्दा लिये आ रहे थे उनसे बोले भैया हमारे चना भुना दो कुछ ने मना किया कुछ व्यक्तियों ने कहा उतारा तो लेना है आगे न लेकर यहीं उतारा ले लो इसके चना भुना दो। उन्होंने उतारा लिया चना भुनने लगे जैसे जैसे चना चिटके वैसे वैसे मुर्दा हिलने लगा पूरे चना भुन जाने पर वह राम राम कहकर उठकर बैठ गया। उधर बारा में दूल्हा मुरझा गया बाराती लौटकर आये कुंवर ने कहा लाओ हम तुम्हारे चना भुना दें तुमने क्या किया हमारा दूल्हा अचेत हो गया है। कुंवर ने कहा हम क्या जाने हमारी ओसान देवी जानें। ओसान देवी प्रकट होती हैं उन्होंने उनसे हुरईयाँ करने को कहा इस प्रकार कहानी पूरी हो जाती है आरती होती है।

आयोजक महिला दाहिने तरफ से ओली लेती हैं अर्थात् आंचल फैलाकर उस पर प्लेट रख लेती हैं जिसमें सात महिलाएं थोड़ा गुड़, कुछ चना एवं लड्डू/बूंदी थोड़ा थोड़ा–उसकी प्लेट में रखती हैं यह प्रक्रिया बैठे बैठे ही होती है अर्थात् आँचल फैलाकर उस पर प्लेट रख लेती हैं जिसमें सात महिलाएँ थोड़ा गुड़, कुछ चना एवं लड्डू/बूंदी थोड़ा थोड़ा उसकी प्लेट में रखती हैं यह प्रक्रिया बैठे बैठे ही होती है अर्थात् ओली लेती वाली महिला प्रत्येक महिला के पास खसक–खसक कर जाती है। पुनः खसक कर अपने यथा स्थान पर वापिस आती है। इस प्रकार दूसरी महिला शेष सात महिलाओं की ओली लेती हैं। भोजन करने के बाद सहयोगी महिला के द्वारा वहीं पर स्वच्छ जल से हाथ धोकर क्रम से खसक–खसक कर महिलाएं आयेंगी पान कर रखी हुई रोरी अपनी साड़ी के आंचल को बांये हाथ की कनिष्का से माथे तथा मांग में लगाती है जिसे सुहाग लेना कहा जाता है। बिन्दी के पत्ता में एक बिन्दी लगाती है हाथ में एक चूड़ी पहनकर रखे हुए पान में से एक पान लेकर ओसान देवी से अपनी माँग का सिन्दूर अमर रहने की कामना से चरण वन्दन कर उपस्थित जेठी बड़ी महिलाओं के पैर छूकर हंसी मनोरंजन के बाद अपने–अपने घर के लिये प्रस्थान करती हैं। घर आकर इच्छानुसार भोजन करती है। हुईयों में पूजा के बाद व्रत रखने नियम नहीं है। आयोजक महिला ओसान देवी को चढ़ाई गई सुहाग सामग्री ब्राह्मण महिला को भेंट कर चरण स्पर्श करती है। घर की अन्य महिलाएं सुहाग लेती हैं चूड़ी पहनती हैं। ओसान देवी को परात से ढक दिया जाता है। शाम किसी कुएं या तालाब/नदी में विसर्जन करने की प्रथा है।

इच्छापूर्ति की सुहागिलें – मनौती मानने के बाद सुहागलें की जाती हैं इसमें संख्या निश्चित नहीं रहती है दिन में सोमवार या शुक्रवार होना आवश्यक है। देवी जी का चित्र रखकर पूजा की जाती है सुहाग सामग्री चढ़ाई जाती है जो ब्राह्मण महिला को दी जाती है। प्रसाद के रूप में सुहागलें (महिलाएं) भोजन के बाद सुहाग लेती हैं चूड़ी, बिन्दी, पान लेकर देवी मैया को प्रणाम करती हैं। इच्छापूर्ति की सुहागलों में भोजन सामग्री में पूड़ी, सब्जी, खीर, रायता, मिठाई, नमकीन, अचार, पापड़, सलाद आदि का प्रयोग किया जाता है।

संकटा की सुहागलें – संकट निवारणार्थ सुहागलें बोली जाती हैं। देवी मैया संकट दूर करती हैं। यह सुहागलें शुक्रवार के दिन की जाती हैं। महिलाओं को संख्या चार, सोलह होती है। इनके अतिरिक्त ओली लेने वाली महिला प्रत्येक चार के बाद अर्थात् पांच महिलाएं इकहरी सुहागलों में, दोहरी में दस, चौहरी में बीस महिलाएं रहती हैं। भोजन सामग्री में मीठी पूड़ी, अरोनी पूड़ी, खीर, हलुआ दूध एवं दही का प्रयोग किया जाता है। संकटा की सुहागलों नमक वर्जित रहता है साथ में पूरे दिन व्रत रखा जाता है।

गुरुवार की शाम को आयोजक महिला सुहागलों का निमंत्रण करने जाती है ताकि वे शुक्रवार को नहाकर चाय दूध पियें। कमरे में पूजन के लिये गोबर से लीपकर चौक बनाकर चौकी पर देवी की प्रतिमा/चित्र रखकर पूजा की तैयारी करली जाती है। आमंत्रित महिलाओं के आने पर उन्हें माहुर टीका करने के बाद पूजा स्थल के चारों ओर बैठाया जाता है। आयोजक महिला द्वारा षोडशोपचार से देवी की पूजा की जाती है सुहाग सामग्री चढ़ाई जाती है (जो ब्राह्मण महिला को बाद में दी जाती है। अन्य महिलाओं के लिए चूड़ी रोरी बिन्दी लगे हुए पान चढ़ाये जाते हैं।) कहानी कही जाती है। कहानी में जंगल की बेटी तथा दूसरी कहानी सेठ साहूकर की बहू की कही जाती है आरती होती है।

भोजन के लिये थाली में पांच पूड़ी, हलुआ, खीर, दूध, दही, शक्कर परोसा जाती है। प्रत्येक चार महिलाएं अपनी थाली से एक पूड़ी थोड़ा हलुआ ओली लेने वाली महिला की थाली में रखती है। भोजन करने के बाद महिलाएं वहीं बैठे ही स्वच्छ पानी से हाथ धोकर खसक–खसक कर सुहाग लेती है हाथ में चूड़ी पहनकर पान खाकर मौन तोड़ती है।

आज के आधुनिक युग महिलाएं टी.वी. के सीरियल देखने के कारण आपस में मिलजुल नहीं पाती हैं जब कभी कहीं आपस में मिलती है तो मौन धारण करना मुश्किल हो जाता है। अत: अब वे आपस में बातचीत करती जाती हैं आयोजक महिला के द्वारा भले ही पूजा की जा रही हो या कथा कहानी कही जा रही हो या गाने बजाने का कार्यक्रम हो।

दशा रानी के गड़ा और सुहागलें – दशा सुधार की भावना से लेने वाले गड़ा को तुलसा दशा रानी के गड़ा लेना और सुहागलें करने को दशारानी की सुहागलें कहा जाता है।

गड़ा लेने की विधि इस प्रकार है – पहली बार घोड़ी के नर शिशु होने पर, गाय के पहली बार बछड़ा के होने पर तथा स्वत: उपजी तुलसी में प्रथम बार एक ही डाल पर मंजरी के निकलने पर महिलाएं गड़ा लेती हैं। कच्चे सूत के धागे को नौ बार हाथ की चारों ऊंगली में लपेटकर तथा एक तार (धागा) अपनी साड़ी को लेकर लपटने को दशारानी के गड़ा लेना कहा जाता है। इसी दिन राजा नल की कहानी कही जाती है नौ दिन तक भिन्न–भिन्न कही जाती है जैसे अधखिली फूल की बोड़ी, सोने के फूल निकलने वाली, भरोई वाले बब्बा बऊ की, राजा के कुँवर की सोने एवं मोती की लरियों से सजाई गई झालर आदि कहानी कही जाती हैं। दसवें पूजन तथा सुहागलें होती हैं। सुहागलों में दस महिलाएं, एक डुकरिया तथा एक ओली लेने वाली आयोजक महिला/आयोजक महिला एंक दिन पूर्व सुहागलों का न्यौता कर आती हैं। जिससे वे बिना नहाये चाय न पियें। आयोजक महिला सुबह घर की सफाई कर लीपती पोतती हैं बाल धोकर स्नान करके भोजन की व्यवस्था करती हैं। भोजन में बिना नमक की पूड़ी, खीर, हलुआ, दूध, दही का प्रयोग किया जाता है। पूजा के लिये अठवाई तथा कच्चे फरा और गुलेला बनाये जाते हैं।

सभी सुहागिल महिलाओं के आने पर माहुर टीका के पश्चात् पीपल के पत्ते पर चन्दन से दो पुतरियाँ बनाई जाती है जो तुलसा दशारानी का रूप माना जाता है। पूजा स्थल पर चौकी के ऊपर पीपल के पत्ते पर बनाई तुलसा दशारानी तथा दूध से नहला कर सभी महिलाओं के गड़ा रखकर षोडशोपचार से पूजा की जाती है। सुहाग सामग्री चढ़ाई जाती है। लगे हुए पान, चूड़ी, बिन्दी, रोरी अन्य सुहागिल महिलाओं को देने के लिये चढ़ाकर, राजा नल की कहानी कही जाती है। (राजा नल की कहानी प्रथम दिन और दसवें दिन कहाना अनिवार्य रहता है।) सभी महिलाएं बांये हाथ दस–दस साबुत चावल लेकर दशारानी पर यह कहते हुए चढ़ाती है –

वर पीपर से उतरीं दशारानी, कानन कुण्डल,
गले गजमोतिन के हार
हाली फूली फिरें दशा रानी,
दारुदर मारे–मारे फिरें
दशा धाऊँ दशा मनाऊँ,
दशा रानी को देओ सब कछु पाऊँ।।

इस प्रकार एक एक चावल दस बार पूजा की हुई दशारानी पर छोड़ती है। आरती करने बाद सभी दस महिलाओं को थाली में ग्यारह–ग्यारह पूड़ी, हलुआ, खीर, दूध/दही परोसा जाता है। ओली लेने वाली महिला आँचल में थाली, रखकर खिसकती हुई प्रत्येक के पास जाती है वे अपनी थाली से एक पूड़ी थोड़ा हलुआ उनकी थाली में रखती है। भोजन शुरू करती हैं। हलुआ खीर दूध/दही की परोस पुन: हो सकती है किन्तु पूड़ी एक ही बार परोसी जाती है भोजन के पश्चात् सभी महिलाओं के स्वच्छ जल से हाथ धुलाकर सुहाग पूर्व विधि अनुसार लेती हैं हाथ में चूड़ी पहनकर पान खाती हैं दशारानी से परिवार की सुख समृद्धि की कामना करती हुई घर के लिए प्रस्थान करती हैं।

किसी कारणवश दस दिन में पूजा न हो सके तो बीस दिन गड़ा पूजे जाते है जिन्हें बीसा रानी कहा जाता है। इसमें बीस सुहागिल महिलाओं का आमंत्रण किया जाता है। यदि सुहागलें न करना हो तो भी बीस दिन घर पर ही स्वयं गड़ा का पूजन किया जाता है।

आधुनिकता एवं अपने को मॉर्डन के दिखावे के फलस्वरूप अब इन परम्पराओं में भी परिवर्तन एवं शिथिलता दृष्टिगोचर होने लगी है। जबकि इस प्रकार के आयोजन समाज के महिलाओं सम्मान के प्रतीकस्वरूप ही आयोजित किये जाने की परम्परा रही है।

**– पुराना पोस्ट आफिस के पास
हवेली रोड, टीकमगढ़**

बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं. वासुदेव गोस्वामी

– श्रीमती ब्रजलता मिश्र

बुन्देलखण्ड के गौरव को द्विगुणित करने में जिन महान साहित्यकारों का योगदान रहा है उनमें से एक थे पं. वासुदेव गोस्वामी। भक्तकवि हरिराम व्यास के वंशधर आपका जन्म १८ अप्रैल १९१४ ई. को दतिया में हुआ था। आपके पिता श्री पं. मुकुन्दलाल गोस्वामी तथा माता श्रीमती कुन्जन देवी की धार्मिक प्रवृत्ति तथा साहित्यिक अभिरुचि थी। आपकी माताश्री के सुरीले कण्ठ से ब्रजभाषा के असंख्य पद घरेलू कार्य करते हुये प्रस्फुटित होते रहते थे। आपके पिताजी दतिया के मन्दिरों में धार्मिक उत्सवों पर समाज मण्डली के साथ 'समाज गायन' (भक्ति संगीत की विशेष गायन शैली) में पुत्र सहित भाग लेते थे। श्री वासुदेव गोस्वामी जी गायन के साथ साथ झाँझ की अनूठी संगत करते थे। रूपक, कहरवा दीपचन्दी आदि तालों को :'झांझ' की अनूठी संगत करते थे। रूपक, कहरवा दीपचन्दी आदि तालों को 'झांझ' पर विभिन्न लयकारियों से बजाते ही श्रोता भावविभोर हो जाते थे। इस प्रकार साहित्यिक और सांगीतिक पृष्ठभूमि में जन्मे गोस्वामी जी पर अपने माता पिता की अमिट छाप रही। उनकी महती प्रेरणा, कृपा एवं आशीर्वाद से गोस्वामी जी ने बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। बाल्यकाल में ही अपने लेखन कार्य प्रारम्भ किया था। प्रारंभ में आप अध्यापक रहे तत्पश्चात् एकाउन्टेन्ट जनरल म.प्र. के प्रधान कार्यालय ग्वालियर में सुपरिटेन्डेन्ट रहे। हिन्दी भाषा की खड़ी बोली, ब्रज तथा बुन्देली पर आपका समान अधिकार था। आपकी लेखनी गद्य और पद्य में समान रूप से चलती रही। आपको अंग्रेजी संस्कृत, उर्दू आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी की कुछ कविताओं का आपने हिन्दी रूपान्तर भी किया है। आपकी हास्य व्यंग्य रचनाओं में शिष्ट हास्य और सुसंस्कृत व्यंग्य कूट–कूट कर भरा है। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी आपकी क्षमता विकसित है। श्री वासुदेव गोस्वमी की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें भक्तकवि व्यास जी, उड़ते छीटे, बुद्धि के ठेकेदार, विद्रोही वानपुर, बुद्धदेव, करीलकुंज, जातक कहानियाँ, हरिराम व्यास, त्रिवेणी के संगम पर, केनोपनिषद्–पद्यानुवाद, उठो वीर सन्तान तथा दशमिक वेतन तालिका तथा बख्शी हंसराज और उनका काव्य। श्री युगल पदामृत, रसनिधि:रतनहजारा, दैनिक मूर्ख संदेश (असली), वीर मर्दन सिंह (ऐतिहासिक चयन), निगुम्फ (निबन्धों का संग्रह), चुटकी (हास्य कविताओं का संग्रह), साधना (निबन्ध संग्रह) आदि आपकी अप्रकाशित कृतियां हैं।

बुन्देली की समग्र सेवा के लिये उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा आपको वर्ष १९८३ का ''श्री मैथिलीशरण गुप्त नामित पुरस्कार'' (सात सहस्र धनराशि) प्रदान किया गया। तुलसी पीठ, कासगंज की ओर से आपको 'विद्या वारिधि' की उपाधि से तथा मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर द्वारा 'हिन्दी सेवी साहित्यकार' सम्मान से अलंकृत किया गया। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल, केशवजयन्ती समारोह, टीकमगढ़, बुन्देलखण्ड शोध संस्थान श्री लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर झांसी, नगर पालिका परिषद एवं जिला साहित्यकार अभिनंदन समिति छतरपुर द्वारा सम्मानित किया गया। श्री श्याम सुन्दर 'श्याम' जन सहयोग एवं सामुदायिक विकास संस्थान, दतिया की ओर से मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा आपका अभिनन्दन किया गया।

श्री गोस्वामी जी विन्ध्य प्रदेश के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मंत्री, उपाध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कोषाध्यक्ष, मध्यप्रदेश कला परिषद भोपाल के सामान्य समिति के सदस्य, केशव बाल विकास समिति दतिया, श्री कुंदउसिंह संगीत विद्यालय दतिया एवं मानस चतुश्शताब्दी समिति, दतिया जिला शाखा के अध्यक्ष रहे। इनके अतिरिक्त देश की अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। श्री वासुदेव गोस्वामी जी ने उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा ''बुन्देली लोक गीत'' का सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त ''अभिज्ञान'' एवं श्री स्वामी जी स्मृति ग्रन्थ आदि का सम्पादन किया। आप महान कवि लेखक, समालोचक, ग्रन्थ सम्पादक एवं अनुवादक थे। खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि बुन्देली के गीतकार, शिष्ट हास्य एवं व्यंग्य की गद्य और पद्य की रचनाओं के प्रणेता थे।

श्री गोस्वामी जी ने १७ फरवरी ९६ को माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय, भोपाल को अपने जीवन में संग्रहीत प्रचुर साहित्य को लोकोपयोगी बनाने हेतु समर्पित करके दतिया में अभूतपूर्व कार्य किया। जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर से सन् १९९२ में डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय ने 'दतिया जिले के अन्य समकालीन साहित्यकार एवं वासुदेव गोस्वामी' विषय पर पी–एच. डी. की है। गोस्वामी जी कुशलं होम्योपैथिक चिकित्सक भी थे। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र से दूर–दूर से लोग इलाज के लिये आते थे और 'वैद्य जी' नाम से आपको सम्बोधित करते थे। पं. वासुदेव गोस्वामी जी दतिया में जन्मे, खेले बड़े हुये तथा जीवन का सर्वाधिक समय साहित्य सेवा तथा जनसेवा करते हुये दतिया में ही व्यतीत किया। आपकी जन्मभूमि तथा कर्मभूमि दतिया ही रही। दतिया की माटी से आपको असीम स्नेह था। २६ जून १९९६ को दतिया की माटी में ही अकस्मात् आप चिरनिद्रा में विलीन हो गये।

– केशव–कुल, ३५२, नानक गंज,
सीपरी बाजार, झांसी उ.प्र.

बुन्देली लघु कथाएँ

— डॉ. सुश्री शरद सिंह

उपास

सब ओरें जेई जानत आएं के कलुआ की मताई बड़ी धरम–करम वारी लुगाई ठैरी। अब आजई की ले लो, दुलारी बाई ने कलुआ की मताई से पूछी – 'काए कलुआ की मताई, तुमाओ आज सोई उपास आए का?'

'हओ' कलुआ की मताई बोली

'काए कित्तो उपास रखत हो? अबे कल सोमबती को रहो, परों सूरजदेव को ऊके पैले सनिच्चर को सनिदेव को उपास राखें थीं... काए, इत्तो भूखो रै–रै के कौन के लाने बचा रईं? काए, संगे ले जाहो का?' दुलारी बाई कलुआ की मताई को मजाक उड़ात भई बोली।

'संगे को ले जेहे, बाई! मोय तो धरम की लगन आए सो उपासी रह लेत हों।' कलुआ की मताई ने कही।

दुलारी बाई खों जवाब में कछू ने सूझो सो ऊने आगे बढ़ लओ। दुलारी बाई के जाबे के बाद कलुआ की मताई अपनी झुपड़िया में घुसी, ऊने डब्बा–कनस्तर खोल–खोल के देखो औं मोंई–मों में बड़बड़ान लगी – "जब खाबे के लाने कछू हई नइयाँ सो उपासी ने रहबी तो का करबी?"

भिकारी–१

सेठ जी अपने मोड़ा को ब्याओ करा के लौटे ते। उनकी सेठानी ने मोड़ा के ब्याओ की खुसी में भिकारियन खों दान देने के लाने बुलवाओ रहो। सेठानी सज–धज के दान दैबे के लाने जो घर से बायरे आई सो उन्ने देखी के उते तो भिकारी सो भिकारी कुत्ता की पूंछ लो नई हती। उन्ने नौकरन खों बुलाओ उर भिकारियन को बुला लाबे के लाने दौड़ा दओ। सुबा से दुपारी हो गई जो नौकर भेजे रये बे बी न लौटे। सेठानी हतीं सो परेसान भई जा रईं तीं। करत–करत संजा की बेरा हो गई। संझा होत–होत नौकर जो हते सो लौट आए। सेठानी उनपे बरस परीं, 'काए रे ठठरी के बंदों! तुम ओरन खों भिकारियन खों लिबावे खां भेजो रओ उर तुम ओरें भिकारियन खों लाबे के बदले खुदई हिरा गए? काए, सबरे दिन का करत रये?'

'भिकारी ढूंढत रये!' एक नौकर डरात–डरात बोलो।

'हओ! जे अच्छो बहानो आए। ई सहर में अब का कोनऊ भिकारी नईं बचो का?' सेठानी मों बिचकात भई बोलीं।

'नईं मालकन, ऐसो नइयां! भिखारी सो मुतकें आएं लेकन ... बे आबे के लाने राजी नईं भये।' इक दूसरो नौकर बोलो।

'ऐं? का कै रये? बे आबे के लाने राजी काए नईं भये?' सेठानी मों फाड़ कें बोलीं।

'उन भिकारी कै रै हते के.... सेठजी ने अपने मोड़ा के ब्याओ में बहू के घरवालन से मांग–मांग के दहेज लओ है सो सोई भिकारी कहाने... उर हम अपने जात वारन से भीक नईं लेत हैं।' तीसरो नौकर हिम्मत करके बोल परो।

कोनऊ दिक्कत नइयां

ऊकी मोड़ी कुल्ल दिना से जिद कर रई हती के – 'मेला दिखा देओ, मेला दिखा देओ।' आज सो मोड़ी अड़ गई कै आज संझा खों मेला जा के ई रहने है ने तो बा खाना–जींमना बंद कर दैहे। मोड़ी की जिद सोई सही हती। आज मेला को आखिरी दिन हतो। आखिर मेला–ठेला हमेसा तो रहत नइयां। आज ने देख पाई तो देखन न पैहे।

'ठीक है, बिन्ना! दम धर, आज संझा के तोए लिवा लैं चलहों मेला। खूब घूमियो औ जो जी में आए सो खरीदियो।' ऊने मोड़ी से कही।

ऊकी बात सुन के मोड़ी मुस्कान लगी औ ऊके गले लग गई। बाप की छाती जुड़ा गई। मोए इसे पैलई घुमा लाने तो मेला, वा सोचन लगो।

संझा की बेला ऊने जल्दी–जल्दी काम बन्द करो औ बैग उठा लओ। ऊ चलबे को भओ के चपरासी ने आके कही – 'बड़े साब बुला रए' अब वा बड़े साब की बात सुने बगैर तो जा नईं सकत ता, सो ऊने अपनो बैग उतई धरो औ बड़े साब के कमरे में पौंचो।

'सुनो, आज आप अपने घरे बाद में जइयो पैले हमाये घरे जा के हमाये कुत्ता को घुमा लाइयो। काए से के आज ऊको ट्रेनर नई आओ है औ बा आप के संगे हिलो–मिलो आए, समझे। आप खों कोनऊ दिक्कत तो नईं?' बड़े साब आदेश देत भए बोले।

'कोनऊ दिक्कत नईयां, सर!' ऊने जवाब दओ और अपनी मोड़ी को दओ रहो बचन भुला के बड़े साब को कुत्ता खों घुमाने के लाने चल पड़ो।

भिकारी–२

बे उते इसकूल में मुक्ख–अतिथि बन के गए ते। इसकूल के बच्चन ने किसम–किसम के भेस बनाबे को कार्यक्रम करो। एक बच्चा भिकारी के भेस में मुक्ख–अतिथि के आंगू जा ठाड़ो भओ।

'साबास बेटा! अच्छो भेस बनाओ है!' मुक्ख–अतिथि ने ऊकी तारीफ करी उर मुस्क्यात भए ऊकी गदेली पे सौ रुपइया को एक करारो नोट धर दओ। जा देख के उते बैठे सबई जने ताली बजान लगे। मुक्ख–अतिथि फूले नई समाने।

कार्यक्रम खतम भओ सो मुक्ख–अतिथि बायरे निकरे। बे जैसई अपनी कार के लिंगे पोंचे एक मैलो–कुचैलो सो मोड़ा उनके आंगू आ ठाड़ो भओ उर गिड़गिड़ान लगो, 'मालिक कछु मिल

जाए! दो दिनां से भूकों हौं, मालिक!' कछु तो दै दो मालिक... .. रुपइया नईं तो अठन्नी दै दो मालिक...।''

'चल.... चल.... भग इते सें! जाने कां–कां से चले आत हैं जे भिकारी ससुरे।... मोए एंगर पइसन की पेड़ नईं लगो है.. चल भग.... तोरी तो........।' मुक्ख–अतिथि ऊ भिकारी मोड़ा खों दुतकारत भय चिचियान लगे।

जात–पांत की भली चलाई

'सुनले कान खोल के, जो तूने गैर जात के मोड़ा के संगे ब्याओ की बात करी तो हमाओ मरो मूं देखहे!' ऊने अपनी बिटिया खों धमकाओ।

बाप की बात सुन के पैले तो बिटिया रोन लगी फेर हिम्मत कर बोली – 'मगर दद्दा, हम ऊके बगैर नई रह सकत' हमने ऊको अपनो घरवारो मान लओ है।'

'का कही? ऊको अपनो घरवारो मान लओ है? ससुरी गैर जात के संगे जिनगी बिताहे ऊको छुओ तो पानी पीना लो गुनाह आए औ तुम....हमाई नाक कटाहे.... हमाई जात में कौनऊ ने ऐसो कभऊ ने करो... तैं कर के तो देख, फाड़ के न रख देओं तोहो!' बाप और जोर से बमकत भओ बोलो।

'वाह दद्दा! जात–पांत की भली चलाई। ऊके छूए से पाप हो रओ?' औ ऊके दद्दा के खीसें में धरो, ऊके दद्दा के पसीने से भीगो रुपया लेत भये बखत छुओ पाप नईं रहो, काए के वा तो रिश्वत हती न! बड़े आए जात दिखान वारे!' बिटिया सोई दहाड़ पड़ी। बिटिया की बात सुन के बाप को चेहरा फक्क पड़ गओ।

– एम.१११, शांति विहार, रजाखेड़ी सागर म.प्र.

बँधी गाँठ आपुस की छूटै

–गोपाल दास रूसिया

बँधी गांठ आपुस की छूटै, साँप मरे ना लाठी टूटे
कारज करो जतन से प्यारे
बिगरे काज बनाओ सारे
बैर अकारज करो कभऊ ना
मन के खोलो कपट किबारे
बोल न बोलो झूटे–मूटे – बंधी गांठ...।।
भइया बेंने बाप मताई
कक्का काकी ओ भौजाई
बब्बा बऊ नाती ओ नातिन
जीजा ओ पूज्य जमाई
जुरे–जुराओ घर न फूटे– बंधी गांठ....।।
दुख में सुख में धीर ना छोड़ो
प्रीत बनी बस भर नोड़ो
पीर पराई हरो हमेशा
एक दूजे सें बस भर जौड़ो
जस ही लूट सको तो लूटे – बंधी गांठ.....।।
परहित करो सदा ई मन से
सबकी करो भलाई तन से
स्वारथ तजो करो परमारथ
मोह न करो पराये धन से
बना धजी को सांप ना पीटे – बंधी गांठ......।।
सांचो बोले साँची बानी
करत भूल ना बो नादानी
धीरज छोड़ गुपाल लोभ बस
हट बस करो नहीं मनमानी
कुपथ चले ना संग घसीटे – बंधी गाँठ आपुस की छूटे।

– स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, हरपालपुर

जलसा बुंदेली कौ प्यारौ, संस्कृति कौ रखबारौ।।

– प्रवीण गुप्त

जलसा बुंदेली कौ प्यारौ, संस्कृति कौ रखबारौ।।
जितनी जी की गुंजाइस हो, उतनी अक्षत डारौ।
तरां तरां के खेल देखबे, रोजऊँ इतै पधारौ।।
हांत जोर कें बिनती सबसें, सबकौ मिलै सहारौ।
कर लो नांव 'प्रवीन' जगत में, कैबो जेऊ हमारौ।।

धरती छत्रसाल की अइयो, दिन दिन नेह बढ़इयौ।।
कवि भूषन की उठा पालकी, गरब करत नित रइयो।।
पूरन करियो काज लला तुम, पूरे औसर दइयो।।
बुन्देली संस्कृति कला खों, अपुन भूल न जइयो।
बनै 'प्रवीन' जनमभूमी पै, बीज गुनन के बइयो।।

ई धरती में मउआ मेवा, गुलगुच बेर कलेवा।।
लुचई ठडूला खुरमा चीला, खैबे तरसें देवा।
कितने प्रानी अमर हो गये, कर धरती की सेवा।
उनकी कीरत छाई दुनी में, उड़ रये सुयश परेवा।
इतई 'प्रवीन' आल्हा ऊदल भये, ई संस्कृति के खेवा।।

देखौ खजुराहो आ प्यारे, देखत बनत नजारे।।
कालिंजर के किला धुबेला, कोट जगत से न्यारे।
भीमकुण्ड पन्ना चरखारी, नगर ओरछा बारे।।
बारे से हरदौल लला नें, करे जगत उजयारे।
धाम 'प्रवीन' जटाशंकर नें, कलिमल सब धो डारे।

– मंगलम, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर

एक ऐतिहासिक विश्लेषण –

प्राणसिंह धँधेरे और अमानसिंह बुन्देला का राछरा

– डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में 'राछरा' शब्द छोटे–मोटे संघर्ष या गृहकलश के लिए व्यवहत हुआ है। ऐसे झगड़े जिससे शौर्य, श्रृंगार एवं करुणा उत्पन्न करने वाले प्रसंगों की सृष्टि हुई, राछरे के रूप में माने जाते हैं। अमानसिंह की राछरा, प्राण धंधेरे का राछरा, बाणासुर का राछरा और चन्द्रावल का राछरा इसी क्रम में हैं। इनमें से अमानसिंह का राछरा और प्राण धंधेरे का राछरा सम्भवत: एक ही हैं क्योंकि घटना और पात्र दोनों राछरों में एक से हैं। ये राछरे करुण कोमल ध्वनि में प्राय: स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं, पर कुछ राछरे पुरुषों द्वारा भी गाए जाते हैं। एकल गायन में कींगड़ी तथा समूह गायन में जवारों के भजन में बजाये जाने वाले वाद्य स्वर का साथ देते हैं।

राछरे प्रमुख रूप से जनकंठ में सुरक्षित रहे। अतएव एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कंठ तक पहुँचते–पहुँचते इनकी शब्दावली में हेरफेर हो जाना स्वाभाविक है। अमानसिंह का राछरा दो–तीन व्यक्तियों से अलग–अलग सुना जाने पर भाषा तथा घटना–क्रम में अन्तर स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। पर मूल संवेदना यथावत रहती है।

अमानसिंह का राछरा ऐतिहासिक है। पन्ना के महाराजा छत्रसाल बुन्देला के पुत्र हिरदेशाह को पन्ना का राज्य प्राप्त हुआ था। हिरदेशाह के पुत्र सभासिंह की पुत्री सुभद्रा का विवाह अकोड़ी–धगुंवाँ के प्राणसिंह धंधेरे के साथ हुआ था। सावन के महीने में भुँजरियों का त्यौहार निकट आने पर अमानसिंह ने सुभद्रा को नैहर बुलवाने के लिए दिन निश्चित करने नाई को अकोड़ी भेजा। सुभद्रा की गोद में नवजात शिशु होने तथा बरसात के कठिनाई भरे मौसम का बहाना लेकर प्राणसिंह ने कार्तिक मास में लिवा ले जाने की बात कहकर नाई को वापिस कर दिया। इस पर अमानसिंह अपने सहयोगियों के साथ बहिन को लिवा लाने के इरादे से अकोड़ी के लिए चल दिए। अकोड़ी में अमानसिंह व प्राणसिंह के बीच चौपड़ का खेल हुआ। चौपड़ में अमानसिंह हार गए और उनके बहिनोई ने मजाक में उनसे कह दिया कि तुम तो बाँदी के जाए हो। इसी बात पर क्रोधित होकर अमानसिंह ने अपने बहिनोई प्राणसिंह का सिर काट लिया। लोकगायक इस घटना को दो तरह से गाते हैं एक वर्ग 'राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ' ध्रुव पंक्ति लगाकर गाता है और दूसरे वर्ग के लोकगायक 'प्राण धंधेरे को राछरौ' ध्रुव पंक्ति लगाकर गाते हैं। वस्तुत: ये एक ही राछरे के दो तरह के प्रस्तुतीकरण हैं।

राछरों में बुन्देली लोक संस्कृति का स्वरूप सुरक्षित है। बुन्देलखण्ड के तीज त्यौहार, रीति–व्यवहार तथा लोकोत्सवों के अवसर पर लोक जीवन की यथार्थ झांकी देखने को मिलती है। भुँजरियों का त्यौहार निकट आने पर अमानसिंह ने अपने मन में विचार किया –

सॉंडन आए हैं नियरे अमन जू
तिहारी बहिन परदेस। राजा प्रान धंधेरे कौ राछरौ।

तथा सबकी बहिनियाँ झूलें हिंडोरा
तुमारी बहिन बिसूरै परदेश
राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ।

बुन्देलखण्ड के राज घरानों में बहिनों–बेटियों की ससुराल में नाई–बारी भेजने की परम्परा थी। अमानसिंह ने अपनी बहिन की ससुराल में पहले नाई को भेजा –

अबकीं पठै दो नउआ बरिया
फिरकूँ में हम चले जाँय।

इतर जाति के लोगों के प्रति सम्मान सूचक सम्बोधनों का व्यवहार बुन्देलखण्ड में सदा से रहा है। अकोड़ी में अमानसिंह की बहिन सुभ्रदा नाई को वीरन कहती है तथा मायके लिवा ले जाने को कहती है –

ठाड़ी बहिन जा अर्ज करत है, हमें लुवा लअें जाव
जो तुम बिरन लौट घर जै हो, हमें लुवा लअें जाव

नाई के वापिस आ जाने के पश्चात् अमानसिंह अकोड़ी जाने की तैयारी करते हैं। अमानसिंह के घोड़े की सजावट का वर्णन इस प्रकार है –

पेड़ रचनियाँ की महँदी मँगा कें सुम्म रहे हैं रचाय
चारऊ सुम्मन माँदी रचदई पूँछ करी सरबोर
बार–बार में मोंती गो दए किसवारन में हीरालाल
पवन पुतरियाँ धरीं पुट्ठिन पै कलगी धरी है लिलार

बुन्देलखण्ड में पुरुष वेशभूषा का अनोखा स्वरूप रहा है। मध्यकाल के वर्गभेद वाले समाज में वेशभूषा का भी अंतर देखने को मिलता है। विरतिया की वेशभूषा तथा राजा अमानसिंह की वेशभूषा के वर्णनों में यह अंतर देखा जा सकता है –

धोती पीताम्बर पैर विरतिया कुरता बंगालीकाट
सिर पै साफा बाँध विरतिया कंधे पै साफी डार
०० ०० ००
डार बकुचिया चले विरतिया धर लई अकोड़ी की गैल

तथा खौर लगा कें जब लाला नें धोती पितम्मर पैर
पैरी कतइया है नारंगी सरई मैमदाबाद
बकतर पैहर लए उन हर नें पिछुआं दई गैंड़ की ढाल
सात तवा दै कैं छाती पै सेल गुना न होय
पाग पठौनी हन हन बाँधी रुमालन सें पोंछ रये हाथ

राछरे के संक्षिप्त से कथानक को गति देने तथा रोचक बनाने के लिए अपशकुनों और मार्ग बाधाओं को भी लोक गायक ने जोड़ा है –

'छींकत भए हैं सवार'

'रीती मिली पनिहार'

'करिया ने काटी गैल'

'हिरनी नै काटी गैल'

आदि उपरोक्त अपशकुनों के अतिरिक्त मार्ग बाधा के रूप में बढ़ी नदी का प्रसंग इस राछरे में इस प्रकार है—

जब रा अमन जू पौंचे नदी पै पनियाँ पंथ दिखाय

अगर सहर के मलहा बुला कें जर बर नाव डराय

नाव डरा कें कड़े अमन जू पौंचे अकोड़ी जाय

इस राछरे में स्थान संकेत की परम्परागत शैली का व्यवहार हुआ है। अमानसिंह अकोड़ी में पहुँचकर जब अपने बहिनोई का मकान पूछते हैं तो उन्हें इस प्रकार संकेत किया जाता है –

'ऊँची अटरियाँ लाल किबरियाँ सूरज सामूँ द्वार'

अमानसिंह की बहिन सुभद्रा भी ऊँचे स्थान पर चढ़कर देख रहीं है और अपने भाई के आगमन की संभावना करती हैं –

ऊँचे चढ़–चढ़ देखै बहिनिया जे दल काँ सैं आए

ऐसे घुड़ला हमें जो दीसें जैसें विरन के घुड़ला होंय

अंत में यह कारुणिक प्रसंग है जिसके लिए इस राछरे की सृष्टि की गई है। जब अमानसिंह अपने बहिनोई का सिर काटने को उद्यत हुए तब बहिन सुभ्रदा ने बहुत अनुनय विनय की –

हांत पकर लऔ सुनकें बहिन नें सुनौ विरन मेरी बात

कौन पै पैरें हरी पीरी चुरियां कौन पै तेल फुलेल

स्त्री का सर्वस्व तो पति ही माना जाता है। राछरे में अमानसिंह की बहिन का उक्त कथन कितना करुणापूर्ण है। बहिन ने निवेदन किया – ''भैया आप यह जघन्य कार्य न करें। मेरे हाथों में ये हरी–पीली चूड़ियाँ किसके कारण हैं? मेरे बालों में तेल फुलेल और मांग का सिन्दूर किसके कारण हैं?

अमानसिंह ने बहिन की दीनता भरी प्रार्थना को भी न माना तब बहिन ने अपने पुत्र को अमानसिंह की गोद में डालते हुए कहा—

ओली में धर दऔ वारे भनैजा कौं

जाकौ मूंड़ काट लेओ

इतनी सुनकें कहत अमन जू

सुनौ बहिन मेरी बात

जाकौ बैर हम तइसैं भजाहैं सूरवीरन के काम

और जब अमानसिंह ने अपने बहिनोई का सिर काट ही लिया तो उसकी बहिन सुभद्रा बेहद दुःखी और क्रोधित होकर उसे चुनौती देने लगी –

'जैसे रांड़ तुमनें हमकों करी हैं तैसी वा री हो जाय'

बहिनोई की हत्या के पश्चात् अमानसिंह पन्ना के लिए रवाना हो गए। सुभद्रा ने योद्धा पुरुष के वेश में घोड़े पर सवार होकर पन्ना पहुँच पाने के पूर्व ही अमानसिंह को ललकारा। सुभद्रा ने तलवार का वार करने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो उसके हाथ में चूड़ियाँ देखकर अमानसिंह सहसा शिथिल हो गए। इतने में ही सुभद्रा ने अमानसिंह का सिर काट लिया और अपने पति की हत्या का बदला ले लिया।

पन्ना नरेश छत्रसाल बुन्देला की तीसरी पीढ़ी में सभासिंह के तीन पुत्र थे – ''हिन्दूपत, अमानसिंह तथा खेतसिंह इनमें से अमानसिंह योग्य तथा प्रतिभाशाली थे। इस कारण उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया गया था परन्तु राज्य के लोभ में हिन्दूपत ने अमानसिंह की हत्या करवा दी थी। अमानसिंह जनप्रिय थे। इस कारण हिन्दूपत के इस कृत्य की जनता ने भारी निन्दा की थी। राछरे में उल्लेख आया है कि अमानसिंह की हत्या उनकी बहिन सुभद्रा ने अपने पति की हत्या के बदले के रूप में की थी। राछरे जनकंठ में सुरक्षित रहे और इतिहास एक लिखित प्रमाणित साक्ष्य है। बुन्देलखण्ड के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि हिन्दूपत ने अमानसिंह की हत्या करवाई। पन्ना दरबार के कुछ कवियों ने भी अमानसिंह की हत्या की निंदा की थी तथा इस संबंध में काव्य रचना भी की थी।

पन्ना दरबार में उस समय चार दरबारी कवि थे – राम, मल्ल, बोधा तथा नाथ। इन चारों कवियों ने अमानसिंह की हत्या की भर्त्सना की थी तथा कवित्त लिखे थे। नाथ कवि का लिखा हुआ कवित्त निम्नानुसार है –

सूरन कौ सत खोयौ व्रत खोयौ वीरन कौ।
कुल कौ मयंक खोयौ, खोई मेंड़ दान की।
हिन्द कौ जिहाज बोरौ, कामना कौ कर तोड़ौ।
राजन कौ खंभ फोड़ौ, आशा थी जहान की।।
ऐसौ लघु मतिवारौ, स्यंदन कौ संग मारौ।
शत्रुन कौ साल टारौ, मेंटी बाढ़ बान की।
कहें कवि नाथ अनाथ भयौ हिन्दूपत,
मार कें अमान शान खोई हिन्दुआन की।।

सत्य जो कुछ भी रहा हो पर बुन्देलखण्ड में प्रचलित राछरे करुणा त्याग तथा वीर भावनाओं की मिली जुली अभिव्यक्ति के लिए सदा चर्चा का विषय रहेंगे।

– अनन्य कॉलोनी, सेंवड़ा, दतिया

गारी : नाग नाथबे की

दहमें कूद पड़े यदुराई, खबर जसुदा नैं पाई।
सुनत लाल के हवाल, दौड़े धाये सब ग्वाल।
नन्दबाबा जौ हाल, धाये अकुलाई। खबर जसुदा....
गये नाग ढिंग मुरार, अरज करत नागनार।
मेरौ सोवत भरतार, नही दीजिए जगाई। खबर जसुदा....
बरज रही नागबाम, सुनी एक नही श्याम
तुरत रहे पूछ धाम, गये देर ना लगाई। खबर जसुदा....
झपट लीने फनीश, एक बार सहस बीस।
लाज राखौ जगदीश, करि बहुतक अतुराई। खबर जसुदा....
हरि नाग नाथ ल्याये, बृज वासिन सुख पाये
तीन लोकहू जस छाये, करी वेदन बड़ाई। खबर जसुदा....
ऐ चित्त करके सुचित्त, कहत प्यारेजू नित्त।
श्री कृष्ण कौ चरित्त, चरनन सिर नाई। खबर जसुदा....

(भगवानदास कुशवाहा–सभापति के सौजन्य से)

बुन्देली कविता –

जे दहेज वारे

– .डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश'

कमला अपयें सासरे सें, है परों लौट कें आई।
सुनकें समाचार 'तिरबेनीं', उनसे मिलवे धाईं।।
पूँछे हाल–चाल ससुरे के, हमजोली के नातें।
दुःखी बिचारी कमला ने, तब कह सुनाई सब बातें।।

बुरौ पिया कौ देश सखीरी, बाजत बिछिया गिर गये।
कहा कहौं ककरँन के मारें, तरवा पीरे पर गये।
धारँन चुये पसीना, ऐसी लपट हुना खन्नाबै।
गरमी के मारें रह रह कें, मेव जिया घबराबै।।

कहाँ धरे बिजुरी के पंखा, कहाँ बरफ कौ पानी।
ऐसे हैं कंजूस न उनके, घर में मच्छरदानी।।
चींथ–चींथ मँछरँन नें, मेरी पीठ सुजा कें धर दई।
ईंगुर सी जो देह, तीन दिन में ई कारी पर गई।

इतनों दऔ बाप–भैया नें, तोऊ न वे अघाने।
आउत्–आउत् नों, सास– नंद सब मोय देत रईं तानें।
बड़े आदमी कोउ कहै, मो कों तौ घिनाँ दिखानें।
अपयों न टेंट निहारै कानीं, कहै और सें काने।

ऐसे हैं वे ससुर हमाये, कहा कहों तिरबेंनी।
हैं कंजूस सबइ कामन में, भली न उनकी रेंनी।।
नई बहू के पालागँन मेंई, मिली न सुख सें रोटी।
जऊ सें जादाँ हुये कौन की, गुइयाँ किस्मत खोटी।।

जे दहेज वारे दहेज कों, तौ ऐसौ मों वायें।
पर जौ नईं देखत, घर के भीतर का होत हमायें।।
कैसी बीतत बहु–बिटिया पै जाकी चिंता नैंयां।
चायें उठतन घलतीं होवें, बाकें रोज पन्हैंयाँ।।

इनकों तौ दहेज में चहिये, नौ–दस लाख रुपैया।
उतै ससूर बिटिया वारे की, बिक जाय चाँय मड़ैया।।
साँची मानों बड़े घरँन में, सुक्ख सखीरी नैंयाँ।
जे हैं काँजी हौस बिलखरई, इनमें कपला गैयाँ।।

इतै उठौ मुरगा बोले तें, उतै बजाओ बारा।
कोलू के बैला की नाई, जुतौ न तोऊ गुजारा।
तोऊ इज्जित सें नहिं रोटी, दोऊ जोर मिल पाबै।
किट–किट करें सास जू, ननदी खोटीं खरीं सुनाबै।।

निश–दिन हाय–हाय पैसा की, और न कछू सुहाबै।
नइयाँ पीर कोऊ के दुख की, चाँय कोऊ मर जाबै।।
जासें तौ गरीब के घर में, पाबै सुक्ख बहुटिया।
इन महलँन सें नौ नोंनीं है, नेक दीन की कुटिया।।

अपनों घर है अपयों राज्ज है, अपनी थारी–लुटिया।
करकें ब्यारी सोओ प्रेम सें, बिछा मढ़ा में खटिया।
काउ बात की किरकिच नैंयां, नां कौनउँ हैरानी।
सास–ससुर कौशिल्या–दशरथ, सूदे जेठ–जिठानी।।

रोटी–दार सुहाबै घर की, पियें घरइ कौ पानीं।
जासें बड़ौ सुक्ख का, ऐसे राजा की जो रानी।।
कम्मर पटै बरै ऐसी वो, सोने की करधौनीं।
कहा काम की है वो सारी, नेट फोम की नोंनीं।

जाकें पैरें अँग भीतरई, भीतर सबरे सूकें।
ल्याबे बारौ समझ न पाबै, पैरइया की हूकें।।
खाँय गरीब गेहुँपर का कओं, जे जुनरी पै रीझें।
जियो–मरो तुम अपयें भाग्ग सें, जे नई नेंक पसीजें।।

वे होवें भोंदू तों, तो फिर, समझो अपयों कबाड़ौ।
आशा झूठी घर बारिन की, नईं काउ कौ खाड़ौ।।
दोउ जोर रोटी मिल जावै, जोई बड़ी गनीमत।
बड़े घरँन की सुनलो गुइयाँ, जौ है सही हकीकत।।

अपनी बीती तुम्हें सुनाई, धरें पेट में रइयो।
हँसी करउआ जग है जिज्जी, नई काउ सें कइयो।
अब तौ जैसें हुइये रक्ष्या, कर हैं बेई हमाई।
विपत परै पै द्रुपद सुता की, जिन्नें लाज बचाई।।

सुनकें करुण कथा कमला की, रह गईं खोंई खोंई।
आईं हतीं माँगबे बटुआ, लिपट गरे सें रोईं।।
बोली लाड़–प्यार सें जो, बाबुल घर खाई खेली।
हाय राम जा फँसी कहाँ, कमला सी सुघर सहेली।।

जो न करावै थोरौ, लालच घर–वर करधौनी कौ।
जो न करावै सब थोरौ, जो मारग ठहरौनीं कौ।।
गौर करो जा करुन कथा पै, सब समाज के भैया।
अबहूँ चेतो लगै किनारें, जासें डूबत नैया।।

कब तक डकरें हैं काँजी हौसन में, सुरहिन गैयाँ।
कब तक रोउत रें हैं ऐसें, अपनी सोन चिरैंयाँ।।
लायक ही सों बैर–ब्याह की, रीति चली जो आई।
जइपै चलकें निज, बेटी–बेटँन की करों सगाई।

जा दहेज जा लेन–देन सें, भलौ न हू है कबहूँ।
जाकें चक्कर में कितनी, ललनायें रो नई अजहूँ।।
मेंट सकौ जो बदा, ददा, जस हू है साँचउँ भारी।
कवि 'कमलेश' सबइ भैइयँन सें, जोई अरज हमारी।

– आलमपुर (भिण्ड) म.प्र.

१२५ वें जन्म दिवस पर विशेष –

१४०० पृष्ठों में 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' के लेखक : दीवान प्रतिपाल सिंह

– डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

असाधारण प्रतिभा के धनी दीवान प्रतिपाल सिंह का जन्म आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व पौष कृष्ण ८, संवत् १९३८ में छतरपुर में हुआ था जिन्होंने लगभग ८० वर्ष पूर्व चौदह हजार पृष्ठों में बारह भागों में पहली बार 'बुन्देलखण्ड का प्रामाणिक इतिहास' प्रस्तुत किया था। जिसका केवल प्रथम खंड संवत् १९८५ (सन् १९२८) में प्रकाशित हुआ था शेष ग्यारह खंड आज भी अप्रकाशित हैं। इस महत्वपूर्ण वृहद ग्रंथ के साथ उन्होंने अन्य अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया किन्तु हिन्दी के विद्वान इतिहासकारों और लेखकों उनकी सुधि तक नहीं ली। क्षेत्रीय इतिहास ग्रंथों को छोड़कर अन्यत्र उनका बहुत कम उल्लेख मिलता है। तत्कालीन अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों से उनके घनिष्ठ संबंध थे जिसकी जानकाहरी ग्रंथों में दिये गए लेखकीय एवं सम्पादकीय वक्तव्यों तथा भूमिकाओं से मिलती है।

श्री लक्ष्मीनारायण :'सुधांशु' ने उनके ग्रंथ 'आर्यदेव कुल का इतिहास' में उनका परिचय देते हुये लिखा है – ''लेखक के परिचय के संबंध में उच्च कुल–संबंधादि के विषय का लम्बा वर्णन न करके केवल लेखक के विचार से कुछ कहना अप्रासांगिक न होगा। आपका शुभ नाम है महाराज कुमार दीवान प्रतिपाल सिंह जू देव। आपका जन्म पौष कृष्ण ८ संवत् १९३४ वि. को छत्रपुर राज्यान्तर्गत पहरा ग्राम में हुआ। शैशव शिक्षा के लिये आपको बाल्यावस्था से ही कई स्थानों में भ्रमण करना पड़ा। कभी नौगांव, कभी छत्रपुर और कभी आगरा में रहकर अंत में सन् १९०१ ई. में आगरे से आप योग्यतापूर्वक प्रवेशिका परीक्षा (Matriculation) में उत्तीर्ण हुये। आप उस प्रान्त भर के देशी राज्यों के अपने जाति के क्षत्रियों में प्रथम मैट्रिक हैं।'' (पृष्ठ २) सुधीशु जी के अनुसार सन् १९०८ तक आप प्रयाग में रहे। उन्हीं दिनों आपका विवाह हो गया। सन् १९०८ से आप छतरपुर रहने लगे। दीवान साहब के सुपुत्र एवं परिवार आज भी छतरपुर में निवास कर रहा है।

दीवान साहब लिखित निम्नांकित ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिनमें से अधिकांश अनुपलब्ध हैं।

१. वीरबाला (उपन्यास), २. खेल शतक (बुन्देलखण्ड के १०० बालोपयोगी खेलों का संग्रह है जिसमें से २५ खेलों के विवरण के साथ 'खेल पचीसी' शीर्षक से गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाशन हुआ था) ३., श्रृंगार कुंडली (स्थानीय काव्य का सम्पादन, जिसका प्रकाशन 'कादम्बरी' में हुआ था), ४. विदुर प्रजागर (कृष्णकवि प्रणीत प्राचीन नीति ग्रंथ), ५. छत्रप्रकाश (लालकवि) का सम्पादन, ६. होली हजारा (स्थानीय होलियों का संग्रह–सम्पादन)। 'औद्योगिक शिक्षा' शीर्षक निबंध पर नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने 'स्वर्ण–पदक' प्रदान किया था। यह सब विवरण श्री सुधांशु जी द्वारा ही दिया गया है। इस बात की पुष्टि स्वयं दीवान प्रतिपाल सिंह की उस भूमिका से भी होती है जो उन्होंने बुन्देलखंड का इतिहास' (प्रथम भाग) में दी है। 'बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास' लिखते–लिखते जब उनका मन उचट जाता था तब वे परिवर्तन के लिए अन्य ग्रंथों के लेखन में जुट जाते थे। वे लिखते हैं – ''इस लम्बे काल में लगातार एक ही लम्बे विषय से बीच–बीच में मन उचाट होने से, परिवर्तन के ढंग पर कुछ और काम भी होता रहा है, और कई पुस्तकें लिखी अथवा सम्पादित की गई हैं। यह 'वीरबाला', औद्योगिक शिक्षा, खेल शतक (खेल–पचीसी) विदुर प्रचागर, छत्रप्रकाश, वामन तथा भविष्य पुराणों के सार, होली हजारा और श्रृंगार कुंडली आदि हैं। इतिहास के समाप्त होने पर सम्पादन, छपाई तथा प्रकाशन का प्रबंध हो जाने पर नवम्बर–दिसम्बर सन् १९२८ ई. में हमने 'आर्य कुलदेव का इतिहास' नाम की एक छोटी सी लगभग २०० पृष्ठ की पुस्तक लिख डाली है।'' यह पुस्तक भी बुन्देलखण्ड के इतिहास के प्रथम भाग के साथ ही प्रकाशित हो गई है।'' (बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग– भूमिका पृ. ७)

दीवान प्रतिपाल सिंह लिखित 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। दुर्भाग्य से अस्सी वर्ष बीतने के बाद भी इसका अब तक प्रथम भाग ही प्रकाशित है। शेष अप्रकाशित हैं। सुखद यह है कि इतने वर्ष बीतने के बाद भी उनके सुपुत्र कुंवर श्री पृथ्वीसिंह उन सभी ग्यारह भागों को सुरक्षित रखे हुये हैं और उनके निकट भविष्य में प्रकाशन की सक्रिय योजना क्रियान्वित की जा रही है। जिस दिन सभी खंड प्रकाशित हो जायेंगे, वह साहित्य और इतिहास जगत में ऐतिहासिक उपलब्धि होगी। प्रथम खंड का सम्पादन प्रतिष्ठित विद्वान लाला भगवानदीन ने किया था। 'दीन' जी ने अपनी सम्पादकीय में लिखा है – 'प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक दीवान प्रतिपाल सिंह जी ने बुन्देलखण्ड का विशालकाय इतिहास लिखकर अपने देश की सच्ची सेवा की थी। यह इतिहास उनका यथार्थ जीवन है। दीवान जी जैसे कर्मठ तथा स्वदेश प्रेमी पुरुष के लिए यह पुण्यमय कार्य करना सर्वथा योग्य ही हुआ है। बुन्देलखण्ड के इतिहास का अभाव हमें बहुत दिनों से खटक रहा है। अवसर पाकर उस अभाव की पूर्ति एक अपने ही शिष्य द्वारा हुई, यह हमारे गौरव को बढ़ाता है।... संक्षेप में पक्षपातशून्य होकर हम इतना ही कह सकते हैं कि यह इतिहास अपूर्व है और सफल लेखक को अमरत्व प्रदान करेगा।'' – लाला भगवानदीन दीन – बुन्देलखण्ड का इतिहास भाग–१, सम्पादकीय पृ. २.

लाला भगवान दीन 'दीन', छतरपुर के महाराजा हाई स्कूल (वर्तमान में शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, जिसने सन् १९८६ में अपनी स्थापना की शताब्दी मनाई है) में शिक्षक रहे हैं। बाद में वे यहाँ की नागरी, प्रचारिणी सभा, काशी चले गये थे। वे दीवान साहब के गुरु थे जिसका

उल्लेख 'दीन' जी ने ऊपर स्वत: किया है। उन्होंने अपने शिष्य के आग्रह पर ही इसका सम्पादन स्वीकार किया था। इसका उल्लेख दीवान साहब ने अपनी भूमिका में इस प्रकार किया है –

''बुन्देलखण्ड का इतिहास' पूर्णतया साफ होने के उपरान्त जून सन् १९२८ ई. में इसके मुद्रण तथा प्रकाशन का प्रश्न सामने आया। बात होते ही लाला भगवानदीन जी ने बिना किसी पारिश्रमिक के इसके सम्पादन का गुरु भार लेकर अपनी उदारता, देश तथा साहित्य प्रेम का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थिति किया। इन १४००० हस्तलिखित पृष्ठों के बारह खंडों का सम्पादन कार्य कोई साधारण बात नहीं है। लाला जी देश–प्रेम तथा कर्त्तव्य–भावनावश इस वृद्धावस्था में इस गुरु भार को स्वेच्छा से आग्रहपूर्वक लेते है। और उन्होंने इस बीच में प्रथम भाग का सम्पादन कर ही डाला है। उनका संकल्प प्रशंसनीय है। इस काम के लिए उनसे उपयुक्त तथा स्थानीय विषयों के मर्मज्ञ कोई अन्य उत्साही अनुभवी सज्जन दिखलाई नहीं देते।'' (दीवान प्रतिपाल सिंह – बुन्देलखण्ड का इतिहास भूमिका पृ. ६)

बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखने का संकल्प दीवान साहब के मन में सन् १८९८ में आया जिसको पूरा करने में उन्हें ३० (तीस) वर्ष लगे। इससे ही उनकी, निष्ठा, साधना और अध्यवसाय का अनुमान लगाया जा सकता है। वे लिखते है। ''अपने प्यारे वीर देश बुन्देलखण्ड के वास्तविक इतिहास का अभाव देखकर हमारे मन में सन् १८९८ में इसमें लिखने की इच्छा हुई थी। उसी वर्ष हमने परमपिता परमेश्वर का ध्यान करके दृढ़ संकल्प पूर्वक इसके लिखने का श्री गणेश कर दिया था।...'' यह बड़ा काम ३० वर्ष तक यथावकाश चलता रहा है। (वही, भूमिका पृ. ७) श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने भी 'आर्य देवं कुल का इतिहास' ग्रंथ के परिचय में इसका उल्लेख इन शब्दों में किया है – ''१४००० हस्तलिखित पृष्ठों के बारह भागों में ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'' दिसम्बर १९२६ में समाप्त हुआ। इसका प्रथम भाग प्रसिद्ध काव्य मर्मज्ञ प्रोफेसर लाला भगवान दीन जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो गया है। शेष भाग भी क्रमबद्ध प्रकाशित होंगे।'' (आर्यकुल का इतिहास– परिचय, पृ. ३)

प्रथम भाग के दो खण्ड तथा कुल ग्यारह अध्याय हैं। इनमें दी गई सामग्री से ही इसकी मौलिकता और महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। खंड–'अ भूगोल से संबंधित हैं जिसमें छ: अध्याय इस प्रकार है। – पहला अध्याय (साधारण विवरण) – स्थिति, सीमा, क्षेत्रफल, नदियाँ, वन, जीवजंतु, जलवायु, खनिज सम्पदा, पुरातत्व। द्वितीय अध्याय (खेती) कृषकों के विश्वास, उपज, खेती, कृषि के औजार, मवेशी, आबपाशी (जल के साधन), अकाल। तृतीय अध्याय (व्यापार), मुद्रायें (विभिन्न सिक्के) नाप–तौल ऋण–सूद, व्यापार, बाजार, मेले, सवारी, आवागमन के साधन, पुल–घाट, धर्मशालायें। चौथा अध्याय (मनुष्य) – आबादी, नगर, गांव, भाषा, शिक्षा, साहित्य, जातियाँ। पांचवां अध्याय (शासन प्रणाली) – शासन प्रबंध, राज्य, सेना, पुलिस, माल गुजारियाँ, डाक–तार। छठवाँ अध्याय (बुन्देलखण्ड के कवि – ३८६ कवियों एवं उनकी कृतियों की सूची), दूसरा खंड – ई – प्राचीन इतिहास इसमें भी पांच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय भूमिका, द्वितीय अध्याय – अनुमानकाल, तृतीय अध्याय – प्रस्तर काल, चतुर्थ अध्याय – तिब्बती, वर्मी, कोल, नाग, बुन्देलखंड के प्राचीन चिन्ह, पांचवां अध्याय (द्रविड़) – बुन्देलखण्ड में अनार्यों के चिन्ह।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि इसका प्रकाशन संवत् १९८५ (सन् १९२८) में हुआ था जिसका सम्पादन लाला भगवानदीन 'दीन' ने किया था और प्रकाशक में दीवान साहब के पुत्र कुंवर पृथ्वीसिंह का नाम अंकित है। इसकी एक हजार प्रतियाँ छापी गई थीं और मूल्य था मात्र तीन रुपया तथा पृष्ठ संख्या है ४८०। अब इसकी प्रतियाँ अप्राप्त हैं।

दीवान साहब की दूसरी पुस्तक जो प्राप्त हुई है वह है – 'आर्य देवकुल का इतिहास'। इसका भी प्रथम संस्करण संवत् १९८५ में ही प्रकाशित हुआ है। प्रकाशक वही कुंवर पृथ्वी सिंह हैं और परिचय लेखक है श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु'। इसकी भी एक हजार प्रतियाँ छपी थीं। अजिल्द का मूल्य डेढ़ रुपया और सजिल्द का मूल्य दो रुपया रखा गया था। यह पौराणिक इतिहास से संबंधित ग्रंथ है जिसमें ब्रह्मा जी से लेकर विक्रम शकारि तक का आर्यो का मूल इतिहास आर्य साहित्य के आधार पर दिया गया है। लेखक श्री प्रतिपाल सिंह ने इस ग्रंथ के बारे में लिखा है कि ''इसमें पुराणादि आर्य ग्रंथों के आधार पर ब्रह्मा जी से लेकर आर्यों का प्राचीन नैतिक, धार्मिक तथा सृष्टि संबंधी इतिहास, पौराणिक समयों, मनुष्यों, अवतारों, विविध शाखाकुलों, धर्मों आदि का आधुनिक ऐतिहासिक ढंग पर स्पष्टीकरण करते हुये पौराणिक काल के अंतिम विषय कालिक अवतार (१ विक्रम संवत) तक दिया गया है।'' (भूमिका पृ.–७) श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने अपने विचार व्यक्त करते हुए इस कृति के बारे में लिखा है कि ''हमारी समझ में पौराणिक साहित्य पर हिन्दी–संसार में अपने ढंग की यह पहली समीक्षा है।... इसमें आदिकाल से विक्रम शकारि तक का पौराणिक विमर्श सन्निहित है। पृष्ठ पृष्ठ पर आर्य संस्कृति की महतीयता अंकित है...। दैव, दानव, दिवस, नाम, मन्वन्तर कल्प, अवतार आदि की ऐसी सुन्दर प्रमाणिक विवेचना की गई है कि वह पढ़ते ही बनती है। अवतार का अध्याय तो मनन करने लायक है। तिब्बती, वर्मी, कोल, द्रविड़ और आर्य के पारस्परिक वर्णन में सुर तथा असुर का संबंध एकान्त अद्‌भुत है। जिस दृष्टिकोण से भाषा और लिपि पर विचार प्रकट किये गए हैं, वह सर्वथा ग्राह्य और पढ़नीय है। पृ. १–२,

इस ग्रंथ में कुल नौ अध्याय हैं १. आधुनिक साधारण तथा विशेष इतिहास, २. आर्य साहित्य ३. सृष्टि (ब्रह्मा), ४. आर्यदिव–वंशावली, ५. पौराणिक समय, ६. अवतार तथा महाप्रलय आदि घटनायें, ७. देवकुल तथा शाखायें, ८. ऐतिहासिक काल में लिये गए कुछ पौराणिक देशी तथा विदेशी राजवंश विक्रम शकारि तक ९ देव आर्यों का धर्म।

रमुआँ की घरबारी

– शंकर दयाल खरे

...ठाँड़ी खेत रखा रइ, रमुआँ की घरबारी।
...सास–ससुर–प्रीतम की, बा प्राँनन सें प्यारी।।
तिरछी हेरन, निंगन अनौंखी, बनक–ठनक है बाँकी।
झलक जात है घुँगटा में हो, गोरे मुख की झाँकी।
जैसी रूप और रँग बारी, बैसइ है गुनबारी।
अपने..........।।

...घर गुधना के भीतर, हाँत घुमा फटकारै।
...होत उजार खेत में, बा तुरतइँ ललकारै।
...ठाँड़ी रय मेंड़ पै दिन भर, करत खेत–रखवारी।
...........।।

रोज पिसान पसेरक पीसत, आलस तनकउ नैंयाँ।
अपने हाँतन बींन लियाबै, कंडा और नकैंयाँ।
ढोर खेत सैं खुदइ लिआबै, मनमानी तिरकारी।
अपने...........।।

...नथनियाँ नौंनी दमकै, झुँमकन–मुतियाँ चमकैं।
...डारें पाँव–पैजना, खूब खनाखन खनकैं।
...लर की करदौंनी कैसी, करया कसी निआरी।
अपने.........।।

अपनें हाँतन औ पाँउन कौ, ऊखाँ सदाँ सहारौ।
ऐसइ मैंनत करबे बारौ, मिलो उऐं घरबारौ।
पंछीलौ बाँकौ घरबारौ, धनियाँ गोरी–नारी।
अपने........।।

...हाँतन हँसिया लैंय लछारौ, चारौ काटन जाबै।
...खुस हो–हो कैं चारौ काटै, हँस–हँस कैं बा गाबै।
...लट लटकैं गालन के ऊपर, चुटिया नागन कारी।
अपने.........।।

चटक चाल चलबै चटकीली, बिछिअँन छमक सुनाबै।
हिरनी नाईं नैंनन बारी, सैंनन सें मुसक्याबै।
कोऊ काय किसोरी बाई, कोउ कात झलकारी।
अपने.............।।

–दूल्हाबाबा मार्ग, अवस्थी बंगला के पास
नौगांव, जिला छतरपुर (म.प्र.)

ऊधव गोपी संवाद

– जगदीश चन्द्र सिंघल

राखैं हम आँखन में आँखें, वे राखें न राखें।।
श्याम श्याम रटि रटि मुँख मँइयां, घुरत स्वाद में दाखें।।
सो रस घुरो रात निशवासर, वरन वरन रस चाखें।।
'कवि' बिहारी सो विसरत नइयां, मोर मुकुट की पाँखें।।१।।

ऊधव व्याहन खों न रइहैं, कै बे खाँ रह जइहै।
हम सीं गोरी गांव गुवारिन, भई न अब लौ भई हैं।।
प्रेम पंथ तरवार धार पै, हम तौ चलतइ रइ हैं।
'कवि' अवधेश चौगुने चित सो, नाम उतई कौ लइ हैं।।२।।

ऊधव तुम तौ चतुर चितेरे, सखा श्याम के नेरे।
देख देख कैं दशा दृगन की, सिसकत साँझ सवेरे।।
दुबरानी जा देह दुखन सो, करत सुरत मग हेरे।
'कविचन्द्रेश' विदा कैं गये वे, आकें वेई निबेरे।।३।।

साँसे सोसन में हम सूके, सुभग साँवरे जू के।
अफरे रात रात दिन ऊसर, मूँ कैं कात न ढूँकै।।
चढ़ो रात उन्माद 'चन्द्र कवि', बोलत कात कछूँ कैं।
कुँज करील कदम तजि जमुना, कुवरी के भये भूँ के।।५।।

ऊधव सुनत रात जे बातें, गुन गुन काटत रातें।
आवत जात भले जू तुमतौ, कैसेउ कौनऊ नाते।।
पल पल छिन छिन घरी रात दिन, सोसन बीतत जाते।
'कवि चन्द्रेश' न विसात तनकउ, विरह वेदना घातें।।६।।

ऊधव वे नौंनी वे नौने, का हँसने का रौने।
काँ लौ सहइँ रहैं मन मारे, जो होने सो होने।।
हम तौ निपट ग्वाँरिन वे हरि, चतुर सुजान सलोने।
कान लगी कविचन्द कबरी, कुबजा कारी कौने।।७।।

ऊधौ विदजैहै जे जिदना, कै सुन लैव उदना।
हम तौ ऊसइ बिदै विदाये, हमरी जानै विधना।।
हम तो जेई कात सवईसों, विदना ऐसो विदना।
'कविचन्द्रेश' निनुर वे ठांड़े, खबर लेत वे किदना।।

ऊधौ उन उरझै सों उरझैं, हम कैसे वे सुरझैं।
बातन की मरहम सो कैसें, धाव हरीरे पुरजै।।
घर बाहर वखरीं उखरीं, अटा अटारी सब गुरजैं।
'कवि चन्द्रेश' प्रेम के बिरवा, बिन घनश्याम के मुरझै।।

– हरिहर रोड, हरपालपुर

इन दो ग्रंथों की विषय सामग्री और आकार से ही दीवान प्रतिपाल सिंह की विद्वता, शोध, परिश्रम एवं व्यापक अध्ययन तथा लगन का अनुमान होता है। असाधारण प्रतिभा के धनी इस लेखक की अप्रकाशित कृतियों का प्रकाशन तथा प्रकाशित और अप्राप्त कृतियों का अनुसंधान एवं संकलन अत्यन्त आवश्यक है। देश में अनेक शासकीय, अशासकीय एवं स्वायत्त संस्थायें हैं जो साहित्य और शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य एवं योगदान करती है। तमाम विश्वविद्यालय एवं सरकारें प्रकाशन में हर वर्ष करोड़ों रुपये खर्च करती है। उनका दायित्व है कि वे 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' के शेष अप्रकाशित ग्यारह भागों का यथाशीघ्र प्रकाशन करायें। विशेषवार मध्यप्रदेश सरकार एवं बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्थित विश्वविद्यालयों को इस दिशा में पहल करना चाहिए। लेखक १२५ वें जन्मदिन पर साहित्य जगत यह संकल्प लेना देश–समाज और साहित्य के हित में होगा।

– १२, एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली के रंग, हमाए संग –

बुन्देली के रंग में डूबे पं. जैतराम धमैनिया 'जैत' से आत्मीय बतकाव

– वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

अवध की अवधी मन में ये विचार करे,
कैसे संग छूटै ई खलन खुतेली कौ।
उरग तुल्य उर्दू देश में पला रई थन,
और शासकीय मान–पान हठ हेली कौ।।
'जैत' तब बुन्देलखण्ड भूमि विचार कियो,
दीनों सहयोग इकसेत की हथेली कौ।
तुलसी–तूलिका की शरण अवधी ने गही,
सर्वश्रेष्ठ हो गई पाकें संग बुन्देली कौ।।

बुन्देलखण्ड में जन्में, पले–पुसे, रचे–पचे, बड़े भए आज के सर्वश्रेष्ठ बुन्देली भाषायी कवि श्री जैतराम धमैनियां 'जैत' सें बतकाव करवे के लानें जब हम उनके घरै पूस माह के ऊ दिना लगभग २–३ बजे के आस–पास पौंचे तो वे अपने चौंतरा पै चटाई बिछायें घाम में परे देह सेंक रए ते। उनके पासई उनके साले साहब और हास्य–व्यंग्य के बुन्देली कवि हरी मोहन सरावगी सोऊ विराजे ते। ७८–८० के बीच की उम्र वारौ जौ कवि–गायक इन दिनन बीमारी की चपेट में चल रओ है। सबई जनें जानत कै श्री 'जैत' के मौ से छन्द, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी, सैर, ख्याल आदि विधाओं के रूप में कविता नई वरन् माँ सरस्वती आय बोलतीं और सचमुच जैसई हमने अपनौ प्रश्न पूछवे कौ मन बनाओ अई हतो कै वे बुंदेली की गरिमा वतावती उपरोक्त पंक्तियाँ गा उठे, जिनें सुनकर उतै उपस्थित सवई जनें वाह–वाह कर उठे। फिर का! कहने मौका कौ कायदौ उठाकें जौ प्रश्न दाग दओ –

प्रश्न –प्रान्त की सुप्रसिद्ध रही मण्डली औ जलविहार मेला के दौरान विविध साहित्यिक–सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों के लानें सुख्यात यह मऊरानीपुर नगरी में अनेक सुकवियों–सर्वश्री स्व. घासीराम व्यास, घनश्याम दास पाण्डेय, नरोत्तम पाण्डेय 'मधु', आदि हुए हैं। इन्हीं के संगै अनेक सैर, ख्याल, लेद, फाग, मुंज तथा दिवारी गायक–रचयिता आदि भी यहाँ हुए हैं। इन सबन्नें अपनी विशिष्ठ काव्य–शैलियों द्वारा मऊरानीपुर के गौरव–वृद्धि में सहयोग करो है। वर्तमान में अपुन सोऊ उनमें से एक हैं। अपुन की ई बारे में का राय है?

हमाओ इत्तौ लम्बे प्रश्न सुन बे यों बोले – "भैया बीरेन्द्र! तुमाओ इत्तौ बड़ौ जौ सवाल भी इतैके कवियों, गायकों, फगुवारों, दिवारी गायकों आदि के लानें छोटो परत। की कीकेवारे में का कइए का न कइए। इतै कवियन के अलावा फागें, सैरें, ख्याल, लेद, मुंजें, भजन, दिवारी आदि के रचयिता औ गायक ढेरन हैं, जिनखों लोग भौतई कम जानत। जैसें भैरों लाल श्रेष्ठतम सैर गायक हते, परमानंद बुधौलिया, पंखी लहार छन्द, सवैया, कवित्त गावे वारन में श्रेष्ठ रए। सर्व श्री मुन्ना चौबे, उनके लरका जानकी और कन्हई, गया प्रसाद पाठक आदि, तुर्रा, कलगी, फाग भजन गाऊत ते। सर्वश्री गंगाधर व्यास और ईसुरी के बीच मुकाबला भी इतै होत रओ। भारी भीर जुरत ती। दूर–दूर जैसें आगरा, ग्वालियर हाथरस आदि सें सोऊ बहुतरे गायक जन इतै की फड़ मण्डलियों के मुकाबलों में भागीदारी करवे आऊत ते। भारी मजा आऊत तो, भौतई नौनो लगत तो।

ऊ दिना फिर कविवर 'जैत' जी सें हमाई जो लम्बी बातचीत हुई ऊ के मुख्य अंश ई तरां इतै प्रस्तुत करत –

प्रश्न –आप सोऊ ई परम्परा के कवियों व रचनाकारों में अपनो नाम जोड़ रए। सो कैसो लग रओ अपुन खों?

उत्तर –का कइए, तुमसें? हमें तौ भौतई नौनों लग रओ।

प्रश्न –अपुन नें कब सें लिखवौ शुरू करो तो? लिखवे के ताएं अपुन की रुचि कैसें भई? की सें प्रेरणा मिली ती?

उत्तर –मोय जां तक याद परत, मोरी पैली रचना कब लिखी गई ती जब मैं दर्जा तीन या चार में पढ़त तो। कविता की लैनें मोरे जेहन में सबाल–जुआब जैसी उठत तीं। बे मोय याद हो जात ती, जिनें चाय जिते गढ़–गा देत तो। ऊ बखत् मोरी उमर ११–१२ बरस की रई हुइये। मोरी प्रेरणा के खास स्रोत तीन रए – देवी जैत माता, हमाई जीवन–संगिनी स्व. श्रीमती सोना देवी और स्वर्गीय सीताप्रसाद श्रीवास्तव, जिनें मैं अपनो काव्य–गुरु मानत। वे अच्छे कवि हते। उनकी जा रचना मोय भौत नौनी लगत, जो मोय अबै तक याद है। –

कूंद चढ़ौ दुर्ग पै, कपीश कीस केसरी–कुमार,
करै कौतुक कलान कौ।
मारे मति–मण्डन विदारे रजनीशचरान,
कनक–भवन चूर करो रावण गुमान कौ।।
सीताप्रसाद कहें – भालू–कीस कूह करें,
धीर छूटौ मरदान कौ।
चरन की चपेट और खकेट का धाओ वीर
रावण के मुहल्ला पै हल्ला भओ हनुमान कौ।।

प्रश्न –अपने दाम्पत्य–जीवन के बारे में सोऊ बताव कछु। रचना करत में ई कारन तनक–मनक बाधा तौ आई हुइये।

उत्तर –तनकऊ बाधा नई आई। हम तौ पैलऊँ कै चुके बे तौ ई काम में मोरी प्रेरक हतीं, सहायक भी।

प्रश्न –अबै तक अपुन ने कित्तौ, का लिखौ? का–का छपो औ का अनछपो रै गओ?

उत्तर –लिखो–गुनो तौ भौंत है, जिनमें इन छः कृतियों को मैं प्रमुख मानत हौं, किंतु छपीं कौनऊ नईंया काए से न तौ मोरे पास छपवावे खों पैसा है और न मोय कोई प्रचार–प्रसार की लालसा। 'स्वांतः सुखाय' ही भौत। ये हैं, लिखौ – १. चित्रकूट–बावनी, २. भंग–पचीसी, ३. मछली–पानी, ४. लाल बहादुर–पचीसी, ५.

...न्द. ६. बांसुरी फुटकर छन्द, कवित्त सवैया, घनाक्षरी, सैर, ...आदि भी बिलात लिखे, जो अधिकांशतः मोरी याददाश्त ...गे हैं। चाय जब चाय जिते सुन लो। या सुन लइयो। ...–अपनी सर्वप्रिय रचना – छन्द आदि कौन सी है? या कौन ...?

...–मोय तौ अपनौ जौ छन्द सबसें प्यारौ लगत।

सुनिए – शारदा की खेती

नाभि कुण्ड माह अरविन्द बैधराज अम्ब!
कविता पीयूष रसधार बरसाऊतीं।।
छाड़िकें कलिकण्ठ ही सें नवल नवीने छन्द,
छन्दन कौ बीज कवि वृन्दन बुआवती।।
जान गए मातु हम लेखनी कौ लेकें हल,
मान महीपत्र पे स्वतंत्र हो चलावतीं।।
'जैत' हिम–मानस के रेत भरे खेत में,
कल्पना की खेती कर मोती उपजाउतीं।।

...–अनपुन खों नए और पुराने कवियों में को नौनो लगत औ ...?

...–घनाक्षरी, कवित्त, सवैया आदि छन्दों में कविताई करबे–गावे ...कें पढ़वे वारे सबई कवि अच्छे औ प्रिय लगत।

...न –जैसें?

...–कविवर पद्माकर, भूषण, पजनेश, काली कवि, गंगाधर ...स, नाथूराम माहौर, घनश्याम दास पाण्डेय, घासीराम व्यास ...दि। इनकी कविता, कविता हती।

...न –अपुन की इन बातन सें तौ ऐसो लगत कै जैसें अपुन ...वल बुन्देलखण्ड और बुन्देली में लेखन तक ही सीमित रै गए।

...र –नईं! भैया वीरेन्द्र नईं, हिन्दी तौ हमाई राष्ट्रभाषा आय, ऊ ...के कवियों – सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, रहीम, जायसी, रसखान ...दि सहित अन्य अनेक कवियों की हम कैसें अनदेखी कर सकत। ...वे तौ भौत बड़े कविगण आंय। भला उनकी बराबरी हम कैसें कर ...कत? कविवर भूषण, पद्माकर जैसे कवियों कौ नाम तौ हमने ...लऊ गिनाओ।

...न –अपुन ने आधुनिक हिन्दी कवि तौ एकऊ नई गिनाओ। सो ...ए।

...र –अब जे बातें इतईं रन दो। फिर कभंऊ करबी जे बातें।

...न –अच्छा! खैर। अब तनक नई कविता के बारे में। इन दिनों ...ई कविता यानी मुक्तकाव्य जैसे अतुकांत कविता, मुक्त छन्द आदि ...में कविता करिवे–लिखने की परम्परा भौत बढ़ गई है। ई वारे में ...पुन की का राय है?

...र –ई बारे में हम कछु नई कात। चाय जौ समझ लओ जाय ...कै हम कछु नईं जानत। हाँ, इतनौ जरूर कंय चाऊत कै जा ...कविताई मोय तनकऊ नईं भाऊत–पढ़बो–लिखवो तो दूर, सुनो ...क नईं चाऊत– 'पद्य की है बल्दियत औ गद्य की पैदाइश।'

...न –हिन्दी हमाई राष्ट्रभाषा है – अपुन ने भी ई ए सबई मानो ...औ सचमुच में है भी किन्तु मोय लगत कै कागजन में तौ जरूर ईए राष्ट्रभाषा बना या लिख दओ–गओ पै मान–सम्मान तौ वैसो अब तक नईं मिलो।

उत्तर –जाबात भौत सई कई तुमने, वीरेन्द्र! राष्ट्रभाषा होकें भी हिन्दी खों मान–सम्मान उत्तौ नई मिलो, जित्तौ मिलें चइयत तौ। ई में हम–तुम सब जनन कौ भी कम दोष नईंया, जी को खास कारण हमें तौ जौ लगत् कै भलई अंग्रेज हमाए देश सें चलो गओ होय पै अंग्रेजियत् तो हम आज भी ओढ़े हुए हैं। हमें जा मानसिकता तो छोड़ने अई पड़ै। जौ तबईं हो सकत जब हम अपनी माँ की तरह अपनी मातृभाषा को मान–सम्मान देने लगेंगें।

प्रश्न –मातृभाषा! मातृभाषा सें अपुन कौ मतलब?

उत्तर –मातृभाषा सें हमाऔ मतलब है बुन्देली से; जिये हम अपनी प्रांत भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित और सम्मानित कर चुके हैं, वह तो हिन्दी ही है। बुन्देली खों तो हम अपनी मातृभाषा ही कैहें, जो हमारी राय में हिन्दी की बेटी है। जब हम सब जनें अपनी मातृभाषा–बुन्देली को स्नेह–सम्मान दे हैं तबईं तौ बुन्देली औ ऊ की माँ हिन्दी कौ सम्मान बढ़ है।

प्रश्न –पर हम तौ प्राय: जौ देखत आरए कै बुन्देली खों तौ बुन्देलखण्डी ही उत्तौ मान–सम्मान नईं देत जित्तौ अंग्रेजी खों–हिन्दी तक खों नईं देत। बुन्देली खों तौ वे गंवारू या असभ्य बोली या भाषा कै देत। बुन्देली को जितनी हिकारत औ उपेक्षा से हम–आप सब देखत उत्तौ तौ कोऊ अपनी बोली या भाषा खों न देखत हुइये। का कानें अपुन खों ई विषय में?

उत्तर –बिलकुल सई कै रए वीरेन्द्र, तुम! बुन्देली की जो उपेक्षा और दुर्दशा बुन्देलखण्ड वासियों द्वारा हो रई ऊसें तौ स्वयं शर्म या लज्जा ही शर्मा या लजा जैहै। हम सवै तौ ई सम्बंध में जरूर कछु ऐसे प्रयास करने परहें जी से बुन्देली साहित्य की ऐसी वृद्धि और विकास होवे कै ऊए यानी बुन्देली खों भाषा के स्थान पै प्रतिष्ठित करो जा सके। बुन्देली की मधुरता औ सरसता के बारे में कविवर मुंशी अजमेरी जी ने तो यहां तक कै दओ तो कै बुन्देली इतनी मधुर और सरस है कि बृज और अवधी इसकी बराबरी नहीं कर सकतीं।'

प्रश्न –हाँ, भाई साब! जा सोऊ अपुन ठीक कै रए। हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध सम्पादकाचार्य स्वर्गीय पं. बनारसी दास जी चतुर्वेदी, जो स्वयं बृजवासी थे, ने स्व. मुंशी अजमेरी, जी से सहमति जताऊत भये 'मधुकर' पाक्षिक के सम्पादकीय में इतै तक लिखो तो कै बुन्देली तौ इतनी सरस औ मधुर है कै बृज तौ ऊकौ पानी भर है पर ऊ कौ दुर्भाग्य अई ऐसौ है कै बुन्देलखण्ड के लोग तौ बुंदेली खों गँवारू भाषा कात जबकि मैं तौ जेई कैहौं कै गँवारू भाषा नई भलई कैबे वारे ही गंवार....। अब अपुन का सोचत– 'कात ई बारे में?

उत्तर –अब हम का कंय! इन बड़े साहित्यकारन के आगें। उनने सबई कछु तौ कै दओ। हम तौ जेई कै सकत कै बुन्देली की मिठास औ महत्ता अपनी सहेलियों – बृज औ अवधी से तनकऊ कम नैयाँ। हम तौ जेई कै सकत –

हिन्दी हिन्द हिन्दुओं की रक्षक रही जो सदा
भक्षक कुरीतियों की उपमा उजेली में,
और सब प्रांतन की भिन्न–भिन्न भाषा भली
दुहरी रसधारा इस भाषा अकेली में।
'जैत' वीरता में वीर–रस की पताका लिए
सुभग श्रृंगार श्रेष्ठ वांचो अलबेली में,
चन्द्र सौ प्रकाश सुधा–सिंधु सौ मिठास भरो
विकास पुन्य प्रेम कौ भाषा बुन्देली में।।

ऐसो अई एक दूसरो छन्द सोऊ सुन लेव –

मृदुल महान शब्द यमक श्लेष भरे,
अर्थ में अनोखे लगें भाव उर आनिए।
मुहरा सौ मंजु–मंजु कंज सम जामें 'जैत',
ढेर के सुढेर मिलें मनके बखानिए।।
गंगाधर, कालीकवि, ईसुरी, बिहारी, व्यास
माहुर, घनश्याम के सुछन्द पहिचानिए,
प्यारी बुंदेली बृजभाषा को सहेली सखी,
रस की अलबेली के रसीले छन्द छानिए।

–'बुन्देली गरिमा से'

प्रश्न –अपुन ने अबै कछु देर पैला कई ती कै 'आधुनिक नई कविता मोय तनक ऊ नई भाऊत। सो काय?' 'प्रसाद', पन्त आदि कवियों के बारे में तौ क औ कछु।

उत्तर –ई बारे में हम का कयें तुमसें। हाँ एक संस्मरण सुन कै मोरी भावना खों समझ लइयो।

एक बार मैं आकाशवाणी, छतरपुर अपुनी कविताई की रिकार्डिंग के लाने गओ तो तबई एक अधिकारी ने हमसें पूंछो – "आपने जयशंकर प्रसाद को पढ़ा है!"

"पढ़ो है, खूब पढ़ो है, समझो भी खूब अच्छी तरां है पै पसन्द नई हैं।"

उननें फिर पूंछो – "का! अपुन उन (प्रसाद) जैसी कविता लिख सकत?"

'काए, नई लिख सकत जब अपुन छतरपुर में रै कैं बुन्देली बोल सकत तौ हम 'प्रसाद' जी खों पढ़–समझ कें हिन्दी में उनकी (प्रसाद जी) नाईं कविता काए नई लिख–पढ़–सकत। लो सुन लेव।'

सांझ ही सें उषा ने सूरज का किया है साथ,
डाह उपजावे हेतु चन्द्र मिस नारी कौं,
पाकर एकांत अंशुमाली ने खेली फाग,
लालकर दीनो प्रभात सुकुमारी कौं।
'जैत' कवि दोनों के दोनों भए सराबोर,
भेद मिल जावे न कहीं संसारी कौं,
नील नभ सागर के पूरब कौ पाकें घाट,
सूरज मुख धोवे लाल उषा धोवे सारी कौ।।

बस फिर का उनके मौं से तौ 'वाह–वाह' के बोल निकर परे औ उतै मौजूद सबई जनैं तारीफ करत, नई अघा रए ते। अब, ई कौ मतलब तुम जौ न लगा लइओ, वीरेन्द्र जी कै पंत औ 'प्रसाद' जैसे कवियों की हम बुराई आय कर रए। बे तो हिन्दी कविता की विभूतियों ही आंय। उने हम कां पा सकत। बस।

ई 'बस' के संगे अई पं. जैतराम जी धमैनिया 'जैत' सें हमाव जौ बतकाव पूरौ भओ।

(यह साक्षात्कार जैतराम धमैनिया 'जैत' का अंतिम है क्योंकि इसके एक सप्ताह बाद उनका देहावसान हो गया– सम्पादक)

– १४३, कुरैंचा नाका, मऊरानीपुर
झांसी उ.प्र.

बुन्देली गीत –

बच जाते रजऊ

–महेश चन्द्र अग्रवाल 'आनन्द'

बंश बढ़ो विपद बढ़ी, मोंड़ी मौं बायें खड़ी
बच जाते रजऊ कजन बेल न बढ़ाउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
बब्बा हां नतबउ ओ पंती को उमाओ चलो
हलके में हलके को हलकी संग व्याओ घलो,
बालपन में ज्वानी हां जो न बुलाउते
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
ओरी की ओली में खेलतते खात ते,
लाड़ के लड़ेते अनरुअन में रात ते,
बिना पकी बेरी जा कच्ची न हलाउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
बाबुल की बगिया में सेंमन सी बेल फली,
कैसे कहों फसल संग बिटियन की रेल चली,
हाट उठें होस आओ रै गये पछताउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
जब भये रसवारी के भौंरा का लेत अब,
राम ने ढकेली जे गारी का देत अब,
तातो दूध भात कजन फूंक फूंक खाउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
एक रोउत रोटी खां दूसरी उगारी है
बिना दवा दारू के पसरी बीमारी है
हरे भरे बाग खां तुषार न लगाउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
काया सब बिगर गई घर की घरवारी की,
कोयल सी बिला गई बगिया के माली की,
कमल की कली खां गदुल न बनाउते,
तनक गम्म खाउते, तो चैन की बजाउते।
खीर खाई सौंज में महेरी सोउ लेत जाव,
हंसी ख़ुशी राने तो अबऊं कछु चेत जाब,
भूले भुन्सारे के संजे घर आउते,
तनकऊ पछताउते, तो चैन की बजाउते।

– हरिहर मार्ग, हरपालपुर

जिनकी ऋचाएँ विन्ध्याकाश में अनुगुंजित हैं : शश्वती

– आचार्य दुर्गा प्रसाद शुक्ल

जिनकी ऋचाएँ विन्ध्याकाश में अनुगुंजित है उनमें एक हैं चेदि की महिला दृष्टा 'शश्वती'। चेदि यानी चन्देरी, प्राचीन भारत में चेदि राज्य की राजधानी रही है। चेदि का इतिहास अति गौरवपूर्ण रहा है। ई.पू. चौथी शती में यहाँ 'चण्डप्रद्योत' का यश फैला है। महाभारत के अनुसार चेदि के पास दशार्ण जनपद नल की पत्नी दमयन्ती की जन्मभूमि थी। चेदि का राजा तब परम प्रतापी वीर वाहु था जो दमयन्ती का मौसा था। अपने दुर्भाग्य के समय में दमयन्ती कुछ दिनों तक अपनी मौसी के पास चेदि में रही थी। उस समय चेदि राज्य समृद्धि से भरा–पूरा था। भारत के अनेक भागों के 'सार्थवाह' व्यापार से लाभ कमाने चेदि में आया करते थे। इन्हें चेदि राज्य सुरक्षा और सुविधाएँ प्रदान करता था और व्यापारी चन्देरी (चेदि) का गुणगान करते हुए थकते न थे।

महाभारत काल से भी पहले, ऋग्वेद के समय में यह चेदि गण राज्य अति गौरवपूर्ण भूमि के रूप में प्रख्यात थी। विद्वानों और वीरों से सम्पन्न चेदि गणराज्य की बड़ी महिमा थी। कहा जाता था कि ''जिस मार्ग से चलते थे चेदि गणराज्य के वासी उस मार्ग से चलने का सामर्थ्य दूसरों में नहीं था। चेदिवासियों से अधिक दयालु, दानी, वीर और विद्वान उस समय के किसी भी दूसरे गणराज्य में नहीं थे।''

मा कि: एना पथागात् येने में यन्ति चेदय:।

अन्यो नो सूरि रोहते भूरिदावत्तरोजन:।।

(ऋग्वेद ८।५।३९)

इसी काल में चेदि गणराज्य के गण–प्रधान 'प्लायोगि' नाम के राजा थे। प्लायोगि विद्वान और वीर योद्धा थे। उनका पुत्र था 'आसंग'। 'आसंग' अपने पिता के समान श्रेष्ठ योद्धा और कर्म कुशल था। आसंग की बुद्धि प्रखर थी और हाथ खुले थे। वह ऋषियों को मणिमेखलाएँ, मृगचर्म और यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तुओं को दान में देता, सामान्य याचकों को पुष्ट बैल, सुन्दर दुधारू गायें और अन्य उपयागी वस्तुएँ प्रदान करने सदा तत्पर रहता। राजकुमार की दानशीलता सुगन्ध बनकर चारों ओर फैल रही थी। उसके युद्ध कौशल की चर्चाएं चारों ओर हो रहीं थी। राजकुमार अपने समकालीन राजकुमारों में श्रेष्ठ माने जाने लगे थे। राजकुमार का विवाह ऋषि प्रवर अंगिरा की पुत्री शश्वती से सम्पन्न हो गया।

तेजस्वी ऋषि अंगिरा और उनकी परमतपस्विनी पत्नी विश्ववारा की बेटी 'शश्वती' का आसंग से मिलन सुगन्धि और स्वर्ण का संयोग था। पर निष्ठुर क्रूर काल बली इस सुखद संयोग को सह नहीं पाया। आसंग को युवावस्था में ही एक बड़ी व्यथा झेलने पड़ी। किसी अज्ञात रोग से उसका पुरुषत्व नष्ट हो गया। आसंग जैसे वीर बली की इससे बड़ी व्यथा भला और क्या हो सकती थी। रोग के लक्षण बाहर भी दिखने लगे। लोगों ने फबतियाँ कसना शुरू कर दिया। पर पीड़ा में रस लेने वाले कहते

''अध: पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।

मा ते कश प्लकौ दृशन्'' (ऋ. ८।३३।१९)

'अरे लम्बे लम्बे डग भरते हुए मत चलो। ऊपर मत देखो, झुककर चलो। कपड़े ऐसे पहनो जिसमें तुम्हारे पैरों की पिण्डलियाँ दिखें नहीं। तुम अब मर्द नहीं हो, तुम अब एक औरत हो।''

राजकुमार ऐसी बातें सुनता, उसका मन दु:खी हो कुण्ठा से भर जाता। भीतर की भट्टी भीतर ही भीतर भभकती और फिर धुंधुवाने लगती थी। आसंग इस आग में भीतर ही भीतर सुलग रहा था।

'शश्वती' ने अपने पति आसंग की इस पीड़ा को पहचाना। व्यथा को अनुभव किया। वह अग्नि स्वरूप अंगिरा की पुत्री थी। परमर्षि अत्रि–सुता विश्ववारा ऋषिका की बेटी थी। उसने इस दुरित के निवारण हेतु कण्व–वंशी 'मेध्यातिथि' ऋषि की देखरेख में कठोर साधना की। शश्वती की चेतना अपनी पूर्णता में जाग उठी। जाग्रत चेतना के संस्पर्श से आसंग की मूर्छित चेतना ने नव जागरण प्राप्त किया। आसंग को न केवल खोया हुआ पुरुषत्व प्राप्त हुआ अपितु वह असाधारण दिव्य दृष्टि से सम्पन्न हो गया। शश्वती और आसंग दोनों ही महर्षि कण्व के प्रशस्त कुल में, दृष्टा ऋषियों में गण्यमान हुए।

इस तेजस्वी महिला दृष्टा की ऋग्वेद में 'एक ही ऋचा' मिलती है। शश्वती की यह ऋचा अद्भुत हैं अनुभव की परिपूर्णता, दृढ़ आत्मविश्वास और दृष्टा के दिव्यज्ञान से दीप्त यह ऋचा ऋग्वेद में आठवे मण्डल के प्रथम सूक्त में पठित है। यह ऋचा उस प्रश्न का उत्तर है जो प्रश्न पूर्व में ऋषियों के सामने एक अनबूझी पहेली था।

ऋषिवर दीर्घतमा ने पूछा था कि ''क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने पाया है, उस तत्व को जो इस स्थूल जगत् को धारण करता है? जानकारों ने दीर्घतमा ऋषि के इस प्रश्न को अनुत्तरित पहेली यानी 'ब्रह्मोद्य' नाम दिया था। इसी दीर्घतमा के प्रश्न का उत्तर चेदि की 'शश्वती' ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में दिया है उसने कहा –

''अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तात्, अनस्थ: उरु अवरम्बमाण:।

शश्वती नारी अभिचक्ष्य आह, सुभद्रं अर्य भोजनं विभर्षि।।''

(ऋ. ८।१।३४)

अर्थात् ''देखा है, सब ओर निहार करके देखा है। यह शश्वती नारी कह रही है कि एक तत्व है। प्रथम दृष्टि में वह स्थूल रूप से दिखता है। पर वह तत्व स्थूल रूप से परे है। केन्द्र रहित है वह। वह सर्वव्यापी है। वह तत्व मंगलमय है। और यही है वह तत्व जो समस्त भोग्य पदार्थों को धारण करता है।''

शश्वती ने अनुभव करके साक्षात् किया था कि प्रत्यक्ष विश्व के पीछे एक और सूक्ष्म विश्व है। इस स्थूल शरीर के पीछे

भी एक सूक्ष्म शरीर है। दृश्य ब्रह्माण्ड के पीछे भी एक अदृश्य सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है और इन सब के पीछे एक सर्वव्यापी सूक्ष्म तत्व है। यह सूक्ष्म तत्व बुद्धि से परे है, पर तप के द्वारा प्राप्त शुद्ध दिव्य मन से मनुष्य इस तत्व का साक्षात् कर सकता है। शश्वती अनुभूति की पूर्णता में ही बोलती है – *'शश्वती नारी अभि चक्ष्य आह'* यानी शश्वती नारी ने सम्यक् रूप से दर्शन किया है। यह जो शश्वती कह रही है वह यों ही नहीं कह रही है। पहले सम्यक् दर्शन किया है तब कह रही है। यह अनुभूति की चरम स्थिति है। महत् ब्रह्म के पहचानने की स्थिति है यह। वेदव्यास ने देवी भागवत में इसी को 'सूत्रम्' की संज्ञा से सूचित किया है (देवी भाग. ३।७।३९, ४०, ४१) इसी को अथर्ववेद में कुत्स ऋषि ने कहा –

यो विद्यात् सूत्रम् विततम्, यास्मिन्नोता प्रजा इमाः।
सूत्रे सूत्रस्य यो विद्यात्, स विद्यात् ब्रह्मणं महत्।।

अर्थात् ''सत्य दृष्या है वह जो जानता है उस अदृश्य 'सूत्र' को। उस अदृश्य सूत्र को जो अन्तर्निहित है उस दृश्य स्थूल सूत्र में जिसमें सारी सृष्टि निहित है।''

इसी सूक्ष्म सूत्र का साक्षात्कार किया था 'शश्वती' ने। आज भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुए कदम उसी दिशा में है। भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुए कदम उसी दिशा में हैं। भौतिक विज्ञान को अब कुछ अन्दाज हो रहा है। फ्रीमैन डायसन ब्रह्माण्ड विज्ञान वेत्ता ने 'द थ्योरी ऑफ एवरीथिंग' में इस ओर प्रयास किया है और Infinite in all direction इस विचार को कुछ आगे बढ़ाया है।

ऋषि प्रज्ञा से निर्मल दृष्टि और कठोर तप से प्राप्त दिव्य मन से 'शश्वती' ने काल की कक्षा पार करके कभी जो देखा था वह विज्ञान घन परम तत्व ही था। ऐसी चेदि गणराज्य की इस मन्त्र दृष्टा महिला के जन्म से विन्ध्य भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' गरिमा से मण्डित हुई है।

– ५, कालिदास, नूतन विहार
टीकमगढ़ (म.प्र.)

एड्स सें बचो भइया हरौ

–वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'

प्रान प्यारे हैं, इन्हैं न गँवाइयो, 'वीर' कहूँ जी न ल्याइयौ।
हमने जानी है, तुम सबै जनाइयो, पिया कहूँ जी ल्याइयौ।।

थोरे छनकन सुख के कारन,
जीवन भर के दुःख के भारन,
साँसत में न पारौ प्रानन।
कभउँ पर नारी ढिग न कहूँ जाइयो, पिया......।।१।।
दूजौ कारन सुन मैं धाई।
बीमारी में सुइ लगवाई।
पैलउँ काऊ कें लग आई,
ऐसे कामन में डिस्पोजल ल्याइयो, पिया......।।२।।
नाऊ ढिग तुम 'शेव' कराते,
धोखे में तनकउ छिल जाते
वे कउँ ब्लेड नये न लगाते।
ई में सावधानी बहुतै बरताइयो, पिया......।।३।।
हे प्रभु करियो कभउँ न ऐसी
खून–चढ़ाउन विपदा जैसी
तन–मन–धन की ऐसी–तैसी।
देख एड्सरोधी 'ब्लड' तुम चढ़वाइयो, पिया......।।४।।
ऊपर के सबरे जे कारन
बनते एड्स होन के लच्छन
इनसें बचियो सुन सब सज्जन।
'एड्स' ला–इलाज, घातक तुम जानियो, पिया......।।५।।

– उटियाँ, पो. कबरई/धरौन
जिला महोबा उ.प्र.

बुन्देली उत्सव की कलाकार अवन्तिका दुबे ने विदेश में मचाई धूम

डॉ. अशोक दुबे तथा श्रीमती लक्ष्मी दुबे की बेटी अवंतिका ने अपनी कलात्मक उपलब्धियों से बुन्देलखण्ड के साथ बुन्देली उत्सव बसारी का नाम रोशन किया है। इसने बाल्यकाल से बुन्देली उत्सव के मंचों पर अपनी प्रभावी प्रस्तुतियों से मन मोहा। अवंतिका ने शास्त्रीय संगीत व नृत्य में शिक्षा ग्रहण कर अभिनय का प्रशिक्षण भी लिया



है। इन्होंने विभिन्न दूरदर्शन चैनलों पर प्रस्तुतियाँ देने के साथ अनेक कलामंचों पर कलारसिकों की प्रशंसा अर्जित की है। विगत दिनों कु. अवंतिका ने बुन्देली संस्कृति दूत के रूप में ताइवान और किनमन देशों की यात्राएँ कर अपने कला कौशल का प्रदर्शन किया। अवंतिका को उज्ज्वल भविष्य हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ।

ओरछेश वीरसिंह जू देव 'द्वितीय' द्वारा सन् १९३४ में स्थापित –

श्री वीरसिंह देव पुरस्कार का इतिहास एवं व्यथा कथा

– हरिविष्णु अवस्थी

बुन्देलखण्ड भू–भाग में स्थित सबसे प्राचीन ओरछा राज्य अपनी स्थापना सन् १५३१ ई. से ही हिन्दी बुन्देली भाषा साहित्य के विकास में प्रवृत रहा।

ओरछा राजवंश में अनेक राजा महाराजा एवं महारानियां स्वयं अच्छे कवि एवं कवयत्रियाँ रहीं। इसी ओरछा के अंतिम शासक श्री वीरसिंह जू देव 'द्वितीय' दिनांक ३ मार्च सन् १९३० ई. को ओरछा राज्य टीकमगढ़ की गद्दी पर बैठे। अपने शासन के प्रथम दिन ही उन्होंने जो आज्ञाएं प्रकाशित कीं उनमें से एक यह भी कि ''राज्य की भाषा शुद्ध हिन्दी होगी'' थी।

ओरछेश वीर सिंह जू देव 'द्वितीय' बुन्देली, बृजी एवं हिन्दी के उन्नयन हेतु कटिबद्ध थे।

श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद आपके ही संरक्षण में १५–४–३० तदनुसार वैशाख कृष्ण द्वितीया सं. १९८७ वि. में रायबहादुर पं. श्री श्याम बिहारी जी मिश्र एम.ए. दीवान (अब प्रधानमंत्री) ओरछा राज्य द्वारा संस्थापित हुई थी।[1]

श्री देवेन्द्र पुस्तकालय श्रीमान ओरछा नरेश के कर कमलों द्वारा श्री युवराज राजा बहादुर श्रीमान देवेन्द्र सिंह जी के नाम से १८–१०–३० को स्थापित हुआ। इसमें भी प्रमुख विद्या प्रेमियों ने पुस्तकों द्वारा पूर्ण सहायता पहुँचाई।[2] साहित्य के अध्ययन अध्यापन हेतु श्री देवेन्द्र साहित्य विद्यालय की स्थापना १ सितम्बर सन् १९३० में ही हुई जिसमें छात्रों को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की साहित्यिक परीक्षाओं हेतु तैयार किया जाता था। इस प्रकार वीरसिंह जू देव द्वारा हिन्दी भाषा के उन्नयन हेतु जो कुछ भी संभव हो सका निरंतर किया जाता रहा।

सं. १९९० वि. में द्विवेदी अभिनंदन उत्सव के सभापति आसन से काशी में महाराज ने २०००/– वार्षिक साहित्य सेवा के लिए राज्य की ओर से देने की घोषणा की थी।[3]

ओरछेश वीरसिंह जू देव द्वारा काशी में की गई उपरोक्त घोषणा को मूर्त रूप प्रदान हेतु उन्होंने दिनांक १९ जनवरी सन् १९३४ को श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़ के विशेषाधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए ''श्री वीरसिंह देव पुरस्कार'' संक्षिप्त नाम देव पुरस्कार की घोषणा निम्नलिखित शब्दों में की थी–

श्री वीर सिंह देव पुरस्कार की घोषणा

श्री वीर बसन्तोत्सव कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) सं. १९९० वि. के अवसर पर

श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़ के विशेषाधिवेशन के सभापति –

श्रीमत्सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह देव, ओरछा–नरेश का भाषण

देवियों और सज्जनो! आज बसन्तोत्सव के अवसर पर मैं पुनः आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ। बुन्देलखण्ड की भूमि से जन्म सम्बन्ध होने के कारण और परम्परागत संस्कारों के प्रभाव से मेरे मन में भी साहित्य सम्बन्धी प्रेम होना स्वाभाविक है। उसी प्रेम की परितृप्ति के लिए आप लोगों ने जो कष्ट उठाया है उसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। ऐसे अवसरों पर कुछ असुविधा और कष्ट होना अनिवार्य है परन्तु आशा है कि आप मेरे भावों का विचार करके उसे ध्यान में लायेंगे। यह तो मैं कैसे कहूँ कि आज कल का समय और इस प्रदेश का प्राकृतिक निरीक्षण आपको इस कष्ट को भुलाने में सहायक होगा।

अपनी भाषा की सेवा करना हम सबका कर्त्तव्य है। हमारी भाषा ही हमारे भावों और संस्कृति की धात्री है। इसी उद्देश्य की किंचितपूर्ति के लिये आचार्य द्विवेदी जी के अभिनन्दन के अवसर पर काशी में मैंने कुछ पत्र पुष्प राज्य की ओर से वार्षिक रूप में भेंट करने का निश्चय किया था। और यह भी निवेदन किया था कि इसके नियम इस बसन्तोत्सव पर प्रकाशित किये जावेंगे। तदनुसार आज मैं उन्हें आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

'श्री वीरसिंह देव पुरस्कार'

(क) इस पुरस्कार का नाम 'श्री वीरसिंह देव–पुरस्कार' अथवा संक्षिप्त नाम 'देव–पुरस्कार' होगा।

(ख) यह दो सहस्त्र रुपये वार्षिक का होगा।

(ग) इस पुरस्कार के निर्णायक निम्नानुसार होंगे।

१. पूज्य आचार्य पं. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी।
२. पूज्य पं. मदन मोहन जी मालवीय
३. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक प्रतिनिधि।
४. नागरी प्रचारिणी सभा काशी का एक प्रतिनिधि।
५. मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर का एक प्रतिनिधि।
६. नागरी प्रचारिणी सभा आगरा का एक प्रतिनिधि।
७. हिन्दी प्रचार सभा मदरसा का एक प्रतिनिधि।
८. श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़ का एक प्रतिनिधि।
९. ओरछा राज्य का एक प्रतिनिधि।

(घ) प्रत्येक संस्था प्रति वर्ष अपने प्रतिनिधि का चुनाव अपने सार्वजनिक वार्षिक अधिवेशन में अधिक से अधिक जून महीने के प्रथम सप्ताह तक कर दिया करेगी और उसकी सूचना प्रधान कार्यालय श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़ को तुरन्त भेज देगी।

(च) यह पुरस्कार वर्ष के ब्रजभाषा और खड़ी बोली के सर्वोत्तम पद्यात्मक काव्य ग्रन्थ के लिये क्रम से आँतरे वर्ष दिया जाया करेगा, अर्थात एक वर्ष ब्रजभाषा के ग्रन्थ के लिये और दूसरे वर्ष खड़ी बोली के ग्रन्थ के लिये।

(छ) यह पुरस्कार कुण्डेश्वर के बसन्तोत्सव के अवसर पर

प्रतिवर्ष दिया जायेगा।

(ज) प्रकाशित पुस्तक की ११ प्रतियाँ कार्यालय में आनी चाहिए।

(झ) इस संस्था का प्रधान कार्यालय श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़ रहेगा।

(ट) निर्णायक अधिक समिति से इसका निर्णय करेंगे यदि सम्भव हो तो वे निर्णायक एक स्थान पर मिलकर अपना निर्णय करें अथवा पत्र व्यवहार द्वारा।

(ठ) इन नियमों में परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन की आवश्यकता पड़ने पर राज्य सर्व साधारण की सूचनाओं पर सहर्ष विचार करेगा।

(ड) इस संस्था के इन्हीं नियमों के सिद्वान्त के अनुकूल उपनियम बनाने का अधिकार श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद को रहेगा।

मैं जानता हूँ कि यह भेंट बहुत ही साधारण है परन्तु मातृ मन्दिर में जहां मणि—माणिक्य अर्पित किये जाते हैं वहां 'पत्र' पुष्प फल 'तोय' के लिये भी स्थान होता है और मेरा तो यह विश्वास है कि यदि वे श्रद्धा पूर्वक समर्पित किये जाएं तो उसी प्रकार स्वीकृत होते हैं जिस प्रकार कोई बड़ी से बड़ी भेंट पूजा, अंत में अपने प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे शक्ति प्रदान करें जिससे मैं भविष्य में और भी कुछ लेकर इस मन्दिर में निरन्तर उपस्थित होता रहूँ।[४]

श्री वीरसिंह देव पुरस्कार हेतु प्राप्त ग्रंथों का मूल्यांकन निर्णायक समिति के सदस्यों द्वारा कुशलता बारीकी व बेबाकी से किया जाता था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो पुस्तकों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देते हुए लिखा कि 'प्रथम श्रेणी की रचना तो एक भी नहीं है। रचियता अवश्य प्रथम श्रेणी के हैं।'[५]

पुरस्कार हेतु प्रथम श्रेणी की रचनाएँ कैसे प्रापत हों? इस सम्बन्ध में वर्ष १९४३—४४ के देव पुरस्कार निर्णायक मण्डल के ओरछा राज्य द्वारा प्रतिनिधि के रूप में मनोनीत श्री रमाशंकर शुक्ल एम.ए.एल.एल.बी. अर्थ मंत्री ओरछा राज्य द्वारा दिया गया सुझाव दृष्टव्य है —

देव पुरस्कार के निमित्त आई हुई पुस्तकों का अवलोकन किया। वास्तव में बात यह है कि आई हुईं पुस्तकें सब मिलाकर निम्न श्रेणी की है और इस तरह की पुस्तकों पर इतना बड़ा पुरस्कार देना, हिन्दी के इस प्रसिद्ध पुरस्कार की शोभा घटाना है। मेरी अल्पबुद्धि में नियत समय के अन्दर प्रकाशित पुस्तकें परिषद को स्वयं ही माँगना चाहिये। केवल लेखकों द्वारा भेजी गई पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। पुस्तकों की संख्या तथा उसकी सामग्री को देखकर यही शंका होती है कि या तो देव पुरस्कार का महत्व बहुत कम हो गया है या फिर पुरस्कार वितरण की शैली दोषपूर्ण है। आशा है इस ओर ध्यान देने की कृपा की जायेगी।[६] ओरछेश वीरसिंह जू देव द्वारा घोषित पुरस्कार के नियमों एवं श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़ द्वारा घोषित उप नियमों के अन्तर्गत इस पुरस्कार का दिया जाना सन् १९३५ (सं. १९९१) से प्रारंभ हुआ।

प्रथम वर्ष यह पुरस्कार निर्णायकों द्वारा प्रथम स्थान प्राप्त २००० श्री दुलारे लाल भर्गव को उनके बृजभाषा के मुक्तक काव्य 'दुलारे दोहावली' पर प्रदान किया गया। नियमानुसार द्वितीय आने वाली पुस्तक 'रस कलस' (श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध) को सम्मान पत्र प्रदान किया गया।

सन् १९३६ (सं. १९९२) यह पुरस्कार खड़ी बोली के काव्य 'चित्ररेखा' (डॉ. रामकुमार वर्मा प्रयाग विश्व विद्यालय) पर दिया गया। तथा द्वितीय स्थान कविवर श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के 'नूरजहाँ' नामक काव्य के लिये प्रदान किया गया।

सन् १९३७ में पुनः ब्रजभाषा के महाकाव्य 'रामचन्द्रोदय' को (श्री रामनाथ जोतषी) यह पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस वर्ष द्वितीय स्थान 'ब्रज भारती' काव्य को मिला।[७]

सम्वत् १९९४ वि. (१९३८ ई.) में पुरस्कार योग्य पुस्तक का अभाव रहा। अतएव पुरस्कार के इस नियम के अनुसार कि, जिस वर्ष पुरस्कार योग्य ग्रन्थ न हो उस वर्ष की पुरस्कार निधि उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन में लगाई जाय, पुरस्कार की संचालक संस्था श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़ ने एक एक हजार रुपया हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को प्रकाशनार्थ प्रदान किया।

सभा ने इस निधि को सधन्यवाद स्वीकारते हुए निश्चय किया कि इससे देव पुरस्कार ग्रंथावली का प्रकाशन किया जाए, जिसमें कला और विज्ञान आदि की अच्छी पुस्तकें सुलभ मूल्य पर निकाली जायें। इस सम्बन्ध में हमें जैसे लेखकों का सहयोग प्राप्त हो रहा है उससे पूरी आशा है कि उक्त सात्विक दान द्वारा प्रसूत यह ग्रंथावली अपने उद्देश्यों में सर्वथा सफल होगी।''[८]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने अपने अपने यहाँ से देव पुरस्कार माला नाम से एक सीरीज प्रकाशित की। काशी नगरी प्रचारिणी सभा ने इस माला में सुप्रसिद्ध कला मर्मज्ञ श्री रामकृष्ण दास की —

१. भारतीय चित्र कला

२. भारतीय मूर्ति कला

नामक पुस्तकें प्रकाशित कीं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'देव सुधा' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें हिन्दी के रीतिकालीन महाकवि 'देव' की कविताओं का संग्रह था।[९] हिन्दी की बृहत्त्रयी के सर्व श्री निराला, पंत, एवं श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य संकलन 'आधुनिक कवि' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए।[१०]

इसके बाद सन् १९३९ में ब्रजभाषा के काव्य पर पुरस्कार दिया जाना था। परनतु विचारार्थ आई पुस्तकों में से एक भी इस योग्य न समझी गई जो निर्णायकों के पास भेजी जा सके। अतः इस वर्ष पुरस्कार नहीं दिया गया।

सन् १९४० में यह पुरस्कार खड़ी बोली के ख्यात प्राप्त महाकाव्य 'हल्दी घाटी' पर पंडित श्याम नारायण जी को दिया गया।[११] सन् १९४१–४२ का पुरस्कार 'दैत्यवंश' पर श्री हरदयालु सिंह 'हरिनाथ' को, सन् १९४२–४३ का पुरुस्कार 'हिम किरीटनी' पर श्री माखन लाल चतुर्वेदी को तथा सन् १९४३–४४ का पुरस्कार 'फेर मिलिवो' पर श्री अनूप शर्मा को प्रदान किया गया। १९४४–४५ के पुरस्कार हेतु स्तरीय पुस्तकें प्राप्त न होने पर पुरस्कार की राशि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी सम्पादक 'मधुकर' एवं श्री लोकनाथ शिलकारी को बुन्देली साहित्य प्रकाशन हेतु दे दी गई। वर्ष १९४५–४६ एवं १९४६–४७ का देव पुरस्कार किसे प्रदान किया गया? जानकारी खोज का विषय है।

सन् १९४७ में देश की स्वतंत्रता पश्चात् राजे–रजवाड़ों का अस्तित्व समाप्त हो गया। फलस्वरूप अगले कुछ वर्षों तक यह बन्द ही रहा। बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड नामक भू–भाग की सभी देशी रियासतों को मिलाकर 'विन्ध्य–प्रदेश' नामक एक नये राज्य का गठन हुआ।

विन्ध्य प्रदेश सरकार ने सन् १९५३ से 'देवपुरस्कार' पुनः प्रारम्भ किया तथा पुरस्कार की राशि २०००/– रुपये से बढ़ा कर २१००/– रुपया कर दी। इसकी विधिवत घोषणा विन्ध्य प्रदेश हिन्दी पुरस्कार नियमावली शीर्षक से सूचना एवं प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित १९५३ में की गई।[१२]

विन्ध्य प्रदेश शासन द्वारा सन् १९५३ में देव पुरस्कार 'केशवदास' नामक आलोचना ग्रंथ पर श्री चन्द्रवली पांडे को प्रदान किया गया।[१३] वीरसिंह देव पुरस्कार (२१०० रुपये) उस समय भारत का सबसे बड़ा पुरस्कार था। यह निम्न लिखित विद्वानों को दिया गया –

ठाकुर गोपाल शरण सिंह
उदय नारायण तिवारी
परशुराम चतुर्वेदी

सन् ५६ में मध्यप्रदेश बनने पर नई सरकार की मान्यता थी कि सूचना प्रकाशन विभाग का साहित्य से कुछ लेना देना नहीं है इसलिए सन् १९५६ का पुरस्कार झमेले में पड़ा रहा और साहित्यकारों और सरकार के बीच विवाद चलता रहा। चूंकि पुस्तकें आमंत्रित की जा चुकी थीं और निर्णायकों का अभिमत भी प्रापत हो चुका था इसलिये सरकार को ५९–६० में पुरस्कार की घोषणा करना पड़ी। वि.प्र. द्वारा निर्णीत अंतिमवार, देव पुरस्कार, आनन्द मिश्र को सर्वोत्कृष्ट पद्य 'हिमाल के आंसू' पर दिया गया था। इसके बाद यह काम साहित्य परिषद के हाथों चला गया और उसका स्वरूप ही बदल गया।[१४]

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद द्वारा सन् १९६१ में सर्वोत्कृष्ट गद्य 'सुबहे बनारस' श्री राजनाथ पाण्डे, १९६२ में सर्वोत्कृष्ट गद्य 'महाकवि कालिदास' श्री रमाशंकर तिवारी, १९६३ में सर्वोत्कृष्ट पद्य 'आंगन में रांगोली बार–बार' श्री वीरेन्द्र मिश्र को यह पुरस्कार प्रदान किया गया।

सन् १९६४ एवं १९६५ में देव पुरस्कार दिया ही नहीं गया। १९६६ में रचनात्मक गद्य 'शाहे अवध' डॉ. इकबाल बहादुर तथा उपन्यास 'एक चूहे की मौत' श्री बली उज्जमा को प्राप्त हुआ। वर्ष १९६६ से १९७४ तक की अवधि में, सन् १९७२ में उपन्यास 'मानस का हंस' श्री अमृतलाल नागर, ७३–७४ में उपन्यास 'बीमार शहर' श्री राजेन्द्र अवस्थी को दिया गया था।[१५]

सन् १९७५ में 'उनके हिस्से की धूप' पर सु. श्री . मृदला गर्ग को, १९७६ में 'मकान' पर श्री श्रीलाल शुक्ल को, १९७७ में 'कोरजा' पर श्रीमती मेहरूनिसा परवेज को, १९७८ में 'गोबर गणेश' पर श्री रामचन्द्रशाह को १९७९–८० में 'नौकर की कमीज' पर श्री विनोद कुमार शुक्ल को, सन् १९८१–८२ में 'कसप' पर श्री मनोहर श्याम जोशी को, १९८२–८३ में 'सूखा स्वर्ग' पर श्री योगेश कुमार को दिया गया था।[१६]

सन् १९८३–८४ में 'परिशिष्ट' पर श्री गिरिराज किशोर को १९८५ में 'करवट' पर श्री अमृत लाल नागर को, वर्ष १९८६–८८ में 'लम्बी कहानियों पर श्री प्रभु जोशी को, वर्ष १९८९–९१ में 'डूब' पर श्री वीरेन्द्र मिश्र को, सन् १९९१–९२ एवं १९९२–९३ में पुरस्कार नहीं दिया गया।

सन् १९९४ में 'इदन्मम' पर सुश्री मैत्रेयी पुष्पा को, १९९५ में ''दास्तान–ए–लापता'' पर मंजूर एहतेशाम को, १९९६ में ''मुखड़ा क्या देखे'' पर श्री अब्दुल बिस्मिल्लाह को, १९९७ में 'सूरज सबका है' पर भी विद्यासागर नौटियाल को तथा १९९८–२००० में 'आवाँ' पर श्रीमती चित्रा मुद्गल को देव पुरस्कार प्रदान किया गया था। विगत ५–६ वर्षों से यह पुरस्कार नहीं दिया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि देव पुरस्कार की निरंतरता अनेक वर्षों में तथा २–२, ३–३ वर्षों तक भंग होती आ रही है। एक और विडंबना यह भी है कि सन् १९३४ में रु. २०००/– की राशि से प्रारंभ हुए देव पुरस्कार की राशि को विन्ध्य प्रदेश शासन ने सन् १९५३ में २१००/– रु. कर दी थी। जो १९६६ तक जारी रही।

सन् १९६६ में इसे बढ़ाकर २५००/– कर दिया गया। १९७३–७४ में यह राशि घटकर मात्र १५०० रु. रह गई। पुनः १९७५ से १९७८ तक पुरस्कार राशि सन् १९३४ में प्रथम बार घोषित रु. २०००/– ही प्रदान की गई। इस प्रकार सन् १९३४ से १९७८ तक पुरस्कार राशि में अकारण घटा–बढ़ी होती रही।

सन् १९७९–८० से पुरस्कार की राशि २००० रु. से ५००० रु. हो गई। सन् १९८३–८४ में यह पुरस्कार राशि को बढ़ाकर रु. ११०००/– कर दिया गया है। विगत ७२, ७३ वर्षों में 'श्री वीरसिंह देव पुरस्कार' की राशि में मात्र साढ़े पाँच गुनी वृद्धि ही हो पाई है। इस का मुख्य कारण, हिन्दी साहित्य के अपने समय के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार की मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद द्वारा की गई उपेक्षा ही है।

इस पुरस्कार की बड़ी विडम्बना यह भी है कि अब

साहित्य जगत में यह अपने संक्षिप्त नाम 'देव पुरस्कार' से जाना जाता है। ज्ञातव्य है कि सन् १९३६ में डॉ. रामकुमार वर्मा को श्री वीरसिंह देव पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उनकी जन्मशती (१५ सितम्बर २००४ से १५ सितम्बर २००५ तक) सम्बन्धी पत्रक में इसे 'महाकवि देव पुरस्कार' लिखा गया है। पुरस्कार प्राप्तकर्ता और पुरस्कार प्रदाता भी अब 'श्री वीरसिंह देव पुरस्कार' के इतिहास से पूर्णता अनभिज्ञ हैं।[१७]

संदर्भ –

१. श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद ओरछा राज्य टीकमगढ़ द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट सं. १९८८ वि. पृ. ४

२. वही तृतीय वार्षिक सं. १९८९ पृ. ६

३. भारतीय मूर्तिकला – रायकृष्ण दास पृ. ग्रंथावली का परिचय १

४. वीर बुन्देल मासिक वर्ष २, अंक ३,४, जन.फर. १९३४, पृ. ५–६

५. मधुकर पाक्षिक वर्ष ३, अंक ३, नवम्बर १९४२ पृ. ८२

६. वही वर्ष ४ अंक, १३–१४ अक्टूबर १९४४, पृ. २४५

७. जिला स्कूल्स इन्सपेक्टर टीकमगढ़ का उप संचालक शिक्षा विभाग विन्ध्य प्रदेश को सम्बोधित पत्र क्र. १०४११, दि. ८–५–५१ पृ. १

८. भारतीय मूर्तिकला – राय कृष्ण दास पृ. १

९. क्र. १२, जि.स्क.इन्स. का पत्र क्र. १०४११, दि. ८–५–५१, पृ. २

१०. ईसुरी (वार्षिक) ९/९१–९२ खण्ड ५, पृष्ठ ९

११. वही

१२. विन्ध्यप्रदेश हिन्दी पुरस्कार नियमावली १९५३ सूचना एवं प्रसार विभाग विन्ध्यप्रदेश

१३. विन्ध्यप्रदेश साहित्य संकलन मार्च १९५३

१४. वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव का पत्र भोपाल, दि. २२–२–०४

१५. टीकमगढ़ दर्शन पृ. ६

१६. वही

१७. पद्मभूषण रामकुमार वर्मा जन्मशती अनुष्ठान (पत्र क्र.) पृ. १०

– किले का मैदान, स्टेट बैंक के पास, टीकमगढ़

बुन्देली होरी में गोरी

– शिव सहाय दीक्षित

होरी खेल गोरी जब ठाँड़ी भयी अँगना में,
देख देख प्रीतम कौ जिया ललचात है।
मुखड़ा पै अगल बगल कारे केस झूम रहे,
झीनी सी बदरिया में ज्यों चन्दा झलकात है।

नीले पीरे लाल परे छपका हरी सारी पै,
बगिया में बसन्त मानो ठाँड़ो मुसक्यात है।
गालन पै गोरी के गुलाल लगी गाड़ी सी,
टोंन पै खिलो गुलाब फूल मनु सुहात है।

भींज गई सारी हरी चिपक गई छतियँन सों,
अध ढके पुरैन में दो फूल ज्यों लखात हैं।
भोंरा दो सुहा रहे दोइ फूलन के ऊपरै,
रस में तल्लीन नहिं तनकउ उड़ात हैं।

प्यारी छवि छबीली की छाय रही नैनन में,
फूलन के टोरवे खों मनुवाँ ललात है।
सरमा कें गोरी ने फेर लई पीठ जब,
अप्सरा नितम्बनी खजुराहो की जनात है।

पाछे सें देखो कै आँगे से निहारौ ताहि,
काम रस बढ़ावै गोरी ज्यों ज्यों लजात है।
गोरी की हाँसी अब करेजे में आँसी है,
प्रीतम खों गम्म नहीं साँसी भई जात है।

'शिव सहाय' धीर धरौ मरो मत बुढ़ापे में,
सावन के सूरा खां हरीरौ दिखात हैं।

– भैरव मुहल्ला, टीकमगढ़ म.प्र.

जागरन गीत

– हरीदास सक्सेना

बुन्देल धरती के भैया! पहला अपनो देश जगाओ।
बुन्देली बहिनो! तुम अपनी, पुरखायत अपनाओ।
सब बातन में सदा अगारै, रहो देश सिरमौर।
मध्यप्रदेश में भरो खजानो, अभरक–चूना–गौर।
पन्ना हीरा मानिक्य कोयला, पत्थर हैं हर ठौर।
भोपाल–लखनऊ छीन छपटके, खात हमारे कौर।
जड़ी बूटियन पटीं पहरियाँ, लैकें रोग भगाओ।
अपनी पुरखायत अपनाओ........।।
केन धसान पहूज बेतवा, दे रहीं अमृत पानी।
बड़े तड़ागन की नहरन सें, सिंच रही भूमि सुहानी।
हरदौल लला नें दई बंश, मरजादा पै कुरवानी।
कितने उठे बवन्डर हमनें, हार कभउं न मानी।
लोक भारती के सुर में सब निज आवाज मिलाओ।
अपनी पुरखायत अपनाओ........।।
लकड़ी–गिट्टी–बारू से उनके, बड़े शहर सज जाने।
अपनी सम्पति में दोइ पइसा, हिस्सा हमें न पाने।
अच्छी शिक्षा खेल नौकरी, नहीं हमारे लाने।
दिल्ली सूरत में हमें मजूरी, करत करत मर जाने।
हर कीमत पै बुन्देलखण्ड अब, अपनो राज बनाओ।
अपनी पुरखायत अपनाओ........।।
अंग्रेजी का मोह छोड़ कै, अंग्रेजियत भगाने।
जाति भेद छलछन्दन में, शक्ति न हमें गंवाने।
छत्रसाल लक्ष्मीबाई की शान न हमें भुलाने।
बुन्देली भाषा पहिनावा, सब रुमें अपनाने।
बुन्देलखण्ड की विजय पताका, अम्बर तक फहराओ।
अपनी पुरखायत अपनाओ........।।

– राइनपुर, चरखारी (महोबा)

१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में ओरछा राज्य की भूमिका

– वीरेन्द्र बहादुर खरे

१० मई १८५७ को मेरठ के अंग्रेजी सैना के सिपाहियों ने कम्पनी सरकार के विरुद्ध बगावत का विगुल बजाकर १९वीं शदी की महान घटना की शुरुआत की। सितम्बर १८५७ तक बुन्देलखण्ड में अंग्रेज शासन समाप्त सा होने लगा। झाँसी पर विद्रोह की सूचना पाकर चंदेरी के ठाकुर बगावत पर आ गये। ललितपुर जनपद में अंग्रेजी सरकार संकट में आ गई। तालबेहट, शाहगढ़, बानपुर विद्रोहियों के केन्द्र बन गये। (ताप्ती राय पेज १३९ पापुलर अपराइजिंग) जाखलौन के महीप सिंह अलीपुरा के ठाकुर बखत सिंह, दौलत सिंह, इन्दुरखी के बरजोर सिंह वेलवान, देशपत झीझन पनवाड़ी, शाहगढ़ के राजा एवं बानपुर के राजा मर्दन सिंह विद्रोही बन चुके थे। इस इलाके के गोरे इन बुन्देले राजाओं के रहमोकरम पर थे और बंगाल एवं बम्बई की ओर से आने वाली अंग्रेजी फौजों का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे।

इस महायज्ञ में ओरछा राज्य की भूमिका के बारे में विचार करने से पहले हमें ओरछा राज्य की १८१२ से १८५७ तक के काल की राजनैतिक परिस्थितियों पर विचार करना होगा। ओरछा के तत्कालीन नरेश विक्रमाजीत ने १८१२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर ली। तब से १९४७ तक ओरछा के राजा ब्रिटिश सरकार के वफादार बने रहे। अंग्रेज सरकार का भी ओरछा राज्य के प्रति व्यवहार मैत्रीपूर्ण रहा। १८१७ में विक्रमाजीत ने राज्य छोड़ दिया उनके पुत्र धर्मपाल राजा बने, किन्तु वे १८३४ में स्वर्ग सिधार गये। महाराज विक्रमाजीत ने फिर से शासन संभाला पर १८३४ में वे भी स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने अपने भाई तेज सिंह को उत्तराधिकारी बनाया। अंग्रेज सरकार ने तेजसिंह को मान्यता दे दी। तेजसिंह भी १८४१ को सन्तानहीन ही मर गये। उन्होंने अपने जीवनकाल में सुजान सिंह को गोद लिया।

धर्मपाल की विधवा रानी महेन्द्र कुँवरि (लड़ई रानी) ने सुजानसिंह को गोद लिये जाने पर एतराज किया क्योंकि वे बखत सिंह चिरगांव के पुत्र को गोद लेना चाहती थी। ब्रिटिश सरकार बखत सिंह से नाराज थी। उसने तेजसिंह द्वारा गोद लिये सुजान सिंह को उत्तराधिकारी मान लिया पर लड़ई रानी का भी मान रखा और उन्हें राज्य की संरक्षिका बना दिया। सुजानसिंह और लड़ई रानी की नहीं बनी। सुजानसिंह विजना राज्य के थे वे अपने पिता एवं भाई देवी सिंह के प्रभाव में थे। देवी सिंह ने ओरछा राज्य की रानी के विश्वास पात्र व्यक्तियों को अलग कर अपने आदमी नियुक्त कर दिये। राज्य में गृहयुद्ध की स्थिति पैदा हो गई। अंग्रेजी सरकार ने सुजान सिंह से स्पष्टीकरण मांगा। देवी सिंह को राज्य से अलग कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने एक बार फिर महारानी लड़ई रानी का पक्ष लिया। लड़ई रानी ने इस कृपा के लिये अंग्रेजी सरकार का आभार माना।

सुजान सिंह भी सन् १८५४ में स्वर्गवासी हो गये। वे भी संतानहीन थे। लड़ई रानी ने ४ वर्षीय हम्मीर सिंह को उत्तराधिकारी बनाया। ब्रिटिश शासन ने उन्हें मान्यता दे दी। रानी संरक्षक बनी रहीं अंग्रेज ओरछा राज्य को अपना शुभ चिंतक मानते थे। कर्नल स्लीमन ऐसे प्रभावशाली प्रशासक का कहना था ''बुन्देलखण्ड के प्रमुख राज्यों के राजाओं में कोई भी राजा ओरछा के राजा से अधिक ब्रिटिश राज्य का हितचिंतक व वफादार नहीं है। इस राजा से अधिक कोई भी राजा ब्रिटिश सरकार की सुरक्षा एवं उसके विश्वास की आकांक्षा रखने वाला नहीं है। (जे.पी. मिश्र, बुन्देला रिवैलियर पृ. ५७) अंग्रेज सरकार ने सदा लड़ई रानी की भावना का ख्याल रखा और उन्हें दु:ख या क्षति पहुंचाने का कार्य नहीं किया।

दूसरी ओर वे अपने पड़ौसी बुन्देले राज्यों से भी अच्छे सम्बन्ध रखे हुए थीं। ५ जून को सिपाहियों द्वारा बगावत के कारण झांसी के साथ चंदेरी, बानपुर, ललितपुर, गुरसराय, कौंच, शाहगढ़, बांदा, हमीरपुर, अजयगढ़, पनवाड़ी जैतपुर, में बगावत से अंग्रेजी राज्य समाप्त हो गया। अब बुन्देलखण्ड में दो ही पक्ष थे अंग्रेजों के पक्षधर या विरोधी। चरखारी और पन्ना के राजा ने खुलकर अंग्रेजों का समर्थन किया। शाहगढ़ और बानपुर के राज्य विद्रोहियों एवं झांसी की रानी के साथ थे। जैतपुर के राजा पारीक्षत की विधवा रानी का राज्य अंग्रेजों ने ले लिया था। इस अवसर का लाभ उठाकर जैतपुर की रानी ने विद्रोहियों की सहायता से अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत कर दी। उन्होंने सिमिरिया को लेने का प्रयास किया। उनके साथी चरखारी और पन्ना के राज्यों में लूटमार कर ओरछा राज्य एवं शाहगढ़ राज्य में आ जाते थे। ओरछा की रानी ने उन्हें संरक्षण दिया था। ओरछा की रानी ने शाहगढ़ के राजा और जैतपुर की रानी को अंग्रेजों का ही दुश्मन माना अपना दुश्मन नहीं। उन्होंने उन्हें नष्ट करने या अपने यहां से हटाने का प्रयास नहीं किया।

शाहगढ़ के राजा बखत बली ओरछा की रानी को अपना हितचिन्तक अभिभावक बुजुर्ग परामर्शदाता मानते थे। वे अपनी समस्याओं को उन्हें बतलाते एवं उनसे सहायता मांगते थे। उन्होंने महारानी लड़ई रानी को दिनांक श्रावण सुदि १२ सम्वत् १९१४ (जोलाई १८५७) को पत्र लिखा। राजनैतिक गतिविधियों की चर्चा करने के बाद वे लिखते हैं – ''श्री रानी को जूदेव (जैतपुरवारी) की पाती इहां आई ताकी नकल अपने को समझवे को पठवाई है। पाती में लिखी आई कि हमारे मानस खां पनाह अपने इलाके में मिलत रहत..... उनको बिचार चरखारी को इलाका लूटवे को है। अब इहाँ के इलाका में उहाँ के इलाका लुट है तब इहां बारन से बखेड़ा चरखारी बारन से बढ़ते..... ताके बन्दोवस्त के बिवूच से तीसरी जागा और विचार हो गओं तो रात दिन को उरजन्द कहाऊ लागौ और अब जो राज बिल्कुल बरवाद भओ। सो आप सब

जानती है तासे जैतपुर वारी रानी को उहाँ से समझाइस बा कहाऊ हो जाय सोई तरफ भुमियाइट बरका दई जो अपर भांवरन की अँग्रेजन से समाधानी कछू भई जात है सो जो मदत अपनी सलाह माफिक को जूकी होत की हुई है सोइहां से करी जै है। आप जेठी हैं इहां उहां की संभार अपनऊ को करने हैं जीमें सुबीदो रहे।'' (१८५७ की क्रांति के पत्र तात्या टोपे समिति शिवपुरी पत्र क्रमांक ३)

कार्तिक सुदी १० सम्वत १९१४ अक्टूबर १८५७ को लिखे पत्र में शाहगढ़ नरेश बख्तबली दमोह में अंग्रेजों की गतिविधियों की चर्चा करते हुये लड़ई रानी से आग्रह करते हुये लिखते हैं। – ''अब पल्टन वारन को बिचार हटा खाली करेवे को समझो जात है ताकौ बारूद की मदे दो चार बखत अपुन को लिखा गई परन्तु उहांते तजबीज कछु न भई और इहां कई जागा न्याउ बखेड़ा लगो रहत है तासै बारूद को काम हर बखत इहां परत है अऊ एहीं बात को इहां कोताही है। सो इहां की संभार तो सब तरह अपन को करने है ही – हाल अटक बारूद की ठहरत है ओ चाहिनै तो पचास साठ मन सो सबरी न हो सके तो बीस पच्चीस मन बारूद पहुचावे में आवे। अवै थोरी सी मदत से अब भयो जात नातर सीसे फौज बदले पर अपनऊ को सबे दुरस्ती बाजर खबाड ने आहें (पत्र क्र. १०, १८५७ की क्रांति के पत्र तात्या टोपे स. शिवपुरी)

जैतपुर की रानी भी ओरछा की रानी से मदद पाती थीं। उन्होंने इस कृपा की बात तात्या टोपे से भी की। नाना साहब के सेनापति एवं प्रतिनिधि तात्या टोपे और जनार्दन ने दिनांक १३ कुवांर सम्वत् १९१४ (सितम्बर १८५७) को लड़ई रानी को लिखा – ''हमें श्री राजा जू जयतपुर वाले को पाती लिख भेजी है और आपको लिखते हैं कि उनको बोखड़े में उनकी मदत आपने इलाके में रख के सब तरह से रखी सो बहुतई अच्छो कियो। सो आप मदत को ही आये हैं आप अपनी फौज के दस पन्द्रह हजार जो बने सो इहां पहुचावे। इस बात में श्रीमंत सरकार की आपकी बहुत अच्छी रहेगी। हुक्म है प्रथम जयत्पुर की गादी कायम हो सो काम आप जरूर करें।' (तात्या टोपे समिति १८५७ की क्रांति के पत्र)

जैतपुर की रानी के ने कुवांर सुदी १३ सम्वत् १९१४ को लड़ई रानी को लिखे पत्र में कहा – 'आपर पाती आई हवाल बाकिव भयो कछु अटक नाहि है आपको सब तरन से भरोसो है सो संभाल इहां आपको ही करनै हैं'(पत्र क्र. ५ तात्या टोपे समिति, शिवपुरी) महारानी जैतपुर ने बल्देवगढ़ के किलेदार की शिकायत के जवाब में लड़ई रानी को आश्वासन देते हुये लिखा 'सो हाल ऐसी बातन को अपनी तरफ से तामूल राखवी इहां सो दो दिन हाल झांसी तरफ की हो रही है तासे हाल अपनी तरफ से बड़ाओ मुनासिब नाहि और जुबानी सिखाबन श्री प्रधान सदबल सिंह को इहां तैं हो गई है। इहां तो सब अपनी सलाह माफिक होने काहे से इहां की दुरस्ती के मालिक अपनऊ हैं। पोषवदि १९१४ ई. (दिसम्बर १८५७) (तात्या टोपे समिति १८५७ की क्रांति के पत्र क्रमांक)

पूर्वी बुन्देलखण्ड के विद्रोही देशपत बुन्देला ने १८–५–५८ को तात्या टोपे को लिखा – 'मैंने सभी बुन्देले राजाओं से फौजें मंगवाली हैं हमें विश्वास है केवल पन्ना के राजा को छोड़कर ये राजा हमारे खिलाफ नहीं लड़ेंगे (श्री भगवानदास श्रीवास्तव बुन्देलखण्ड में स्वाधीनता आंदोलन)। जैतपुर रानी के समर्थन में बम्होरी के दौलत सिंह पवार, अलीपुरा के बखत सिंह उठ खड़े हुये। दौलत सिंह ने निवाड़ी को लूटा और झण्डा जला दिया। अंग्रेजों ने इन पर इनाम रखा (भगवान दास श्रीवास्तव बुन्देलखण्ड में स्वाधीनता आंदोलन पेज १०)। उपन्यास लेखिका महाश्वेता देवी के उपन्यास 'नटी' का एक पात्र कहता है – 'नंद लाल ने टीकमगढ़ में अपने मित्र परतप्प का डेरा खोज निकाला। (पेज ३८)'। परंतप्त चौहान का कथन है कि जरूरत पड़ने पर टीकमगढ़ से रुपये आ जायेंगे। टीकमगढ़ में मेरी गद्दी है, पचास हजार से एक लाख रुपये तक का इंतजाम जब चाहे कर सकता हूँ।'' (पेज ७०) वे आगे लिखते हैं – ''बहादुर पल्टने अंग्रेजों की हत्या करके दो तौंपें ओरछा लाई हैं। ओरछा के नत्थे खां ने भी तोपे दी हैं।' महाश्वेता देवी केवल उपन्यासकार ही नहीं है उन्होंने १८५७ की क्रांति पर शोध की हैं। उनकी बात में बजन है इसे अप्रमाणितक नहीं माना जा सकता है। सिपाहियों के दीन और धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष में ओरछा का जनमानस छिपे रूप में उनका सहायक हो तो आश्चर्य क्या है। लड़ई रानी और चरखारी का राजा में एक अन्तर था। चरखारी का राजा दिल से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध था डर के मारे तात्या टोपे को पैसा देने के लिये राजी हुआ। लड़ई रानी दिल से असहाय बेसहारा जैतपुर की रानी और सज्जन बख्तवली के साथ थीं पर ऊपर से अंग्रेजी सरकार की भक्त थीं।

१० अगस्त १८५७ को ओरछा के दीवान नत्थे खाँ ने झांसी पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज ११ जून को झांसी से भाग गये और लक्ष्मीबाई ने झांसी की व्यवस्था संभाली। वे जानती थीं कि अंग्रेजों के जाने के बाद बुन्देला झांसी को लेने का प्रयास करेंगे, इसलिये उन्होंने पत्र लिखकर दतिया और ओरछा के राजाओं से अनुरोध किया कि जब तक जबलपुर से कोई व्यवस्था नहीं होती है ओरछा, दतिया और झांसी मिलकर इस क्षेत्र में शान्ति बनाये रखें (झांसी कलेक्शन म्यूटिनी बस्ता यू.पी.आर.आर.ए.ए. ताप्ती राय पोलिटिक्स आफ पापुलर अपराईजिंग पेज ११४)।

नत्थे खां ने शीघ्र ही मऊरानीपुर गरौठा पन्डवाहा और बरुआसागर को अधिकार में कर लिया। झांसी की रानी परिस्थितियों को देखते हुये अपनी सैन्य शक्ति को आपसी युद्ध में नहीं खोना चाहती थीं। वे इस स्थिति में नहीं थी कि झांसी की सुरक्षा में कमी कर सेना मऊ भेजतीं। उन्होंने समझौतों का प्रयास करते हुये ओरछा के कारिन्दों कामदार द्वारा झांसी पर आक्रमण की चर्चा करते हुये कहा ''दुहें तरफैन राह रस्म चली आई ताकों बटों आउत है तातें अपुन जेठी हो सु दूर देश बिचार के काम करने में आवे और जिन गंस....... .करी है वहां से भीर फौज उठा लई...... से भले आदमी पड़के रोब दो सन्द...... तजवीज है सु यातें पाती के जवाब पे पढ़ौवे में आई है। .... कौन हू बारदात किसा बखेड़ा न होवें पाती समचार खुशी के लिखात रहियो।'' ओरछा के नन्थे खां के उत्तराधिकारियों से प्राप्त

पत्र क्र. ९ झांसी की रानी ने एक पत्र फौजदार नत्थे खां को भी लिखा।

'तुम्हारे जैठन के हाथ से ईतरा को परस्पर रियासतनमें बाहर नीव धी ताकी नतन आज लौ चली आई ताकौ राखत व निवाह करवौ उते जैठिन की तरफ है ताकी सुराज श्री पंडित वगसी लाल की पाती गई तासै...... (भादो शुदी ८, सं. १९१४, मुकाम झांसी, नत्थे खां के उत्तराधिकारियों टीकमगढ़ द्वारा प्राप्त एवं तात्या टोपे समिति शिवपुरी द्वारा प्रकाशित १८५७ की क्रांति के पत्र क्र. ११)'।

पत्र के उत्तर में भादों सुदी ७, सम्वत १९१४ को नत्थे खां ने मुकाम बरुआ सागर से एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने रानी से झांसी का राज छोड़ने पर ओरछा राज्य के अन्तर्गत या वही और रहने के लिये ओरछा राज्य द्वारा जगह दिये जाने की पेशकस की। पत्र कहता है – ''आवे हाल वर्तमान रौशन है कि जो रियासत सरकार ओड़छे की है सो अपुन को रौशनई है या से बाई मुलक मालिक के अहद में अपनों दावा रयासत मजदूर मै कुछ होना होवे सो इहां खावदन के हुक्म बमूजिव होने से करन परत यांकी रंजीदगी को नेहचित्त में न लाइवी जो....... अपुन ओर जगा करियत सो काहूकाकर चाहिये सरकार को वास्तोय कहो रों आयो अनुहम सबकों जुदे पर कुछ रो........... अपने हकये कौनह दुखन बादी होवे किनाही हाल अपनु को झांसी में रहिवो वा बहां ते और कुछ कि जोवे मुनासिंब नाहीं तासे इहां पुरानी अलय दारी में जो न मुकाम खुशी पूर्वक रहाइस तहि की मंजूरी तहां की जजवीज लिखाई पठैवी वही एक पत्र बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने भी राजा हम्मीर सिंह को लिखा पत्र क्रमांक २१ (वही)। नत्थे खां ने ३ सितम्बर को आक्रमण कर दिया। ५० दिनों तक युद्ध चलता रहा। झांसी की रानी की सोची समझी नीति के कारण एवं अचूक गोलन्दाजी के कारण ओरछा की फौजों को बहुत हानि पहुँची। ओरछा की फौज पराजित होकर घेरा छोड़ने पर मजबूर हुई। इस युद्ध का वर्णन तत्कालीन दतिया के कवि कल्याण सिंह कुठरा रचित झांसी कौ रायसौ मदनेश कृत लक्ष्मीबाई रासो एवं झांसी गजेटियर १९०९ एवं डॉ. मोतीलाल भार्गव ने किया है। नत्थे खां पराजित होकर इन्दौर गये और वहां वह सर ह्यूरोज से मिल गया। वह झांसी की रानी के प्रति प्रतिशोध की भावना से भरा था उनका प्रश्न था ''बिजन कराहिहों अंग्रेजन को लराहियों (झांसी का रयसो)। नत्थे खां के साथ वख्शी भी थे। उन्होंने लक्ष्मीबाई के विरुद्ध अंग्रेजों के कान भरे। अंग्रेज वैसे भी लक्ष्मीबाई का भरोसा नहीं करते थे। नत्थे खां के साथ सैनिक भी थे और वे अंग्रेजों के समर्थक माने गये। यहां वह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि झांसी पर आक्रमण ओरछा की महारानी की पूर्ण सहमति से हुआ या वह पूरी तरह नत्थे खां एवं उनके दल की कारगुजारी थी। नत्थे खां एक तीर से दो शिकार करना चाहता था। वह यह तो जानता था कि अंग्रेज लौटेंगे और झांसी जीतने का प्रयास करेंगे अगर ऐसा नहीं होता तो झांसी अपनी है और अंग्रेज जीतते हैं तो वह झांसी का राज्य अंग्रेजों को देकर अपनी वफादारी सिद्ध करेगा। बिना लड़े झांसी मिल जाने पर अंग्रेजों का वफादार तो माना ही जावेगा। लड़ई रानी जैसी समझदार रानी को झांसी पर आक्रमण की स्वीकृति तो नहीं देनी चाहिये थी पर वे इंकार भी नहीं कर सकती थीं। उन्हें अंग्रेज विरोधी मान लिया जा सकता था। नत्थे खां हर हालात में झांसी पर आक्रमण करता। रानी ने सोचा होगा अगर झांसी जीता जाता है तो ओरछा का भला होगा और अगर ओरछा सफल नहीं होता है तो नत्थे खां का प्रभाव घटेगा उसका मान मर्दन होगा। इसलिये वे चुप रहीं। यहां भी महारानी को नारी होने का लाभ मिला। ब्रिटिश विद्रोह का झण्डा उठाने वाले शाहगढ़ नरेश एवं जैतपुर की रानी का विश्वास उन पर बना रहा। वे मानते रहे कि झांसी पर ओरछा के आक्रमण का उत्तरदायी नत्थे खां है। रानी अब भी क्रान्ति समर्थक हैं। इनका ओरछा से मोह भंग फरवरी १८५८ से होना प्रारंभ हुआ। अंग्रेज ह्यूरोज वैंटलाक पूर्वी एवं पश्चिमी बुन्देलखण्ड पर दबाव बना रहे थे। ओरछा की फौज अंग्रेजों के साथ थी। महारानी महेन्द्र कुंवरि का देहान्त् सम्वत् १९१४ के अंत में ही गया। हमीर सिंह राजा थे और नत्थे खां प्रमुख कार्यकर्ता। रानी के देहांत के बाद ओरछा के शासकों ने अंग्रेज समर्थक रुख बना लिया। अप्रैल १८५८ में सर ह्यूरोज झांसी को जीतने के लिये आया। ओरछा की सेना उसके साथ थी। मर्दन सिंह ने फाल्गुन ८, सम्वत् १९१४, फरवरी १८५८ को लिखे पत्र में तात्याटोपे को हालात बयान करते हुए लिखा – ''ताही पें राजा रहीस सब बुन्देलखण्ड के अंग्रेजन से मिल मदत दे रहे हैं, हाल में बानपुर के टेरी वारे आदिकोस के फासले फौज व तोपें रखे हैं।'' (पत्र क्रमांक १५ तात्या टोपे समिति शिवपुरी १८५७ की क्रांति के पत्र)

ऐसा ही पत्र शाहगढ़ के राजा बख्तवली ने तात्याटोपे को लिखा – 'परना बिजावर टेहरी चरखारी छतरपुर के सब राजा हुम्क उठाय हैं। अरु बुन्देलखण्ड के सब राजा तावेदारी असंठ की उठाये हैं।'' ६ अप्रैल १८५८ को झांसी पराजित हो गया। रानी लक्ष्मीबाई कालपी और ग्वालियर में अंग्रेजों से लड़ीं और मारी गईं। १६ मई में रानी के वीरगति पाने के साथ पश्चिमी बुन्देलखण्ड में अंग्रेज जीत गये। पूर्वी शाहगढ़ नरेश और बानपुर नरेश ने भी अंग्रेजों के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। तात्याटोपे ने झांसी जाते समय ओरछा को लूटना चाहा पर वह फिर सीधा झांसी चला गया। झांसी के पतन के बाद पूर्वी बुन्देलखण्ड के क्रांतिकारी देशपत मकुन्द सिंह अंग्रेजों से संघर्ष करते रहे। तात्याटोपे अभी सक्रिय था। तात्या टोपे ने अक्टूबर १८५८ में ललितपुर एवं टीकमगढ़ लूटना चाहा। विद्रोहियों को पकड़ने के लिये कर्नल लिडिल के नेतृत्व में दिगोड़ा, पृथ्वीपुर से अंग्रेज सैनिक टुकड़ी रखी। तात्या टोपे कुछ समय अस्तौन में रहा और वहां से अंग्रेजों की दविश के कारण दक्षिण की ओर चला गया जहां जाते हुए वह शिवपुरी में पकड़ा गया और अंग्रेजों ने उसे फांसी दे दी। १८५९ की अंग्रेज विरोधी ज्वाला लगभग बुझ चुकी थी। क्रांतिकारी या तो मारे गये या उन्होंने आत्म समर्पण कर दिया। अंग्रेजों का इस मुसीबत में जिन्होंने साथ दिय उन्हें इनाम दिया गया। नत्थे खां को जागीर तो नहीं मिली ओरछा को टहरौली का इलाका अवश्य मिल गया।

– सेवा निवृत्त प्राचार्य
गुप्ता प्रेस मार्ग, कटरा बाजार, टीकमगढ़

आजादी का संघर्ष और बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता के सरोकार

— डॉ. सन्तोष भदौरिया

यह सर्वमान्य है कि सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में पत्र–पत्रिकाएं जनता की पथ–प्रदर्शक तथा शुभचिंतक की भूमिका निर्वाह करती है, उनकी वास्तविक प्रकृति एवं गतिविधियां सामाजिक एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण एवं असमानता के विरुद्ध है। वे समाचारों, अग्रलेखों एवं टिप्पणी के माध्यम से इन विषयों की ओर ध्यान आकर्षित करती रहती है। ''पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री समाज के सामाजिक संगठन की रूपरेखा प्रस्तुत करती है।''[१]

यह सर्वमान्य है कि बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के समय बुन्देली जनता का मुख्य विरोध अंग्रेजी शासन और सामंती व्यवस्था से था। यहां तक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना में मुख्य बाधा देश की राजनीतिक गुलामी थी। यही कारण है कि राजनीतिक गुलामी ही आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दुरावस्था के मुख्य कारक थे। अतः राजनीतिक प्रश्नों को सर्वप्रथम समझना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। बुन्देलखण्ड के राजनीतिक परिदृश्य में उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के शुरुआती चार दशक आजादी के संघर्ष के साथ दुनिया में उथल–पुथल के थे। इसी समय ''विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र रूस एशियाई देश जापान से पराजित हुआ। रूस के मजदूर किसानों ने जार के खिलाफ क्रांति का झंडा बुलंद किया। चीन में अमेरिकी सामान का बहिष्कार हुआ, वह भी क्रांतिकारी आन्दोलन का एक हिस्सा था।''[२] सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्र के रूप में समन्वित होने के लिए तत्कालीन व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष हेतु और आधुनिक राज्य, समाज एवं संस्कृति की स्थापना के लिये यूरोप में पत्र–पत्रिकाओं का सहारा लिया गया।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के विकास और उसको दिशा देने का कार्य हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं ने ईमानदारी से किया, क्योंकि ''जब से भारतीय संपादकों ने देश की स्वतंत्रता के लिये अपनी लेखनी का प्रयोग करना आरम्भ किया, उसके पहले से ही समाचार–पत्रों ने राजनीतिक विषयों पर गहरी दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया था।''[३] सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का सर्वाधिक उर्वर और तेजस्वी क्षेत्र बुन्देलखण्ड ही रहा। इसकी असफलता ने निराशा अवश्य पैदा की, किन्तु इसकी भरपाई हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं ने बखूबी की। हिन्दी पत्रकारिता ने पुनः बुन्देली जनता में राष्ट्रीय जागृति एवं चेतना उत्पन्न की। अनेक समाज सुधारकों द्वारा संचालित राजनीतिक आन्दोलन पुनः बुन्देलखण्ड के जनमानस को उद्वेलित करने में सहायक सिद्ध हुआ। बुन्देलखण्ड के राजनीतिक जागरण में बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक की दमनकारी नीतियां काफी सहायक रहीं। पूरे क्षेत्र में तीव्र राजनीतिक परिवर्तन हुए। इस दौरान प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना में पत्र–पत्रिकाओं ने साहसिक भूमिका निभाई। 'दैनिक प्रकाश', 'बुन्देलखण्ड' 'केशरी', 'हिन्द' 'राजस्थान', 'उत्साह', 'मधुकर', 'लोकवार्ता', 'समालोचक', आदि पत्र–पत्रिकाओं ने अपने संपादकीय, अग्रलेख एवं टिप्पणी के माध्यम से बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन को स्पष्ट और निश्चित दिशा दी।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न संपादकीय लेखों एवं रचनाओं से राष्ट्रीय चेतना की विभिन्न प्रवृत्तियों का पता चलता है। इस दौरान प्रकाशित दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं त्रैमासिक पत्र–पत्रिकाओं से बुन्देली जनता के जागरण की जितनी अपेक्षा की जा सकती है, उससे ज्यादा उत्साह इन पत्र–पत्रिकाओं ने दिखाया। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र 'प्रकाश' ने बुन्देलखण्ड की जनता को आजादी के संघर्ष हेतु उद्वेलित किया।

'दैनिक प्रकाश' के एक अन्य अंक में 'प्रताप की मनाई' शीर्षक से टिप्पणी तत्कालीन पत्र'–पत्रिकाओं की ताकत का एहसास कराती है — ''देशी रियासतों को 'प्रताप' सांड को लाल झंडी का काम करता है। सात रियासत वालों ने तो पहले से ही 'प्रताप' का अपनी रियासतों में आना रोक दिया था, परन्तु आज आठवां नम्बर उदेपुर रियासत का हुआ है। उदेपुर रियासत में 'प्रताप' का जाना एकदम बंद कर दिया गया है।''[४] हिन्दी पत्र 'दैनिक प्रकाश' ने अपने लेखों एवं कविताओं के द्वारा बुन्देलखण्ड की जनता में क्रांतिमय विचारों को प्रवाहित करने और उन्हें क्रांतिकारी कार्यों की ओर उन्मुख करने में उत्साही भूमिका निभाई।

हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं में राजनीति से सीधे सरोकार रखने वाली रचनाओं की संख्या बहुत कम है। विश्व राजनीति की महत्वपूर्ण घटनाओं का विश्लेषण अवश्य प्रमुखता से किया गया है। पत्र–पत्रिकाओं के संपादकीय में राजनीतिक घटनाक्रम और स्वाधीनता आन्दोलन की समीक्षा की गई है। कांग्रेस की गतिविधियों की जानकारी प्रमुखता से छापी जाती थी। उसके वार्षिक अधिवेशनों के भाषण और उसमें पारित प्रस्तावों को समीक्षात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया जाता था। 'झण्डा आन्दोलन पर' 'दैनिक प्रकाश' की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है — ''जबलपुर से मौलाना आज़ाद सुमानी, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और ठाकुर लक्ष्मण सिंह बालाघाट पधारे, राष्ट्रीय झंडे पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये और आपने बालाघाट और उसकी कुर्बानी पर कोटिशः धन्यवाद दिया। श्रीमती सुभद्रा कुमारी जो अभी हवालात से रिहा होकर आई हैं, आपने लोगों को राष्ट्रीय झंडे की इज्जत बचाने का बड़ा हृदयग्राही व्याख्यान दिया। आपने मर्दों से प्रार्थना की कि वे स्त्रियों को इस पवित्र युद्ध में शामिल होने की आजादी देवें। लक्ष्मण ने

कहा कि मेरी अपील है कि कोई भी आदमी सरकार को मदद न देवें और जुमनि की रकम वसूल करना नामुमकिन कर देवें।''[५] इस प्रकार के अनेक समाचार तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में खोजे जा सकते हैं, जिनसे बुन्देलखण्ड के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को आजादी की लड़ाई को आगे ले जाने की प्रेरणा मिलती थी।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं से जनता का राजनीतिक ज्ञान समृद्ध हुआ। साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ उनका आक्रोश और असंतोष तीव्रतर हुआ। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित अग्रलेखों एवं संपादकीय से यह विश्वास आया कि जनआन्दोलन में बड़ी शक्तिहोती है। बुन्देलखण्ड से प्रकाशित होने वाले पत्रों में 'बुन्देलखण्ड केसरी' का महत्व काफी है। उसने अपने अंकों में अंग्रेजों द्वारा किए गए भीषण दमन और अत्याचारों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। राजनीतिक चेतना के जागरण में इसकी उल्लेखनीय भूमिका रही।

'बुन्देलखण्ड केसरी' ने अपने लेखों और कविताओं के माध्यम से साम्राज्यवाद के वास्तविक चरित्र से परिचित कराया। जनता को यह याद दिलाया कि अंग्रेजों के देश में जो वास्तव में प्रजातंत्र है, लेकिन भारत में उन्होंने साम्राज्यवाद कायम कर रखा है।

वस्तुतः साम्राज्यवादी सरकार के शोषण युक्त चेहरे को हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं ने बुन्देली जनता के सामने रखा। उनमें प्रकाशित विभिन्न लेखों, कविताओं और संपादकीय टिप्पणियों को यदि सिलसिलेवार ढंग से विश्लेषित किया जाय तो राजनीतिक चेतना के विकास का इतिहास लिया जा सकता है। विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों से संबंधित अनेक ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं ने गंभीरता से विचार किया हैं इनने उन सारी साम्राज्यवादी कमजोरियों का खुलासा भारतीय जनता के सामने किया है जो हमारे समाज के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में अवरोधक है। इनके विभिन्न अंकों के अवलोकन से यह प्रमाणित होता है कि बुन्देली जनता में राजनीतिक एकता की भावना जागृत करने में सफल रही है। यह भी सच है कि बगैर राजनीतिक स्वतंत्रता के हम अपना आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास नहीं कर सकते थे। बुन्देलखण्ड से प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं ने बुन्देलखण्ड की जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण दिया और आजादी के संघर्ष में हमकदम बनीं।

भारत में अंग्रेजों के साम्राज्यवाद शासन का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शोषण था। इस आर्थिक दोहन में भारत की राजनीतिक परतंत्रता सहायक सिद्ध हुई। उपनिवेशवादी शासन राजनीतिक प्रभुसत्ता के दरवाजे से प्रवेश कर आर्थिक लाभ प्राप्त करता है। आर्थिक समस्याओं को इंगित करना और एक निश्चित समाधान प्रस्तुत करना हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं का प्राथमिक ध्येय रहा है। आधुनिक युग की प्राथमिक जरूरत अर्थ है और इसी अर्थ की प्राप्ति हेतु अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में प्रविष्ट हुए। और उपनिवेशवादी शासन पद्धति अपनाई। जैक वाडिस ने लिखा है कि अंग्रेजों के ''इस प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभुत्व के दो उद्देश्य थे, उपनिवेशों की जनता को राजनीतिक दृष्टि से गुलाम बनाकर रखना तथा उस देश के संसाधनों का यथासंभव शोषण करना।''[६]

बुन्देलखण्ड के प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं ने आर्थिक समस्याओं से संबंधित अनेक संपादकीय लेख एवं रचनाएं प्रकाशित किए जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि आर्थिक संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष का अभिन्न हिस्सा है। आर्थिक समस्याओं को विश्लेषण के साथ सामने रखने वाले लेख एवं टिप्पणियों को देखने पर उनकी गंभीरता का अहसास होता है। गांधी द्वारा प्रारम्भ किए स्वदेशी आन्दोलन का देशव्यापी प्रभाव था। इसे समस्त बुन्देलखण्ड की जनता ने अपनाया। तत्कालीन समस्त पत्र–पत्रिकाओं ने उसे संबल दिया और लोगों तक उनके सही अर्थ को प्रेषित किया। यह अकारण नहीं है कि उस समय की समस्त पत्रिकाएं भारतीयता का राग अलाप रही थीं। तत्कालीन महत्वपूर्ण पत्र 'बुन्देलकेसरी' ने स्वराज की अलख जगाई। इसका स्पष्ट मानना था कि बगैर स्वराज के भारतीय जनता का हित नहीं होगा और अंग्रेजों का आर्थिक शोषण अनवरत जारी रहेगा। उसने स्पष्ट लिखा कि – ''सबसे पहले तो अगर विदेशी राजा राज्य करता है तो वह देश की आजादी को हरण करके देश को गुलाम बनाना है। उसके स्वतंत्रता के भावों को पीस डालता है। सब लोगों को कायर, दब्बू और तुच्छ बना देता है। निर्भयता और स्वतंत्रता धर्म की सबसे पहली सीढ़ियाँ हैं, इनसे विदेशी राज्य की जनता को वंचित करता है। आगे लिखता है – इससे हमें स्वराज लाना चाहिए, क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा की कहावत, कहावत नहीं है वह एक सत्य सिद्धांत है। अन्याई राजा के प्रतिकूल विद्रोह या राजविद्रोह ही सबसे बड़ा धर्म है। विदेशी राज में राजद्रोह ही परमधर्म है।''[७]

सागर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक प्रकाश' ने भारतीय जनता को आगाह करते हुए दुःख के साथ लिखा है कि 'भारतभूमि अनादिकाल से सर्वश्रेष्ठ कही जाती है, इसको विदेशियों ने स्वर्ण भूमि, देवताओं की निवासभूमि कहा है। यह मान लिया गया है कि यह देश ज्ञान का भण्डार धन–धान्य का घर और धर्म का जनक रहा है। यहां के निवासी बल, विक्रम कला–कौशल में अतुलनीय थे, परन्तु आजकल हिन्दुस्तान की हालत देखने से अचरज मालूम होता है कि जो देश किसी समय इतना उन्नावस्था में हो और जहां उन बातों का अब भी अभाव न हो, वह देश परतंत्रता में कैसे पड़ा और अब तक क्यों परतंत्रता में चला आ रहा है।''[८] भारतवर्ष के इतिहास से एक शिक्षा शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित उपर्युक्त पंक्तियां तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं की आर्थिक चिंता और भारत की अधोगति के लिए जिम्मेदार तत्वों को रेखांकित करती है।

बुन्देलखण्ड की सभी पत्र–पत्रिकाओं ने स्वदेशी एवं सहयोग आन्दोलन को आगे बढ़ाने में महती भूमिका निभाई। पूंजीवादी व्यवस्था का जमकर विरोध किया। अनेक रचनाएं प्रकाशित की। अंग्रेजों के आर्थिक शोषण का घिनौना रूप प्रस्तुत करने वाली अनेक रचनाओं के आधार पर पत्र–पत्रिकाओं के अंकों को जब्त कर लिया गया। उन पर जुर्माना लगाया गया और संपादक पत्रकारों

को जेल भेजा गया।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित होने वाले पत्र उत्साह 'समालोचक', 'प्रजामित्र', हिन्दी राजस्थान, पुकार, आदि ने किसान आन्दोलन और किसानों की आर्थिक दुर्दशा से संबंधित अनेक कहानियां एवं लेख प्रमुखता से छापी। साम्राज्यवादी शासन ने भारतीय किसान की कमर तोड़ कर रख दी। असहाय किसान पर चौतरफा आर्थिक हमला किया गया। 'बुन्देलखण्ड केसरी' पत्र में प्रकाशित 'सफल जीवन' कहानी इस बात को रेखांकित करती है, जिसके लेखक एक बुन्देलखण्डी हैं। 'देश में आज कोई भी मनुष्यवत जीवन नहीं बिता रहा। कृषक दिन–रात अपना शरीर गर्मी–सर्दी में भूनते हैं, किन्तु स्वान में भी उस परिश्रम का फल नहीं पाते। मजदूरी में चौबीस घंटे अपने शरीर को पीसते हैं, तथापि चैन से रोटी नहीं मिलती। क्या करूं माँ। कोई भी तो सुखी नहीं दिखता। जब छोटे बच्चे भूखों मरते हैं, रहने के लिए स्थान तक नहीं पाते, शीत, घाम से बचने के लिए लत्ते तक नहीं पाते।''[९] तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं ने उन्हीं लेखों एवं रचनाओं को अपनी विषयवस्तु के रूप में चुना, जिसका सीधा सम्बन्ध उपनिवेशकालीन क्षेत्र की आर्थिक समस्याओं से था। उपनिवेशकालीन अर्थव्यवस्था की स्थिति को सामने रखने वाले पक्षों कृषि एवं उद्योग पर अनेक लेख लिखे गए। इस तरह के सभी लेख संपादकीय सूझ–बूझ और परिस्थितियों के प्रति सजगता के परिचायक हैं। क्षेत्र के कृषकों की आर्थिक दशा एवं कृषि सुधार पर अनेक महत्वपूर्ण लेख उस समय की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए।

साम्राज्यवाद के विनाशकारी और शोषण के स्वरूप को सामने लाने के लिए पत्र–पत्रिकाओं ने अपने स्तर पर जनता के मानस को अतीत की ओर ले जाने की कोशिश की, जिससे देशवासी अपनी प्राचीन समृद्धि को समझें और आत्म–गौरव का अनुभव करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटिशकालीन समाचार–पत्रों ने अपनी रचनाओं के जरिए तत्कालीन आर्थिक दुर्दशा हेतु अंग्रेजी ज्ञान को जिम्मेदार ठहराया। वे रचनाएं जहां एक ओर भारतीय उद्योगों के विनाश की कथा कहती हैं, वहीं दूसरी ओर उससे निजात पाने के तरीके भी सामने लाती हैं। इससे वे स्वदेशी आन्दोलन को मार्ग प्रशस्त करती है। वस्तुतः अंग्रेज शासकों की यह नीति रही कि उपनिवेश कच्चेमाल के आपूर्तिकर्ता बने रहे, जिससे उनका वाणिज्य और उद्योग चलता रहे।[१०] उपनिवेशों में शोषण के जितने भी तौर–तरीके थे, उनमें प्रमुख तरीका यही था। इन तरीकों का बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं का जनता के सामने खुलासा किया। साथ ही यह भी प्रचारित किया कि सारे भारतीय घरेलू उद्योगों को बंद कराकर साम्राज्यवादियों ने उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है।

बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं के संपादकों ने सामाजिक आन्दोलनों को उचित महत्व प्रदान किया। अनेक सामाजिक विषयों पर लेख एवं टिप्पणियां प्रकाशित की। इनमें सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की सामाजिक कुरीतियों एवं अनेक समस्याओं पर सम्पूर्णता के साथ लिखा गया, जिससे सोई हुई चेतना जागृत हुई तथा साहसिक संघर्षों की प्रेरणा दी और राष्ट्र को स्वाधीनता दिलाई। समाज को नई धारा की ओर उन्मुख किया। शिशु हत्या, बालविवाह, वैधव्य का दुःख, विधवा पुनर्विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता जैसी कुप्रथाओं को दूर करने में बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाज और संस्कृति मूलतः एक–दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी की पत्र–पत्रिकाएं अपने उद्‌भव काल से ही सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों की प्रसारक एवं विश्लेषिका रही हैं। बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं ने क्षेत्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं स्त्रियों में जागरूकता पैदा करने के लिए अनेक प्रयास किये। 'दैनिक प्रकाश' ने भारत की स्त्रियों संपादकीय में लिखा कि 'दुनियां की तमाम स्त्रियां तुम्हारी हालत पर अफसोस की निगाह से देख रही हैं। तुम परदे का लम्बा कफन ओढ़े हुए पुरुषों के जुल्म के कबरस्तान में बंद पड़ी हो, तुम्हें दुनिया की कोई बात का नहीं, तुम्हें जलयान वाले की जिल्लतधारी बाल के अत्याचार और नागपुर के सत्याग्रह की खबर नहीं। तुम स्त्री संसार के क्षीर सागर में गंदगी फैलाए हुए हो। तुम भी अपने जत्थे बना डालो। देश के नवयुवकों को सत्याग्रह संग्राम में जाने के लिए उत्तेजित करो। सामाजिक और धार्मिक बुराइयों को दूर कर भारत की सीता, सावित्री, दमयन्ती, अहिल और चाँदबीबी का नाम अमर कर जाओ।'[११] छुआछूत के प्रति पत्र–पत्रिकाएँ विशेष रूप से सतर्क थीं। अछूतों का उद्धार भी उनका मुख्य उद्देश्य था। 'दैनिक प्रकाश' में लिखा – ''हिन्दुओं को हिन्दू सभाओं को चाहिए कि वे भंगी, बसोर आदि अछूत माने जाने वालों की सभा करें, उन्हें सफाई से रहने व शराब वगैरा नशीली चीजों को छोड़ने की नसीहत करें। उनको हिन्दू धर्म व विधा की महिमा बतलाएं, उन्हें मंदिरों में भगवान के दर्शन करने दें। उनमें प्रेम और सहानुभूति दरसावें, उनको स्कूलों में पढ़ने को भरती करें और उनको सब मनुष्योचित हक दें।''[१२]

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्रकारिता ने क्षेत्रीय सांस्कृतिक अभिरुचियों को भी विकसित किया। नैतिक आदर्शों एवं धार्मिक मूल्यों के बारे में प्रेरणास्पद लेख लिखे। इनसे सांस्कृतिक मूल्यों के विकास में मदद मिली, जिससे क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना विकसित हुई। बुन्देलखण्ड के जनमानस का आत्मिक परिष्कार हुआ। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं ने अनेक लेखों के माध्यम से भारतीय एवं बुन्देली संस्कृति एवं साहित्य को रेखांकित किया। उन्होंने सामान्य जनता को यह बताया कि स्वाधीनता हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है। इसी स्वतंत्रता के महत्त्व को लेख की निम्नलिखित पंक्तियां दर्शाती हैं – ''सबसे पहिले तो अगर विदेशी राजा राज्य करता है तो वह देश की आजादी को हरण करके देश को गुलाम बनाता है। उसके स्वतंत्रता के भावों को पीस डालता है। सब लोगों को कायर, दब्बू और तुच्छ बना देता है। निर्भयता और स्वतंत्रता धर्म की सबसे पहली सीढ़ियां हैं, इनसे विदेशी राज्य देश की जनता को वंचित रखता है, इससे हमें स्वराज्य लाना चाहिए क्योंकि यथा राज्य तथा प्रजा की कहावत कहावत नहीं है, वह एक सत्य सिद्धांत है। अन्याई राजा के प्रतिकूल विद्रोह या राजद्रोह ही सबसे बड़ा धर्म

है। विदेशी राज्य के राजद्रोह ही परम धर्म है।''[१३] लेखों के अलावा कविताओं के माध्यम से भी सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की गई है।

'छत्ता तेरे राज्य में धक–धक धरती होत, जित नित घोड़ा मुख करे उत–उत फत्ते होय' पंक्तियां हमारे देश की वीरता की संस्कृति को चित्रित करती है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान इसी वीरता की संस्कृति ने भारतीय नवयुवकों को सर्वाधिक प्रभावित किया और उनमें राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत की। 'बुन्देलखण्ड केसरी' ने अपने बुन्देलखण्ड नवयुवकों से अपील की – ''कम से कम बुन्देलखण्ड में ऐसा कोई न होगा, जो महाराज छत्रसाल का नाम ना सुना हो, परन्तु उनमें से शायद ही कुछ ऐसे होंगे जो अपने जीवन को उनके अनुसार बनाना चाहते हों। महाराज छत्रसाल क्या थे, मानो देशभक्ति के जीते जागते अवतार थे, वीरता तो कूट–कूट कर उनमें भरी हुई है। हमारी अपील खासतौर से बुन्देलखण्ड के नवयुवकों से है कि वे खासतौर से महाराज छत्रसाल का जीवन पढ़ें और उसे अपनी जीवन में मिला दें।''[१४]

सामाजिक क्रांति के साथ बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं ने सांस्कृतिक क्रांति में भी सहयोग किया। स्वस्थ सांस्कृतिक मनोरंजन के साथ ही पत्र–पत्रिकाओं ने व्यक्ति के बौद्धिक विकास को भी प्रोत्साहित किया। इससे सांस्कृतिक समन्वय की भावना जागृत हुई। इन पत्र–पत्रिकाओं ने शुरुआत से ही समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध करते हुए सांस्कृतिक धरोहर की सभी तरह के बाह्य आक्रमणों से रक्षा की। साथ ही बुंदेली शिल्प कला, साहित्य, नृत्य, संगीत, योग और आत्मिक उत्कर्ष के प्रमुख माध्यम से रूप में प्रस्तुत किया।

बुन्देली पत्र–पत्रिकाओं ने हमारी सांस्कृतिक अभिरुचियों को विकसित किया। इसमें 'मधुकर', 'लोकवार्ता', पत्रिकाओं का उल्लेखनीय कार्य रहा। सांस्कृतिक अभिरुचि के अन्तर्गत धर्म, नीति, दर्शन, समाज, साहित्य, मनोरंजन आदि के विभिनन रूपों को सम्मिलित किया गया। सांस्कृतिक अभिरुचि के अलावा उपर्युक्त पत्र–पत्रिकाओं ने बौद्धिक, भौतिक और वैज्ञानिक चेतना को सांस्कृतिक आवरण प्रदान किया। इनमें ऐसे लेख, कहानियां और कविताएं प्रकाशित हुई जो हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुए। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं ने हमारे राष्ट्र की आकांक्षाओं, प्रेरणाओं तथा विचारों को समुचित स्थान दिया। साहित्य की अनेकानेक प्रवृत्तियां इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से देश–दुनिया में प्रचारित–प्रसारित हुई। निबन्धों के माध्यम से तत्कालीन विविध उपलब्धियों के जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए, वे मानवीय चिन्तन से ओत–प्रोत थे।

सांस्कृतिक अभिरुचि का विकास ही बुन्देलखण्ड की पत्र–पत्रिकाओं का मूल ध्येय रहा, इनमें ऐसी पर्याप्त सामग्री होती थी जो व्यक्ति में नैतिक आदर्शों के प्रति व्यक्ति एवं समाज को प्रेरित करती थी। स्वार्थ, द्वेष, ईर्ष्या, आदि मनोवृत्तियों से छुटकारा दिलाने वाली पर्याप्त सामग्री इन पत्र–पत्रिकाओं में होती थी। ये सभी पत्र–पत्रिकाएं जनता के मानसिक विकास में सहायक सिद्ध हुई।

संदर्भ –

१. वाल्टर लिपमैन – पब्लि. ओपिनियन, पृ. ३६५

२. ई.एम.एस. नंबूदिरिपाद – एक हिस्ट्री आफ इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल, पृ. १५९–१६०

३. रैलेण्ड ई. वुल्जले – जर्नलिज्म इन मार्डन इंडिया, पृ. ८

४. दैनिक प्रकाश, १० जुलाई १९२३

५. दैनिक प्रकाश, १३ जून १९२३

६. जैक वाडिस – इण्ट्रोडक्शन टू नियो – कोलोनियलिज्म, १९६७, पृ. १५

७. बुन्देलखण्ड केसरी १९३३, पृ. १४–१५

८. दैनिक प्रकाश, १३ जून १९२३

९. बुन्देलखण्ड केसरी, दिसंबर १९३३, पृ. ३३

१०. जैक वाडिस – इण्ट्रोडक्शन टू नियो – कोलोनियलिज्म, १९६७, पृ. २०

११. दैनिक प्रकाश, ३ जुलाई १९२३

१२. दैनिक प्रकाश, ६ जुलाई १९२३

१३. बुन्देलखण्ड केसरी, दिसंबर १९३३, पृ. १४–१५

१४. बुन्देलखण्ड केसरी, दिसंबर १९३३, वही पृ. ७

– शास. म.ल.बा. महाविद्यालय, ग्वालियर

बँधत धरौ ना जी कौ

– डॉ. हरिसिंह घोष

रै रै कैं उकलावै, कैसउं, बँधत धरौ ना जीकौ।
कैबे सें हरवाय भले, पै को सुनहै रस फीकौ।।
हिय में उठत हूक–सी ऐसी, कातन बनत न तैसी,
जी नइं लगत और चरचा में, सोचत कैसी–कैसी,
पेटहिं चलत मथनियां–सी, औ कटिबो कठिन घरी कौ।
कैवे सें हरवाय भले पै, को सुनहै रस फीकौ।।
रै रै कैं उकलावै..........।।

कैकें गये ते सात रोज की, तनक कलेऊ धरकें।
जौ पखवारौ लगो दूसरौ, काँ रै गये पसर कें।
का करिये ऐसइ कै आवै, जी तलफत जब जीकौ।
कैबे सें हरवाय भले.पै, को सुनहै रस फीकौ।
रै रै कैं उकलावै..........।।

जे कारीं भादों कीं रातें, बदरा गरज डरावैं।
दामिनि दमकत छाती फटवै, जी की कीसें कावैं।
बूँदें छन्न–छन्न–सीं तन पै, तवा चढ़ो आगी कौ।
कैबे से हरवाय भले पै, को सुनहै रस फीकौ।
रै रै कैं उकलावै..........।।

– घोषियाना, छतरपुर (म.प्र.)

व्यंग्य –

पटवारी साब की कलम

– रामस्वरूप दीक्षित

संसार सागर में दो बातन को कौनऊ तरां सों मेंटो नई जा सकत, एक तौ विधना कौ विधान, दूसरी पटवारी साब की कलम। सरगलोक में जैसो चलता बिरमा जू कौ धरती पै ऊसई चलता पटवारी साब कौ। विधाता की कलम से कोऊ की तकदीर लिखवे में कौनऊ कमी हो गई तौ ऊहां पटवारी साब अपनी कलम चलाकें ऐसौ लिख डारत कै विधाता कौ लिखो तौ तनक–मनक नाय कौ मांय कम–जांदा हो सकत, मगर पटबारी जू की जो कलम चल गई उतै कोऊ की का मजाल कै रत्तीभर टस से मस हो जाय। पटवारी की कलम पै फिर काऊ की कलम नईं चलत। बड़े–बड़े ज्ञानी–ध्यानी की कलम में आज भले कौनऊ तागत ना रै गई होय अकेलें पटवारी साब की कलम ओई हजारन साल पुरानी करतूत की हुनर सें चाये जीं के संगै चाये जो सो कर सकत। खिसयानो देवता और खुर्रानो पटवारी की के संगे कबै का कर दैबे, बिधाता लौ नई जान सकत।

पटबारी साब की उमङ्ग में आबै तौ छिनभर में बड़े जिर्मीदार को कंगाल और कंगाल को जिर्मीदार बनाबे की जादू कैसो हुनर संसार में भगवान से इनई भर को मिलो हुइयै। इनकी कलम से भू–आन्दोलन कौ जनम कबै हो जाए कोऊ नई जान सकत। सारी संसारी में पटवारी साब छिन भर में समाजवाद ल्याबे की पूरी ताकत अपनी कलम में अकेले की दम पै रखत, जौ सब कोऊ जानत। उनकी उमस में आवै तो डेढ़–दो मईना में अपनी कलम सें ऐंसी तरक्की करकें दिखा सकत। जो सरकारें हजारन साल में नईं कर पाउतीं। पटवारी साब लौ रुपइया पइसा छौंदि, सोउ बे गांवन में समाजवाद लाउन लगे। गरीब किसानन के पट्टन पै मिली तनक–मनक जिर्मीं–जांगा के ऊपर चलते पउवा वारन कौ कब्जा करवाउन लगत।

हमाये विचार सें कानून कायदन कौ जनम पटवारी की कलम सें भओ हुइये। पैले इनई की कलम सें नये नियम कायदा निकरत फिर अदालत, तासील और पंचायतन में खूबई फूलन–फलन लगत। अदालत तासीलें इनकी कलम की दम पै टिकीं हैं। जौ सबकोऊ जानन लगो है। इनकी कलम न चलै तौ समझ लौ दुनिया भर की अदालतें पल भर में ठप्पई हो जैहें। हमाई पटवारी साब सें हाथ जोर के विन्ती है कै बे ऐंसो न करबें। नईंतर जमीन–जादाद सें जुरे सबरे हाकम बेकार होकें रोजी रोटी के लानें भैरान लगें। ऐंसो भए से हमाये देश में भौतउ जांदा भुखमरी फैलन लगे। पटवारी कक्का चाहें तो खसरा–खतौनियन में फसलन की खूब पैदावारी भरकें सरकारी आंकड़न में बढ़ोतरी कर खानी–पीनीं जिनसन सें देश के भण्डारन में नांज–पानी धरो सम्हारो न राये। बे चायें तो देश की जिर्मीं–जांगा रकवन में चाये जितनी घटाबढ़ा देबें। एक समय की बात है हमाये देश के पैले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू जू ने कूरा–खाद की बढ़ोतरी के लाने किसानन की भूमि में खदरा खुदवाबे की नयी सरकारी योजना चलाई। ओई समय पटवारियन की लेखनी नें ऐंसो जादू घांई कमाल दिखाओ कै उतनी देश के किसानन लौ खेती की जमीं लौ न हती जितने सारे कूरा–खाद के लानें अपनी कलमन सें खसरा–खतौनियन में खुदवाए गए खदरा लिख कैं दिखा दये।

पटवारी की कलम में बा ताकत है कै जियत किसान को मार सकत, औ मरे किसान को जिंदा कर सकत। जिमिंदार को भूमिहीन और भूमिहीन को जिर्मीदार बनाबो, उनके लाने बायें हाथ को खेल होत। एक जिंमी बारे किसान को एक बेर एक पटवारी साब नें सरगवासी कर दओ। ऊकी जिंमी–जांगा ऊके भइयन के नांव करवा दई। किसान के भइया जब पटियन पै कब्जा करबे पौंचे तो जिंमी के मालिक नें भइयन को ऐसो करबे से रोको। तौ ऊके भइयन नें कई कै हम औरन ने पटवारी साब से मिलकें तुमें सरगराजा बनवा दओ। अब तुम इन पटियन के मालिक नईं रये। ईंसें जे पटियां हमाये हवाले कर दो। नईंतर अबै हमने खसरा–खतौनियंन में तुमें मरवाओ अब हम औंरें खड़ेलुअन सें मार–मार कर कैं सरगे पौंचा दैहें। फिर अदालत से बरी हो के तुमाई सबरी जमीन हथिया लैबी। कयें सें पटवारी साब की कलम तुमें पैलई सरगे पौंचा चुकी है। सो उनकी कलम को लिखो। विधाता लौ नई पलट सकत।

ऐसौ हाल सुनकें बिचारो किसान हरदरया गओ। ऊनें तासीलदार से उजर करी – हजूर मैं बदलू, पिसरान, पलटू, साकन, झगरपुरा कौ रिवैया हौं मैं अबै जियत हौं मोरे गांव के पटवारी साब नें खसरा–खतौनी में मोये मरो दिखा कैं। मोरी जमीन मोरे भइयन के नाम कर दई। तासीलदार साब नें नकल के मुताबिक खसरा–खतौनी की जांच परक की। ऊमें बदलू के नांव के आगें सरगवासी लिखौ देखकैं तासीलदार साब ने कओ कै तुम झूठी बोलत हो। तुम बदलू नोंई बदलू कौ तौ हमाओ पटवारी कभऊं कौ सरगे पौंचा चुको।

नईं हजूर मैं बदलू हौं, मैं अबै जियत हौं, बिचारे किसान नें घिघया–पतया कैं खूब बिनती करी, अकेलें तासीलदार नें ऊ बिचारे की एकऊ लौ न सुनी, अखीर में फैसला सुनाउत भये बे बोले मोये अपने पटवारी पै पूरौ भरोसो है, ऊ कभउं गलत काम नईं कर सकत। ऊकौ लिखौ कभउं झूंठौ नईं हो सकत। बदलू जाव तुम मर चुके।

अपने पटवारी साब की जै मनाओ कै उन्ने तुमें संसार सागर के मोयजाल के जंजाल से छुटकारा दिवा कैं सरग राजा बना दओ। नईंतर आदमी कौ न जाने कितने धरम–करम, पुण्य–दान करबे के बाद सरग कौ सुख नईं मिलत। तुमें बिना कछु करैं–धरैं हमाये पटवारी की कृपा सें सरग कौ सुख मिल गओ। ऐसौ सुख छोड़कें तुम नरक के कष्ट ठेंके काय भोगबो चात। किसान बेचारो मन मारकें अपनो सो मौ लेके घरै चलो गओ।

कछु दिनन में ओई जिर्मीं–जांगा हो भैयन–भैयन में लड़ाई–झगड़ा में डंडन की मार सें ऊ किसान सांसऊ सरगे चलो

गओ। पटवारी साब की कलम अखीर में सांसी साबित हो गई। उनकी कलम जियत को मारत है तौ मरे को जियाउत सोउ है। चुनाव के समय कइयक बोटे डारबे वारे जिन्दा मर जात औ मरे जिन्दा हो जात। पटवारी की कलम चुनाव के समै छोड़ कैं बढ़ती जनता पै खासी लगाम लगाउत। किसान की फसल पटवारी की कलम सें जब देखो तब घटत--बढ़त रात। उनें कछु ना मिलो सो उन्नें फसल घटाबे--बढ़ाबे को गुन्तारौ शुरू कर दओ। गांव में जमींन को असली मालिक राजा घांई पटवारी होत। जितै जितै भूम उतै उतै पटवारी। जां भूमि नइयां उतै पटवारी नइयां। एक के बिना दूसरो होई नईं सकत। पटवारी भारतभूम को असली विधाता सोउ कहाउत। ध रती माता कहाउत। सो पटवारी साब की कलम की कृपा सें कइयक बेर धरती माता कुमाता बनकें अपने मोड़ा--मोड़ियन कें प्रानन को कारन बन जात। पटवारी साब की कलम तनक नांय से मांय चली सो कइयक धरती लोक से परलोक चले जात। धरती माता के पूत दो--दो अंगरा जांगा के लानें लड़--झगड़ कें हंसत--हंसत टका से प्रान दैबे सें नईं चूकत। पटवारी साब की कृपा सें। भारत भूमि में धरती मइया सें इतनौं जांदा प्रेम इतै के लोगन में उमड़ परत कै अपनी जान लौ निछावर करबे सें नईं चूकत।

पटवारी साब धरती मैया को कलकाल में सबसें बड़ौ देवता मानो जात। धरती पै कौनउ काम करबे के पैलां खसरा--खतौनी के साथ पटवारी साब को सिर आंखन पै पूरी सिरधा सें मनाओ पधाओ जात। पूरे विधि विधान सें चढ़ोतरी चढ़ाकें उनकी टकाटौरियन सें पूजा अर्चना करनें परत। एई कलम के चलैया पटवारी साब को कभउ लांच--घोंच के लालच में पकड़े गये की खबर सुनै हां मिलत तो हमें भौतउं बुरओ लगत।

पटवारी साब को दई जाबेवारी दान--दछिना को लांच--घोंच माननां सोरउ आना गलत है। उनको पकरना तो औरई गलत कहाउत। उनको लाच--घोंच की आड़ में पकरबे वारे सुनलो तुम सोउ ओई धरती पै दूध--करूला करत हो। तुमारे सोउ कौनउ दिनां पटवारी साब सें काम परै। सो लांच--घोंच की पुरिया दबायें उनके पोंदन पछायें फिरत दिखैहो। पटवारी साब के सामूं एक दिन अपनो माथौ गरब सें झुकाउने परहै। हमाओ देस खेती किसानी को देस कहाउत किसानी धरती पै होत पटवारी ऊकौ सबसें बड़ो देवता मानो जात धरती कौ मालिक ओई कहाउत एई सें पटवारी साब भौतउं महान हैं उनकी पूजा अर्चना होत, चढ़ोतरी चढ़ाई जात, उनकी कलम में ऐसो कमाल है जादू है जो चाहे सो करबे की ताकत है। उसकी कलम के लिखे आखर विधाता लौ नई मिटा सकत। एई सें गांव के लोग उनके गुन गाउन लगत कै कलकाल के हैं बड़े देवता जे पटवारी कक्का।

(हिन्दी से बुन्देली अनुवाद : डॉ. के.एल. पटेल)

– सिद्धबाबा कॉलोनी, टीकमगढ़

कितें हिरा गये

–साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी

कितें हिरा गये, तुम कितें हिरा गये?
ज्यू की ई कुरैया पै, लरम सी लकरिया पै
बैमां भर सें बड्डी, आरी चला गये।
कितें हिरा गये, तुम कितें हिरा गये?
दुनिया कों बतकारों कालौ बताबें
बिन होरी फगयारी मोखों बताबें
टोन्ट के पटाखन सें रोजई जराबें
जानें किन करमन की गुर्र है भजाबें
प्रेम की पुगैया पै, ख्याल की जुन्दईया पै
ओ ऐबी! जबसें तुम नाव खुदा गये
कितें हिरा गये तुम कितें हिरा गये?
उतयाने ख्याल गैल छैंकत हैं मोरी
खबर के खतन खों ठंड लगन लगी थोरी
मिठयादीं बातें तोरीं कऊँ तौ नईं कोरी
भुमन लगी अंदेसे की अब तो भौंर भोरी
खुशी की चिरैय्या खों, सूदरी मुनैया खों
झटका दें कैसे बुरये दिनां दिखा गये
कितें हिरा गये, तुम कितें हिरा गए।

– ७२१, चित्रा चौराहा (ऐबटगंज)
झांसी उ.प्र.

फागुन

– डॉ. एस.बी.एल. पाण्डेय

गओ माँव को मइना, अब तो आगओ फागुन द्वारे।
पिचक, रंग, लयें, लयें सब फिर रये, गलियन गलियन द्वारें।
बड़ी हुलक सें हुलसत फिर रये, वे जो निकरें द्वारें।
रंग सें सराबोर हम कर दें, उनखां उनके द्वारे।।

उननें ध्याँस लई मन में, हुरियारे जुर गये द्वारे।
ठान लई कै हम भी अब, तनकऊ न निकरें द्वारें।।
गोरी की चोली रई कोरी,. निकरी नई वे द्वारें।
दाँत निपोरे लौट गये सब, अपने अपने द्वारें।।
सबके, पीतम सबके संगै, उनके बाहर द्वारें।
पीत गात पर गओ वियोगन, अबलौं आये न द्वारे।
लाजन पूँछ सकें न कोऊ सें, कब वे आयें द्वारें।
दोऊ अँगुरियन की खिड़की सें, छिन पल देखें द्वारें।
लाल हरौ पीलो औ कसाई, रंग सबहिं है द्वारें।
उनकी सूरत बसी नयन में, जोहैं नयनन द्वारें।
अब हमखाँ का करनै, कै को आरओ जारओ द्वारें।
श्याम कै रंग में रंग गओ जियरा, औ वे हैं हिय द्वारें।।

– बड़ा बाजार, मऊरानीपुर
जिला झांसी उ.प्र.

महुआ जैसी महक तुम्हारी

– जगदीश प्रसाद रावत

बसंत ऋतु के बाद बुन्देली के सभी क्षेत्रों में एक विचित्र किस्म की मादक महक बनन–बागन, तन–मन में और चौतरफा बगरन लगत, महकन लगत। बुन्देली जनपद की पहचान महुआ, बेर, मकुइया, मुरका, बिरचुन और आमन सें है। ऐई सें एक केंनात इतै के कण–कण और आदमी के रग–रग में रची–बसी है –

महुआ, मेवा, बेर, कलेवा, गुलगुच बनी मिठाई,
जो तुमावो गर रुचै तौ, करियौ इतै सगाई।

उच्च वर्ग में महुआ शौकिया तौर पै खाओ जात है। मध्यम वर्ग में इयै मजा–मौज के लाने खानें परत है और गरीब जनन खों महुआ कितऊँ मजबूरी है तौ कितऊँ मुसीबत। जब जा देशी दारू के रूप में आचमन करी जात जियै ग्रहण कर आदमी ब्रह्मलीन हो के साक्षात परम पिता पनमेसुर से सूदौ साक्षात्कार करत। पियत–पियत पौआ सें असेरा और फिर सेर भर पी कें शेर बन जात। पैंला ब्रह्मलीन फिर मस्त फिर शेर सी दहाड़ और अंत में सुस्त हों के सुस्तान लगत फिर बेचारे धुत्त होकें सो जात। पियक्कड़ कभंउ–कभंउ ऐसौ बतकाव करन लगत–एक–यार अपनी देसी ठर्रा कें ऐगर विदेशी दारू पासंग नइं लगत, ऐसी सिर चढ़ कें बोलत और विदेशी पी कें भौंरिया से भुमत और डोलत। दूसरा–भैया अपनी महुआ की कौ खुमार भुन्सारे लों नई उतरत पै जा विदेशी अंगूर की बेटी तौ चढ़तन उतार जात। ई अंगूर की बिटिया सें अपनौ महुआ कौ मोंड़ा साजौ है। उनें मधुशाला प्यारी, हमाइ कलारी न्यारी।''

सई बात तों जा है कै महुआ बुन्देलखण्ड में लोक कौ सबसें उपयोगी लोकप्रिय और प्यारौ रूख है। महुआ एक ऐसी वनस्पति की जात है जियै तरल और ठोस दोइ रूपन में उपयोग में लाओ जात। मानें महुआ खों पी लो और खा लो। वनवासी और आदिवासी कौ जौ कल्पवृक्ष के समान हैं। इयै जे ओढ़त और बिछाउत हैं। इनकी जिंदगानी में शामिल हैं जौ पेड़ इनके कुटुम्ब के बुजुर्ग की घांई। और पेड़ काट सकत पै जे मौड़ा पै कुलइया नई घाल सकत। काए कैं ई पेड़ के पंच अंग जड़, तना, पत्ती, फल और फूल भौत कामें आउत, ई की अंकुरण क्षमता नोंनी है। पेड़ सें इमारती काठ, पत्तियन सें छांयरौ, फूल सें देशी दारू व्यंजन लटा, डुबरी, मुरका, तिलकूटा, महुआ फल सें गुली का तेल जो खाबे लगावे और रात के ढिबरी में जलावे के काम आउत ई की खली बड़े चाव सें ढोर–बछेरू खात। माने महुआ एक, लाभ अनेक।

महुआ की महक अपने–आप में अद्‌भुत होत, उयै ई के अंगाई अरगजा और इत्र–फुलेल की सुगंध नोंनी नइं लगत। ''गर्दभ कितै अरगजा लेपन, श्वान नहाये गंग।'' की उक्ति इतै चरितार्थ हो जात। महुआ की महक कें ऐंगर 'बच्चन' की मधुशाला की मोहकता और मादकता पानी भरन लगत। और तौ और भैया, इतै की देशी दारू दवा कौ सोई काम करत, अगर मूड़ पिराओ, हात–गोड़े दुख रये, मन मलीन है तो हम निवाला हम पियाला कान लगत 'भैये लौ लो एकाध' आज भौत खुशी है ई सें तनक–मनक पी लई। महुआ की शिबाम्बु इकलौतौ ऐसौ पेय है जो सुख और दुख दोई में पियो जात।

बुन्देलखण्ड के गांवन में बांस और महुआ भौत लोकप्रिय हैं, जे दोई पेड़न की जातें गरीब तबके के लाने प्राणवायु कौ काम करती। बांस के बिना गांव की जिंदगी अधूरी है, बसोर भूंकन मरन लगत, किसान हैरान हो जात, वैसई महुआ के बिना जीवन सूनौ है। महुआ मौ तक ल्यावे के लाने कितने जतन करने परत। अगर जान लैहौ तौ मों करेजे तक आ जैहै। ई गर्मी की रितु में ब्रह्ममुहूर्त में बड़े भुनसारें उठकें सुदूर जंगल जाने परत। मौआ चोंखा और जंगली जानवरन सें डर अलग बनो रहत, भालू, सोनकुत्ता, सेही, तेंदुआ, जंगली सुअर, नीलगाय और मुतकेरे वन्य प्रानी हैरान करत ई बेराँ। का पतो कौन भुका भुके में झपट परै और महुआ के ऐवज में प्राण–पखेरू उड़ जांय।

महुआ बीनन जावें कहना, बहना का क्या कहना,
उठें भोर सें पिरिया लैके, का–का परबै सहना।
रोज जिनावर वींचा बहना खों ही परबै रहना
'जगदीश्वर' जोवन के संगै, लूट न ले कोउ गहना।

महुआ बीनने में पेड़ के नैंचें लीपने और सफाई करने परत जी सें महुआ माटी मिले न हो पावे। रात भर सफेद महुआ के फूल मोती की नांई झर–झर टपकत, फूल से झरत जैसें चांदनी रात में चन्द्रमा से अमृत बरसत होय। महुअन की जा बरसात तन–मन खों भिगां देत। महुअन की ढोर–बछेरुअन सें रखवाली करने परत जो एक पसीना चूवे वारौ काम है। दिन भर ढोर हांकत रओ। महुआ बीनने की कला सबइ खों नई आउत। ई में ग्राम्य बालायें जादा आतुर होतीं। महुआ टिपरियन–गुट्टन में भरकें घरै लै जावौ और उयै बड़े जतन सें उलटा–पल्टी करकें, डारन में भंडारित करवौ बड़ौ कठिन काम है। गर्मी के मौसम और आंधी ठंड के सीजन में गरीब ई काम में लगे रहत। खासतौर सें आदिवासी। वनवासी हजार काम छोड़ दें पै महुआ बीनवौ नइं छोड़ सकत। जा उनकी साल भर की फसल आय। जियै वे बेंचत, खात और पियत हैं। फिर भला कैसें वे जा फसल बीनवे सें चूकें।

आमतौर पै महुआ के सफेद फूल खों 'महुआ' और ई के फल खों गुली कहो जात है जो गुलेंदरे के हरे आवरण से बंद रहत है। फूल खों सुका कै महुआ और गुली कें फोर कें धपरा बना के ई के फल की दो फांकें अलग–अलग करकें सुखा कैं फिर घानी (कोल्हू) में पैर कें महुआ कौ तेल बनत है, जियै आदिवासी बड़े चाव से शरीर में लगाउत रात में जलाउत, लुचई (पूड़ी) बनाउत, पराठे, बघार दैबे और बन्न–बन्न के तैलीय व्यंजन बनावे में इस्तेमाल करत। महुआ की ऐई से बात न्यारी है। ईसें भांत–भांत की चीजें बनाव, खाव और खिलाव।

महुआ ऐसौ बिरछ है, जैसें बिरछा कल्प।

फल–फूल मिलबे मुलक, मेहनत भौतई अल्प।

महुआ के पेड़ की जा खासियत है कै जब जौ जिन्दा और गीलौ होत तौ जौ भौत कमजोर होत और ई की डगार, पत्ता तोड़वे पै ई में से दूद निकरत, जैसई जौ सूक जात तौ काटवे में कुलइया तक लफ जात, टेढ़ी हो जात। ई की अंजाई और छत्र वितान के कारन जौ जंगल और खेतन में सीना ताने आकाश खों चुनौती देत ठाढ़ो रहत। ई की महत्ता के कारण आदिकाल से महुआ काटबै पै रोक हती। पै हरां–हरां ई की डांगे साफ होन लगी। बाजारवाद बढ़ौ तों लोग जा भूल गये कै महुआ अकेलौ एक वृक्ष नैया, जौ वटवृक्ष है जो इतै की संस्कृति और अहार अपने में समेटे है। महुआ इतै के लोकाचार में शामिल है। ई पेड़ की पूजा करी जात। ई के महुआ फूल पूजा के काम आउत। पेड़ छाया देत। महुआ में भौत से औषधीय गुण हैं जो ग्रामीण नित प्रति पालन करत।

महुआ इतौ कौ मूल लोक भोजन है। जौ इते के वनवासियन कौ मजेदार मादक द्रव और खाद्य पदार्थ है जो उनके सांस्कृतिक परिस्कार में शामिल है। इतै के लोकरंग, तीज–त्योहार, ऐई महुआ के मजेदार पकवानन और सेवन में आबद्ध है। इनकौ ई सें चोली–आंचर जैसे संग हैं, ई के बिना इनको जीवन बेमजा, बेरंग और मासूम हो जात। इतै के रहन सहन, नवाचार में महुआ अनिवार्य है। मादल की थाप, लोक स्वर लहरी, लोकरंजन और लोकमन की मौज मिलकें ई की मादक महक में गरीबन के दुख–दर्द, शोर संताप और जीवन में जीवंतता छा जात। देखत में हल्के लगे, करबै काम अनेक।

महुआ की मादकता न्यारी, ज्यों केसर की क्यारी,

हमनें जनम–मरन लौं कर लई, है महुआ से यारी।

मादल की थापन पै नाचें, ताल–तरंग कुमारी।

मस्ती में झूमै हर बस्ती, मुदित बाल–नर–नारी।

मकद फसल कलदारी महुआ, करत न कभउं उधारी।

'जगदीश्वर' बुन्देलखण्ड के महुआ–प्रेम–पुजारी।

सूका और अन्न संकट में महुआ के सुखाये गये फूल दीन–हीनन खों बड़ौ सहारौ देत। हरषष्ठी के दिनों इन महुअन की पूजा होत इने प्रसाद के रूप में प्रेमपूर्वक खाते। लोग इनइ पेड़न सें अपनी तात्कालिक जरूरतें पूरी कहत। महुआ बुन्देलखण्ड कौ आंचलिक वृक्ष है। जे फलदार वृक्ष संकट के साथी बनत, प्राकृतिक आपदा के समय जे मित्रवत व्यवहार करत। सहारा बनत, संकटमोचन है महुआ। जेई कारण है कै महुआ पेड़ कटवे की वेदना है संवेदनशील लोककवि के मन में। वे मानत और जानत हैं कै महुआ कटी तौ संस्कृति मिटी, संस्कार घटे, प्रकृति रूठी तौ पर्यावरण प्रदूषन खरडूषन की नांई बढ़ो। कवि लोक क्षष्टा के संगै लोक दृष्टा सोई होत ई सें वौ हरे पेड़न की हरवा खों देख व्यथित, विचलित और आहत हो जात। वौ फलदार वृक्षन कौ महत्व समझत है। एक महुआ कौ पेड़ काटवे से कितने घर–वार बेरोजगार हो जात। तुमें सुख चानें कै सूखा, तुमें छाया चाने कै मावा (लक्ष्मी, पैसा) तुमें दंगल चाने कै मंगल, जमें शांति चाने कै अशांति। अगर सब अच्छौ चाने तौ महुआ की रक्षा करौ। काय कै कालिदास घाई जी पेड़ पै बढ़े ओईपै काटे तो काल तुमें काट दैहे। काय कै पेड़ काल तक खों काटदेत जेई बात ईसुरी एक नसीहत दै कै कै रये –

इनपै लगौ कुलरियां घालन, महुआ मानस पालन

इनें काटवौ न चइयत तो, काट देत जो कालन।

ऐसे रुख भूके के लाने, लगवा दये नंइ लालन,

जो कर देत नई–सी 'ईसुर' मरी–मराई खालन।

– कमला कालोनी, छतरपुर म.प्र.

बुन्देली उत्सव कार्यक्रम २००६

१७ फरवरी, शुक्रवार, दोपहर १ बजे

उद्‌घाटन, बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं कुश्ती (दंगल) प्रतियोगिता

•

१८ फरवरी, शनिवार, दोपहर १ बजे

अश्व नृत्य प्रतियोगिता

•

१६ फरवरी, रविवार, दोपहर १२ बजे

रस्सा–कशी प्रतियोगिता

दोपहर २ बजे

बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता

सायं ६ बजे

बच्चों के बुन्देली आधारित कार्यक्रम एवं बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता

•

२० फरवरी, सोमवार, दोपहर १२ बजे

बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता

सायं ६ बजे

बुन्देली नाटक प्रतियोगिता एवं कछयाई गायन, चमरयाई बैठक

•

२१ फरवरी, मंगलवार, दोपहर १२ बजे

डोड़ा (नौका) दौड़ प्रतियोगिता

सायं ६ बजे

दिवारी (बरेदी नृत्य) दलदल घोड़ी नृत्य, रावला, ख्याल, कहरबा, लमटेरा, गारी, बनरे, सैर प्रतियोगिता

•

२२ फरवरी, बुधवार, सायं ६ बजे

ढिमरयाई, बहूरूपिया, कांडरा, कार्तिक गीत, गोटें सोहरे, दादरे, बिलवारी, फाग तथा आल्हा गायन प्रतियोगिता

•

२३. फरवरी, गुरुवार, सायं ६ बजे

समापन समारोह, राई तथा बधइया नृत्य एवं अन्य प्रतियोगिताएं

बुन्देली लोकगीतों में गोपियों का विरह

– डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

लीलाधारी श्रीकृष्ण की लीलायें सभी के मन को मोहती हैं गोपियों की प्रेममयी रसधारा में तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण सदैव गोते लगाते रहते हैं। महायोगीश्वर श्रीकृष्ण को नन्दगांव छोड़कर मथुरा कंसवध के लिये जाना पड़ता है। उनके मथुरागमन के पश्चात् नन्दगांव की गोपियों का बुरा हाल हो जाता है। श्रीकृष्ण के वियोग में उनकी दशा अत्यन्त मार्मिक हो जाती है। बुन्देलखण्ड वृज की सीमाओं से जुड़ा हुआ है। अत: जो कुछ भी ब्रज क्षेत्र में होता है उसका स्पन्दन बुन्देलखण्ड में जरूर होता। तभी तो यहां के लोक जीवन में उस विरह दशा को चिरस्मरणीय बनाने हेतु उसे लोकगीतों में ढालकर सदैव अपने कंठों से उसकी प्रतिध्वनि करते रहने की पहल की है। शास्त्रों में विरह दशा की एकादश अवस्थायें बतलायीं गयीं हैं। बुन्देली लोकगीतों में ये सभी अवस्थायें दृष्टव्य हैं –

१. अभिलाषा – श्याम रंग के बादल आकाश में छाये हैं। गर्जना हो रही है। मोर नृत्य कर रहे हैं। परन्तु यह पावस की ऋतु बिना छैल बिहारी के विरह जलन को और बढ़ा रही है। निम्न लोकगीत गोपी की यही अभिलाषा व्यक्त करता है–

मन भाये बदरवा स्याम बरन
गरजत मेघ चंहुदिस साजन
लागे मोरवा सोर करन। मन भाये...........।
गोकुल छैल बिन यह पावस रितु
लागी दूती बिरह जलन। मन भाये........।।
नटवर नागर सखि मन भावन
वेग मिलो दिल पीर हरन। मन भाये......।।

२. चिन्ता –विरह व्यथा से व्याकुल गोपी स्वयं ही प्रश्न करती हैं कि हे कान्हा! कल आप कहां थे? एक प्रेमिका का अपनी सौतन के प्रति डाह जहां इस लोकगीत में चिन्ता का आधार बनता है वहीं सूफी परम्परानुसार एक प्रेमिका का प्रेम भरा अर्न्तमन संवाद भी अत्यन्त मार्मिक है जो उलहना एवं व्यग्रता का दर्शन कराता है। गोपी के लिये कल कहां थे कन्हाई से उसकी चिन्ता स्पष्ट झलकती है–

कल कहां थे कन्हाई, हमें कल नींद नहिं आई।
तुमरी तो रैन चैन से गुजरी, कुब्जा से प्रीत लगाई।।
हम तलफे उंगरी कर मल मल, मुरकी नरम कलाई।
अपने जले कछु कह बैठूंगी, सारी कलई खुल जाई।।

३. स्मृति – बुन्देली लोकगीत तो स्मृति के पलों को ही अपने अंक में नहीं छुपाये हैं, अपितु वे तो भगवान श्रीकृष्ण की माधुरी छवि को ही स्मृति का आधार बनाकर जीवन जीने की साधना को मूर्त स्वरूप प्रदान करते हैं। गोपिका अपनी स्मृति में श्रीकृष्ण के एक एक अंग, उनके श्रृंगार का स्मरण करते हुये कहती है –

छबि बिसरत नाहीं बिसारो री, जब से पिया रूप निहारो री।
सिर पर मोर पंख, जुल्फ घुंघराली, बड़े बड़े नैनन वारो री।
मृदु मुसक्याय लखि सखी जब सौं, मौं चित्त भयो मतवारो री।
कब देखौं महबूब दृगन भर, अब कछु जतन बिचारो री।
जित मतवारो बलिहारी छैल पर, तन मन धन सब वारो री।।

४. गुण कथन – विरह के क्षण अत्यन्त मार्मिक होते हैं। विरह की छटपटाहट को एक गोपिका श्रीकृष्ण के गुण कथन से मिटाने का प्रयास करते हुये कहती है –

ध्यान धरें उन हर कौ ऊधौ ध्यान धरें।
ध्रुव की माय अधिक दुख दीन्हो, काम करो मन ही कौ।
जब जा देह ध्रुव स्वर्ग पहुंची, भजन करौ हरि ही कौ।
द्रोपद बीच सभा में ठांड़ी, खिंचो चीर तिनही कौ।
उनको अंग नैक न उघरो, सुमिरो नाम हरी कौ।
लै प्रहलाद खम्ब से बांधे, सुमरो नाम धनी कौ।
खम्ब फार हिरनाकुस मारे, बनके नाघ बानी को।
उनकी सुनी तो मोरी सुनियो, समझ प्रेमहित ही कौ।
कह 'हरदेव' राधिका बोली, हेत करो छल ही कौ।।

५. उद्वेग – विरह के समय मन उद्वेग से भर उठता है और उस समय गोपी अपने श्याम से कहती है –

मोरी खबरिया लै ले स्याम।
काहे हमको है तुम बिसराओ, मोरी खबरिया लै ले स्याम।
तुम बिन जिया मोरो घबरावै, नैना नीर बहावै।
धड़के छतियां मोरी मोहन, रह रह याद सतावै।
आजा आजा मोरे सांवरिया, मोरी खबरिया....।
तुम बिन सूना है ये मधुबन
सूनी हमारी सेजी, तोहरे खातिर,
लिख लिख पतियां हजारो भेजीं।
तुम बिन तरसे मोरी उमरिया। मोरी खबरिया....।
घनन घनन घन गरजत हैं घन, रिमझिम जल बरसावै।
डाल पै बैठी कोयलिया, कू कू आवाज लगावै
आजा गोकुल की नगरिया। मोरी खबरिया......।

६. प्रलाप – विरह के समय अपने श्याम के लिये गोपिकायें प्रलाप करती हैं। प्रलाप के समय नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होती है। शरीर की अवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है और उलहना से भरे वेदना के स्वर प्रस्फुटित होते हैं। गोपी श्रीकृष्ण से

प्रेम करके जल के बिना मछली जैसी तड़फ रही हैं –

इनसे प्रीत करी पछतानी।
लाल! अरे लालन पीर न जानी।
हम जानी ती ओर निबाहे, कठिन निठुरता ठानी।
जल बिन मीन दीन तलफत है, ऐसी बिपत कहानी।
या बिरहन की लगन कूटनी, कौन जाल अरु ज्ञानी।

७. उन्माद – विरह उन्माद बड़ा भयावह होता है। विरही के तन बदन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। एक गोपी पर विरही उन्माद छाया है। वह श्रीकृष्ण के विरह में सूखती जा रही है, उसे जब भी कोयल का स्वर सुनाई पड़ता है उसका हृदय टूट टूट जाता है। जेठ माह की तपती अग्नि में उसका शरीर सूख कर कांटा बन जाता है। वह विरह के क्षणों में अपनी उन्मादावस्था का वर्णन करते हुए कहती है –

बैरन कोयलिया रही सखी कूक–कूक,
जिया होय मोरो टूक टूक।
कोयल कूँ कूँ चिल्लाती, मोकों याद पिया की आती
आंसू दिन और रात बहाती,
माघ महीना रही खिरकिन ढूंक ढूंक, जिया होय मेरो टूक टूक।
फागुन में सबरी विरजरानी, पिया के दे पिचकारी
मैं बैठी घरसें दुखियारी।
चैत महीना में धरूं पांय फूंक फूंक, जिया होय मेरो टूक टूक।
बैसाख सखी नहिं आये रहाई, तजदई मोको किसन कन्हाई।
मोरी खबर सबई बिसराई,
जेठ महीना में रही मैं सूक सूक, जिया होय मेरो टूक टूक

८. व्याधि – विरह के समय विरह वेदना से शरीर अक्रान्त हो जाता है। फलस्वरूप शरीर पर रोगों के लक्षण लक्षित होने लगते हैं। रोग और वियोग के कारण जो सन्ताप होता है वही व्याधि का कारण बनता है। जब ऊधौजी श्रीकृष्ण का संदेश लेकर राधिका जी के पास जाते हैं तब राधिका जी व्याधि से पीड़ित हैं और ऊधौ जी को अपनी दशा बतलाती हैं –

ऊधौ लगी प्रेम की फांसी।
फांसी लगी, प्रान नहिं निकसे, भोग रही चौरासी।
जीवन मरण होय न हमरे, ठीक बैठ गई गांसी।
हमको जलम कहा बिधि दीन्हो, बास बदे बिरजवासी।
हरि के संग रहस में नाची, सो जा भई जग हांसी।
मोरी जड़ उपजी है कुबजा, मोह लगे अबिनासी।
भूखन मरै कुमेर धरम बिन, जल बिन मीन प्यासी।
कहँ 'हरदेव' राधिका बोली, हद कर मरती कासी।

९. जड़ता – विरह की अवस्था में जब विरही किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और उसे कुछ भी कर पाने का ज्ञान नहीं रहता है बस केवल अपने प्रेमी को पाने की उत्कट इच्छा भर ही रहती है। इस अवस्था को ही जड़ता की संज्ञा दी गई है। ऊधौ जी, श्रीकृष्ण का पत्र लेकर श्रीराधिका जी के पास पहुंचते हैं। जड़ता उस स्थिति में रहते हुये श्री राधिकाजी पत्र तो पढ़ लेती हैं लेकिन पत्र पढ़ते ही उनकी आंखें सूख कर पथरा जाती हैं और हृदय टुकड़ों–टुकड़ों में विदीर्ण हो जाता है। यह बुन्देली गीत इस अवस्था को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है –

ऊधौजी पाती काम नहीं आती।
निद्रा लगी खाट है टूटी, जगत बीत गई राती।
भोजन करे उदर नहिं भारे, ओसन प्यास न बुझाती।
जैसे नाग तजे किचुली को, फेर बाय न सुहाती।
जैसे तजो मोय ब्रजनन्दन, मोय बसन्त न भाती।
पाती देख देख राधा जी, सब पाती पढ़ जातीं।
पाती पढ़त सूख गई आंखें, टूक–टूक भई छाती।।

१०. मूर्छा – विरह की अग्नि अति विकल होती है। ऊधौजी से गोपिकायें कहती हैं कि हम तो कुंअर कन्हैया की प्रतीक्षा कर कर के हार गयी हैं। तभी ऊधौ जी ने श्रीकृष्ण मुरारी का पत्र गोपिकाओं को दिया, तो उस पत्र को लेकर सभी गोपिकाओं में लड़ाई होने लगी। फिर पत्र एक गोपी ने पढ़ा। पत्र पढ़ते ही गोपी मूर्छाग्रस्त होने लगी। बुन्देलखण्ड के लोक जीवन ने विरह में मूर्छा की अवस्था को बड़े सुन्दर ढंग से लोकगीत में सहेज कर रखा है–

ऊधौजी हम बाट हेर कै हारी।
हेरत हेरत साल बीत गई, नहिं आये किसन मुरारी।
ऊधौजी ने दै दई पाती, गोपिन मच गई रारी।
पाती पढ़–पढ़ बेसुध गिर गई, कहँ न करौ चिरारी।

११. मरण – विरह की सबसे भयानक अवस्था है मरण। ऊधौजी गोपिकाआं को ज्ञान की बातें समझा रहे थे तथा श्रीकृष्ण के सांसारिक स्वरूप को भूलने का प्रवचन दे रहे थे परन्तु गोपिकायें तो केवल श्रीकृष्ण की ही बातें सुनना चाहती थीं। जब ऊधौजी ने गोपिकाओं को श्रीकृष्ण के वापिस न लौट आने का संदेश दिया तो गोपिकाओं ने भी अपने प्राणों को तजने का दृढ़ विचार करके मूर्छित होकर गिरने लगीं। विरह की वेदना से तड़फती गोपिकाओं की मरण अवस्था इस बुन्देली लोक–गीत में दृष्टव्य है–

ऊधौजी हमें न होने गियानी।
हमें बताय देओ, नन्दलला की कहानी
काये नहिं आये, संदेसो पठाये, का करिबे की ठाहनी।
का संदेसो मुरलीधर भेजो, हमें बताओ गियानी।
सुन संदेसो गिरी पछाड़ खाय, औ मरबे की ठानी।।

बुन्देली लोक गीतों में शास्त्रीय तत्व तो उपस्थित हैं ही, इनके साथ–साथ लोक जीवन की निःछल प्रेम भक्तिसिक्त अवधारणा भी प्रचुरता के साथ दृष्टिगत होती है।

– बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई

मस्तानी और पेशवा बाजीराव

– डॉ. परशुराम शुक्ल

सन् १७२७, पन्ना राज्य के संस्थापक महाराज छत्रसाल बुन्देला अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। एक बार वे जैतपुर के किले में सपरिवार किसी आवश्यक कार्य वश गये हुए थे। वहां उन्हें किन्हीं कारणों से कुछ समय के लिये किले में रुकना पड़ा। न जाने किस प्रकार यह खबर इलाहाबाद के मुगल सूबेदार मुहम्मद खां बंगस को मिल गयी। वह महाराजा छत्रसाल का पुराना दुश्मन था और ऐसे ही अवसर की तलाश में था। मुहम्मद खां बंगस ने तुरन्त अपनी सेनाएं तैयार की और जैतपुर के किले को चारों तरफ से घेर लिया। महाराजा छत्रसाल को इसकी तनिक भी आशंका नहीं थी। वह न तो शरीर से शक्तिशाली रह गये थे और न ही उस समय उनकी सेना युद्ध के लिये तैयार थी। उस समय बुन्देलखण्ड और उसके आसपास कोई ऐसा शक्तिशाली शासक भी नहीं था, जो उन्हें मुहम्मद खां बंगस की आततायी सेना से बचा सकता। सभी तरफ से निराश हो कर छत्रसाल महाराज ने अपने राजकवि भूषण को बुलाया और उनके द्वारा पेशवा बाजीराव को पत्र भिजवाया, जिसमें उन्होंने अपने मान सम्मान की रक्षा के लिये पेशवा से तुरन्त सहायता की याचना की थी।

दैवयोग से बाजीराव अपने पूरे सैन्यबल के साथ निकट ही देवगढ़ में पड़े थे। महाराज छत्रसाल का सन्देश मिलते ही वह अपने पूरे दल–बल सहित गढ़ा मंडला होते हुए बुन्देलखण्ड आ पहुंचे। मुहम्मद खां बंगस पेशवा की शक्ति से परिचित था, अतः उसने किले का घेरा उठाने में ही अपनी भलाई समझी। इस तरह महाराजा छत्रसाल की आन रह गयी।

पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल की अत्यन्त दयनीय स्थिति में सहायता की थी, अतः कृतज्ञ होकर महाराज छत्रसाल ने पेशवा को अपना तृतीय पुत्र मान लिया तथा उन्हें पन्ना राज्य के तिहाई भाग का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इसके साथ ही चलते समय उन्हें राज दरबार की एक मुस्लिम नृत्यांगना की पुत्री मस्तानी भी भेंट कर दी। पन्द्रह वर्षीय मस्तानी रूप और लावण्यमयी, अद्वितीय सुन्दरी थी। गायन और नृत्यकला में पारंगत होने के कारण एक झलक में ही उसने पेशवा बाजीराव का मन जीत लिया। पेशवा शीघ्र ही मस्तानी, उसके परिवार के अन्य सदस्यों व चुने हुए शागिर्दों को साथ लेकर पूना आ गये। मस्तानी के साथ उसके एक वृद्ध प्रशिक्षक भी थे। आरम्भ में पेशवा ने मस्तानी व उसके साथियों के रहने के लिये अलग व्यवस्था की। यहीं पर मस्तानी की महफिल जमती थी, जिसमें पेशवा बाजीराव मुख्य अतिथि होते थे। मस्तानी के रूप में न जाने कैसा अनोखा आकर्षण था कि पेशवा हमेशा खिंचे चले आते थे। अब उनका न राजकाज में मन लगता था न किसी अन्य कार्य में। वह हमेशा मस्तानी के ख्यालों में ही खोये रहते थें। जब उन्हें अधिक बेचैनी होती तो वह मस्तानी के डेरों में आ जाते और उसके नाच–गानों की महफिल में डूब जाते। मस्तानी भी बाजीराव की दीवानी हो चुकी थी। वह दिन–दिन भर दरबाजे पर उदास खड़ी उनकी राह देखती और पेशवा को देखते ही उसके चेहरे पर चमक आ जाती, वह खिल उठती और पैरों में घुंघरू बाँध कर सारी–सारी रात नाचती। मस्तानी और बाजीराव का मिलन प्यार में बदल चुका था। दोनों एक दूसरे को तन–मन सब दे चुके थे।

पेशवा ने काफी समय तक मस्तानी को राजमहल से दूर रखा, लेकिन जब उनसे यह दूरी सहन न हुई तो वह उसे महलों में ले आये। मस्तानी केवल रूपसी व नर्तकी ही नहीं थी, बल्कि घुड़सवारी व तलवारबाजी मे भी काफी निपुण थी। वह बाजीराव पेशवा के साथ उनके युद्ध अभियानों में सैनिक वेशभूषा धारण कर उनके बराबर घोड़े पर चलती थी। केवल इतना ही नहीं मुस्लिम होते हुए भी मस्तानी ने धर्म परायण हिन्दू नारी की तरह जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया था। उसके खानपान, रहन–सहन, आचार–विचार सब कुछ कुलीन हिन्दू नारियों के समान थे। उसका प्यार एक हिन्दू स्त्री के समान पति परमेश्वर जैसा था। वह अपने प्रेमी बाजीराव के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थी।

मस्तानी के इन्हीं गुणों के कारण बाजीराव का उसके प्रति अनुराग बढ़ता गया। वह उन्हें अपने जीवन की बहुमूल्य निधि लगने लगी। वह अपने सैनिक अभियान में भी मस्तानी को साथ रखते। सन् १७३७ में जब बाजीराव ने सैनिकों के साथ दिल्ली की यात्रा की, तो मस्तानी उनके साथ थी। नीरस सैनिक अभियानों में मस्तानी के प्यार भरे मादक क्षण बाजीराव की विजय हेतु प्रेरणा स्तम्भ का कार्य करते थे। सन् १७३४ में मस्तानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। पेशवा ने इसका नाम शमशेर बहादुर रखा। इसी शमशेर बहादुर के वंशज आगे चलकर बांदा के नवाब बने। शमशेर बहादुर के जन्म के बाद मस्तानी के प्रति पेशवा की आसक्ति और गहरी हो गयी। उन्होंने पूना के सुप्रसिद्ध शनिवार बाड़े में मस्तानी के लिये अलग महल बनवाया और उसे मस्तानी महल का नाम दिया। इस महल की ओर से शनिवार बाड़े के परकोटे का एक द्वार था, इसे भी बाजीराव की प्रेयसी के नाम पर 'मस्तानी दरबाजा' के नाम से पुकारा जाने लगा। पेशवा को शिकार का बहुत शौक था। वह अक्सर अपने मनोरंजन के लिये दीवा के जंगलों में शिकार खेलने जाते थे। उनके साथ मस्तानी भी रहती थी। यहाँ पर भी उन्होंने मस्तानी के नाम पर एक सुन्दर सरोवर बनवाया तथा उसे 'मस्तानी ताल' का नाम दिया।

धीरे–धीरे बाजीराव की दीवानगी हदों को पार कर गयी। उन्होंने हिन्दू ब्राह्मणों का पवित्र जीवन छोड़ कर मांस–मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया। राजकाज और परिवार की चिन्ता वह पहले ही छोड़ चुके थे। मस्तानी पेशवा का जीवन बन चुकी थी। पेशवा की हर शाम मस्तानी के लिये थी। बाजीराव के महल में उनकी विवाहिता काशीबाई का जितना सम्मान था, उतना ही मस्तानी का होने लगा। मस्तानी और पेशवा के प्रेम सम्बन्ध अब गुप्त नहीं रह गये थे। उनके प्रेम के चर्चे जन साधारण की चर्चा का विषय बन चुके थे। सभी की जुबान पर मस्तानी और बाजीराव की

प्रणय गाथा थी। यह सब पेशवा के सगे सम्बन्धियों, स्वजनों तथा कुलीन ब्राह्मणों के लिये असह्य था, अत: उन्होंने इसका विरोध आरम्भ कर दिया। मस्तानी के कारण पेशवा को कई बार अपमान भी सहना पड़ा। सन् १७३९ में रघुनाथराव के यज्ञोपवीत तथा सदाशिव राव के विवाह संस्कार में कुलीन ब्राह्मणों और राज्य के अनेक उच्च अधिकारियों ने मस्तानी के कारण सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था। एक बार बाजीराव पेशवा मस्तानी को साथ लेकर छत्रपति साहू जी से मिलने गये। छत्रपति साहू ने क्रोधित होकर पेशवा से मिलने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार बाजीराव को अनेक बार घोर अपमान का सामना करना पड़ा, किन्तु इन सबका उनके अटूट प्रेम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

मस्तानी के प्रति पेशवा की प्रेमासक्ति को लेकर पेशवा के निकट सम्बन्धी बहुत परेशान थे। उनके हृदय में मस्तानी के प्रति दिन पर दिन रोष बढ़ता जा रहा था, किन्तु वे असहाय थे। यदि वे मस्तानी को समाप्त कर देते तो पेशवा इस षड़यंत्र में सम्मिलित सभी व्यक्तियों को निश्चित रूप से मृत्युदण्ड देते या मस्तानी के प्रति दीवानगी उन्हें पागल बना देती। उन पर यदि मस्तानी से मिलने पर रोक लगा दी जाती, तो वह उसे लेकर शायद कहीं अन्यत्र चले जाते। यह समस्या इतनी जटिल थी कि किसी को भी इसका हल नहीं सूझ रहा था।

एक बार पेशवा कहीं बाहर गये हुए थे। इस अवसर का लाभ उठा कर उनके पुत्र नाना साहब तथा छोटे भाई चिमणा जी आपा ने नवम्बर १७३९ में मस्तानी को उसी के महल में कैद कर लिया और निगरानी के लिये प्रहरी नियुक्त कर दिये। पूना वापस आने पर बाजीराव को मस्तानी की कैद का समाचार मिला तो लोक लाज के भय से उन्होंने कहा तो कुछ नहीं, किन्तु पूना रुके बिना पाटस चले गये। पेशवा के हृदय को इस घटना से भारी आघात लगा। वह इसे सहन नहीं कर सके और बिस्तर से जा लगे। मस्तानी को जब पेशवा की बीमारी का समाचार मिला तो उसने किसी तरह अपने को कैद से मुक्त कराने की व्यवस्था की और २४ नवम्बर १७३९ को पेशवा के पास पाटस जा पहुँची। मस्तानी के निकल भागने और पेशवा के पास पहुँचने की खबर से सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस समय पेशवा के परिवार के कुछ स्वजनों ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और पाटस जाकर पेशवा और मस्तानी को पूना ले आये। बाजीराव पूना तो आ गये, किन्तु यहाँ उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। सदैव शेर के समान जीवन व्यतीत करने वाले पेशवा को उनके अपने ही स्वजनों से अपमानित होना पड़ रहा था। इसके साथ ही मस्तानी का वियोग उन्हें खोखला किये दे रहा था। इन सबको भूलने के लिये उन्होंने अपने को शराब के प्यालों में डुबो दिया। वह मस्तानी के लिये बहुत कुछ करना चाहते थे, किन्तु लाचार थे। पूना राज्य के यश और परिवार की मान मर्यादा ने उनके हाथ बांध दिये थे। उनका हृदय मस्तानी के वियोग में फटा जा रहा था, किन्तु वे शान्त थे। इस सबका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ रहा था। बाजीराव के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण उनकी माता राधाबाई और पत्नी काशीबाई बहुत चिन्तित थी। एक बार तो छत्रपति साहू ने नाना साहब व चिमणा जी आपा को मस्तानी, बाजीराव को सौपने का भी सुझाव दिया, किन्तु नाना साहब और चिमणा जी आपा ने उनका यह सुझाव नहीं माना। वे तो मस्तानी को कैद कर के उसकी हत्या की योजना बना रहे थे। नाना साहब व चिमणा जी आपा छत्रपति साहू के विरोध के कारण मस्तानी की हत्या तो नहीं कर सके, किन्तु उन्होंने छल करके २६ जनवरी १७४० को उसे पूना के पार्वती बाग में बन्दी बना लिया।

इसी समय दक्षिण के निजाम के पुत्र नासिर जंग ने भारी भरकम सेना के साथ पेशवा के राज्य पर आक्रमण कर दिया। पेशवा की रगों का खून अभी भी गर्म था। उन्होंने बड़ी बहादुरी से नासिर जंग की फौज का मुकाबला किया और उसे जबरदस्त शिकस्त दी। अन्त में नासिर जंग को पेशवा के सामने घुटने टेकने पड़े और उसने सन्धि कर ली।

युद्ध के कारण पेशवा कुछ समय के लिये मस्तानी को भूल गये थे। युद्ध समाप्त होते ही वह उससे मिलने के लिये व्याकुल हो उठें, किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके बेटे ने मस्तानी को पार्वती बाग में कैद कर लिया है, तो वह इस आघात को सह न सके और पुन: बिस्तर से जा लगे। उनका स्वास्थ्य बड़ी तेजी से गिर रहा था। वह सदैव मस्तानी के वियोग में तड़पते रहते व अपनी लाचारी व मजबूरी पर आँसू बहाते। मस्तानी से अलग रह कर उनके लिये जीवन व्यतीत करना असम्भव था। कुछ ही दिनों में पेशवा का शेर जैसा शक्तिशाली शरीर मस्तानी के वियोग में सूख कर कांटा हो गया। बाजीराव के अनुज सदाशिवराव पूना से बाहर थे। जब उन्हें बाजीराव की दयनीय स्थिति का पता चला तो उन्होंने नाना साहब को मार्च १७४० को एक पत्र लिखकर मस्तानी पेशवा को सौंपने का आग्रह किया, किन्तु हठी पुत्र ने पिता के दर्द को नहीं समझा।

इधर पेशवा की स्थिति निरन्तर गिरती जा रही थी, अत: चिमणा जी आपा ने नाना साहब को २९ मार्च १७४० को पुन: पत्र लिखकर पेशवा को मस्तानी सौंपने का आग्रह किया, किन्तु उनका यह आग्रह भी व्यर्थ गया। पेशवा को अपने जीवन की अब कोई आशा नहीं रह गयी थी। यद्यपि राज्य के कुशल वैद्यों और हकीमों द्वारा उनका इलाज हो रहा था, किन्तु उनके स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था। इनकी स्थिति दिन प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही थी। अन्त में २८ अप्रैल १७४० को नर्मदा के तट पर रावेर खेड़ी नामक स्थान पर मस्तानी की याद को हृदय में बसाये वह इस संसार से चले गये। उनकी मृत्यु के समय पत्नी काशीबाई और छोटा पुत्र जनार्दन उनके निकट थे। बाजीराव की मृत्यु का समाचार मिलते ही मस्तानी ने भी इस संसार से विदा ले ली। दो अमर प्रेमी, जिन्हें अन्त समय में इनके अपने ही स्वजनों ने अलग कर दिया, हमेशा–हमेशा के लिये एक हो गये। मस्तानी हिन्दू नहीं थी, किन्तु बाजीराव के प्यार नें उसमें पतिव्रता हिन्दू नारी के गुण भर दिये थे। आज मस्तानी नहीं है, लेकिन पूना से बीस मील दूर पावल नामक छोटे से ग्राम में उसकी समाधि देख कर ऐसा लगता है कि मस्तानी मरी नहीं है, वह अमर हैं, उसका प्यार अमर है।

— १००, पंचशील नगर, सिविल लाइन्स, दतिया म.प्र.

पुस्तक समीक्षा –

बुन्देली छन्द काव्य परम्परा का प्रामाणिक दस्तावेज

– डॉ. निधि सिंह, डॉ. विमलेन्द्र सिंह राठौर

बुन्देलखण्ड की छन्दबद्ध काव्य परम्परा का लोकमानस विभिन्न संघर्षों और प्रतिकूलताओं के बीच अपनी सांस्कृतिक विरासत और संपदा को अक्षुण्य और जीवन्त रख सका है। यह महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि यहाँ की छन्दबद्ध काव्य परम्परा में जीवंतता मुखरित है। सनातन धर्म और अध्यात्म, जीवन मूल्य और संस्कार जीवन वैसम्य की वेदना और जीवन संघर्ष के विविध रंग, कुलीनता और लोक मर्यादा, उत्सव प्रियता और सान्दर्य बोध की विपुल राशि यहां की छन्दबद्ध काव्य परम्परा में समाहित है। इस अखण्ड लोक काव्य परम्परा के कारण ही यहां के लोक मानस में अपनी धरती से जुड़े रहने की ललक बनी हुई है। और आज भी इस घोर भौतिकवादी युग में इस छन्दबद्ध कविता को गाते समय उसमें वही ऊर्जा, वही सप्राणता और उत्साह देखने को मिलता है जो पूर्व में विद्यमान था। यह सर्वमान्य है कि लोकजीवन हमारे राष्ट्र की आधारशिला है और इस जीवन का मर्म ही छन्दबद्ध काव्य परम्परा में प्रकट हुआ है। वस्तुततः अखाड़ें और फड़ें में मानव की ही कहानी का गायन होता है और मानवीयता में इनकी पूर्ण आस्था होती है। उसके कंठ से निकलने वाली कविता लोक मानस का ही मूर्त स्वरूप है।

आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल द्वारा 'बुन्देलखण्ड की छन्दबद्ध काव्य परम्परा' का पुस्तकाकार रूप में प्रकाशन श्रमसाध्य और सराहनीय कार्य है। संकलक द्वय डॉ. बहादुर सिंह परमार और डॉ. हरिसिंह घोष ने अपनी मौलिक सूझ–बूझ और परिश्रम से इस काव्य परम्परा को सिलसिलेवार प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने पूरी ईमनदारी से अपने वक्तत्व में इस बात का खुलासा किया है कि 'इस संकलन के माध्यम से हमने एक प्रयास किया है, जिसे संपूर्ण तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी अपनी पहुंच और सीमित साधनों से एक परम्परा को तलाशने की कोशिश की है।' दरअसल इस पूरे संकलन में कुल छप्पन रचनाकारों की रचताओं को स्थान दिया गया है। कुल चार सौ छियासी पृष्ठों में विस्तृत यह पुस्तक अपने में बुन्देली माटी और भाषा के अनेक रंग समेटे है। रीतिकालीन छांदिक काव्य परम्परा किस प्रकार कविता में आज अपने बदले स्वरूप में उपस्थिति दर्ज करा रही है यह संकलन उसकी पूरी तस्वीर प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत पुस्तक में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर आज तक इस छन्दोबद्ध काव्य परम्परा में कविता रच रहे रचनाकारों को सम्मिलित किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसमें बुन्देली त्रयी के दो रचनाकार गंगाधर और ख्यालीराम को भी स्थान मिला है। चयन और संकलन में स्थान उनकी आयु क्रम में निर्धारित किया गया है, जिससे बुन्देलखण्ड की छन्दबद्ध काव्य परम्परा की विकास यात्रा का स्पष्ट खाका खिचता है। पं. गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, ठाकुर भुजबल सिंह, श्रीपत सहाय, गोपाल दास रूसिया, नर्मदा प्रसाद गुप्त, डॉ. दुर्गेश दीक्षित एवं डॉ. कुंजीलाल पटेल 'मनोहर' समेत सभी रचनाकार अपनी पृथक भाव भंगिमा के साथ संकलन में मौजूद है। गौरतलब यह है कि ये सभी छप्पन रचनाकार बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों और भिन्न पेशे से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इसमें किसान अध्यापक, मजदूर, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सभी वर्गों की रचनाओं का प्रतिनिधित्व है। इन रचनाकारों के संक्षिप्त जीवन परिचय के साथ उनकी रचनाओं का भावार्थ जिस सहज और सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है, वह पूर्णतया सम्प्रेषणीय है और पुस्तक की पहुँच को व्यापक बनाता है। जिस कारण बुन्देली काव्य परम्परा को समझने के लिए यह पुस्तक पर्याप्त सिद्ध होती है।

बुन्देली छन्द काव्य परम्परा के विभिन्न रूपों का प्रयोग संकलन में मिलता है। रीतिकालीन छन्दों के साथ किए गए नवीन प्रयोग भी पाठक को बांधते हैं। दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, पद, छंदयाऊ फाग, सैर, घनाक्षरी समस्या, लावनी, फाग चौकड़ी आदि छन्दों का भरपूर प्रयोग किया गया है। भाषागत वैशिष्ट्य के अलावा नए शब्दों का संधान भी किया गया है। इसके अलावा रचनाकारों ने समाज की विभिन्न समस्याओं को अपनी लेखनी का आधार बनाया है। राम और कृष्ण की आराधना तो इन रचनाओं का मूल आधार है ही, इसके साथ, खेत–खलिहान की चिन्ता भी बराबर शामिल है। नायिका भेद के साथ विरह की पीड़ा का बखान ग्रामीण रूपकों का साथ पाकर जीवन्त हो उठा है। राजनीति आज का व्यापक व्यापार बन गया है। 'नेता अपनी नीति भुलाने, कुर्सी के दीवाने' बनकर किस प्रकार शोषण की नाव में सवार होकर चुनावी नदिया पार करते हैं। और 'भोली भाली पब्लिक ऊपर अत्त करें मनमाने' के रूप में सामने आते हैं। प्रकृति चित्रण के साथ ऋतुओं का बुन्देली भाषा का अद्‌भुत चित्रण इस संकलन में मिलता है। 'पपीहा की किलकारी' और किसान की टक–टकी मन को मोहती है। बुन्देली लोक जीवन के विविध रंग संकलित कवियों की रचनाओं में मौजूद हैं जो इस पुस्तक को पूर्णता प्रदान करते हैं। कहना न होगा कि बुन्देली साहित्य में कदाचित यह पहला प्रयास है जो आदिवासी लोककला अकादमी और संकलक द्वय के अथक परिश्रम से पाठकों को उपलब्ध हुआ है।

संकलित कविताओं में बुन्देली समाज के प्राणियों के जीवन का मुखरित व्यापार स्पष्ट है। साथ ही मनुष्य के आदिम संस्कारों के बीज भी मौजूद हैं। इस परम्परित और मौखिक साहित्य को संकलित करने के अनेक जोखिम भी होते हैं जिससे बचा गया है। संकलित रचनाएं किसी जाति, वर्ग, वर्ण और संप्रदाय का प्रतिनिधित्व न कर बुन्देली संस्कृति का वह रूप प्रस्तुत करती है जो लुप्त होने की कगार पर है। यह संकलन प्रामाणिक, सार्थक और समीचीन है। आज जब उत्तर–आधुनिक युग में बुद्धिजीवी वर्ग का बहुलांश साहित्य की गैर जरूरी बहसों में उलझा है उस दौर में ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है, जब हम अपनी संस्कृति और लोक रूपों को पहचानने, आगत पीढ़ी के लिए उनको संजोए और आश्वस्त हो सके कि अभी भी बहुत कुछ बाकी है।

– झांसी रोड, ग्वालियर

बुन्देली का अपार पर्यायवाची शब्द भण्डार

– सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

मातृभाषा के रिन को चुकाने की ललक में लुप्तप्राय बुन्देली शब्दों को खोजने की रुचि प्रारम्भ में जागृत हुई। इस संकलन कार्य के दौरान साहित्यिक मित्रों की सार्थक–सलाह के फलस्वरूप बुन्देली के बृहद शब्दकोष को तैयार करने की रूपरेखा निर्मित हो गई। बुन्देली का शब्द–भण्डार इतना समृद्ध होगा, पूर्व में यह कल्पना भी मन में न थी। यह कार्य अद्यावधि भी प्रगति पर है। लगभग बारह हजार शब्दों का संकलन सम्पन्न हो चुका है। बुन्देली वैशिष्ट्य मन को चमत्कृत करता है। बुन्देली शब्द–रत्नाकर में गोते मारते ही तमाम संज्ञाओं एवं क्रियाओं के कल्पनातीत पर्यायवाची हाथ लगे। इनमें से कुछ स्वकथन के प्रमाण एवं पुष्टिस्वरूप अवलोकनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। त्रुटियों को विद्वज्जन क्षमा कर सहयोग प्रदान करें –

१. अँजलि – अंजुरी, खोवा, चुल्लू, चुरुअन, चूरू, अंजुरिया

२. अन्धेरा – अंदयारौ, इंदयारौ, अंदेरौ, अंदरखुक्क, अंदरघुप्प, घटाटोप, सूझ न परबौ

३. अच्छा – अच्छौ, नेक, नीकौ, भलौ, उम्दा, बढ़ियां, सई, साजौ, नौंनौ हीरा सौ, सुंदर, निकहा, निकहौ नींक

४. अधिक – ऐंन, मुल्ल, खीब, खूब, खूबई, बिलात, हरकें, कसकें, जमकें, मुलक, भौत, अगरौ, बेसी, मुलक्कौ, जासती, जादा, मुतकौ कुलकौ,

५. अधोबस्त्र – परदनियां, परदनीं, धोती, धुतिया, पंचा, लुंगी, तहमत, लंगुरिया, गमछा, पटका

६. अन्यत्र – अंतरंग, औरजगां, कउऔर, प्रानजांगा, औरकउं, दूसरन कें, कितऊंऔर, आरगांव,

७. अव्यवस्था – भर्रो, भर्रेझाई, धांदली, धांदलगरदी, अन्धेर, अंधेरखातौ

८. अभाव – कसर, कोरकसर, कर्मी, तंगी, तंगहाली, तरसबौ, ललकबौ, ललच्याबौ, जुरो नइं, न जुरवौ

९. अस्पताल – शफाखानों, दवाखानों, हस्पताल, बैदगारौ, बैदघरै, हकीमघरै, न हास पिटिल

१०. आटा – आटौ, चून, करक, पिसान, पिसो, पिसोभओ, ऐंन महीन, पिसना

११. आडम्बर – पुमारौ, ढकोसलौ, फट्टे वगरावौ, ढोंग–धुतूरौ, दिखावा, छलौ, छल, ढोंग, दिखावा

१२. आतंक – डरवावौ, अत्त, अत्याचार, ज्यादती, जादती, दमचौरौ, अनाचार, डर, भय, विभचार

१३. आधिक्य – ऐंनइँ, जास्ती, धचड़कें, धचेड़कें, जीभरकें, मनभर, कत्ती कौ, खीबउंखीब, हद्द, हद, अतकारौ

१४. आपका – रावरौ, अपनों, अपुनकौ, तुमाओ, भवदीय, श्रीमानकौ, आपकौ, तुमारौ

१५. आभास – भ्यासबौ, व्यापगइ, भांपवौ, अंदाजौ, भासवौ, ताड़बौ, मनबोलो, आत्मा बोलपरी, अटकर परबौ

१६. आयु – उमर, आबर्दा, उम्मर, जिन्दगानी, जिन्नगानी, बय, पन, बैस, बयस, पनौं

१७. आलिंगन – गोफा, गुफयाबौ, जकरबौ, भुजनकसबौ, जकड़बौ, लिपटबौ, चिपटाबो, बांहन–भरबौ, अकवार

१८. आश्रित – आसरें, भरोसें, बलपै, मत्थें, माथें, भरन भरे, सैपायें, दम पै, सैपै, ठसक, ठसकौ

१९. इच्छा – मंशा, मनसा, इकछा, रुच, इच्छया, इन्छा, रुचि, मनहौबौ, शौक, रुचि, ईहा, चस्का, चस्कौ, साकौ

२०. इधर–उधर – नाँ–माँ, नाँय–माँय, इताँय–उताँय, इतै–उतै, आजू–बाजू, हियाँहुआँ, अगल–बगल,

२१. ईर्षा – ईखा, जरबौ–बरबौ, जरन–बरन, जरत्वाई, बैरादाव, बैरफांद, बैरभाव, बैर

२२. उजाला – उजयारौ, उजेरौ, रौशनी, उजास, पिरकास, जगर–मगर, निधा तरें आंउन, दिखानलगबौ, प्रकास बगरबौ

२३. उत्सव – समैया, परव, काज, त्योहार, व्यावकाज, सजाधजी, रंगबरसबौ, उराव कौदिना, औसर काज

२४. उत्साह – उराव, उमंग, चाव, उछाव, उछाह, शौक

२५. उपाय – उपाव, जुक्ती, जुगत, जुगाड़, रस्तौ, विदी, अनोय, तिकड़म, तजबीज, टिप्पस, तुक्का, नटागटा, अनोपान

२६. उमदा – छट्टा के, नवेरकें, छांटे, साजे, बढ़ियाँ, अव्वल, अच्छौ, उत्तम, बड़कें, श्रेष्ठ

२७. एवज में – बत्तल, कोंतीं, बजाय, एवजी, पूरती, खानापूरी, ऊजगां, उनकी जांगा, बदलें

२८. ओर – कोद, कुदइँ, कोदीं, ठाँईं, तरफी, तरफ, ताँईं, तइँ, तरप, तरपी, दिसा, पच्छ

२९. औचित्य – तुकतान, तुकतर्ज, सई में, इचिताई, बाजवी

३०. कठिनाई सें – बरयाकें, मसाकें, जैसें–तैंसे, रामराम करकें, बरयावट कें, सांसत सें, दिग्गतनसें, कष्ट सें, कठनई सें

३१. कम–ज्यादा – घटाबढ़ी, कमोवेशी, कमोवेस, घटबढ़, कमाबड़ी, कमबड़, कोरकसर

३२. कमर – करया, करयाई, कम्मर, कुली, पुँदेड़ी, नितम्ब, कटि, करिआई

३३. करना – करबौ, कराधरी, करवौ–धरवौ, करो–धरो, काम–काज, करबौ–धरबौ, करत–धरत

३४. कर्जा – करजौ, रिन, करजा, कडुआ, उदारी, रिंहन, गानों–धरबौ, काड़बौ, काड़मूँसकें, रिण

३५. कालिख – बदनाँमी, दाग, कारख, कारोंच, करखा, कारिख, अपजस, तुहमत, दोष, दोख, काजर रेख

३६. कितने – कितेक, कित्ते, कित्तान, कै, कैठौ, कै ठइया, कइयक, कितनडँ, कितनइँ,
३७. किन्नर – खसुआ, खस्सी, खसिया, जनखा, पिंदवा, पींदा, नचैयागौया, बदिया, बीचवारे
३८. के लिए – कों, खों, खाँ, खातर, लानें, काजें खातिर
३९. कोना – कौनों, कौरो, खूंट, कोंनेआंतर, कौरे में, कोंन
४०. क्रोध – खुंस, खुंसयाबौ, तैश, ततोश, नकरयाबौ, चचेंड़बौ, ताव, डपटवौ, डांटबौ, नाराजी, गुस्सयाबौ, लालपीरेहोबो, करेंबोलबौ, नर्रयाबौ, फूँसबौ, गुर्राबौ, आँखें दिखाबौ, तेहा, गुस्सा
४१. कुछ नहीं – कुतका, सिंगट्ट, सिंगट्टौ, बाबाजीकौ, कछू नइँ, तिलीलिली, ठेंगा, ठेंगौ,
४२. खड़ाऊँ – चटपटीं, सिलीपटें, खटपटियां, चटपटियां
४३. खींचना – खेंचबौ, खींचबौ, ऐंचबौ, नेंचबौ, नींचवौ, निकारवौ, काड़बौ, झींकवौ, तांनबौ, तानातूनी, खेंचातानी
४४. गपशप – गप्पें, हवाँईं, लमतरानीं, झब्बूकीं, बेसिरपैरकीं, अवांईतवांई, हांकबौ, मउआमूसरकीं, अउअल, फजली
४५. गर्भ – पेटसें, पेटरैबौ, पांवभारी, रैगव, ठैरगओ, बालबच्चो रुकवौ
४६. गर्म – तातौ, तत्ता, तताई, तप्त, ततूरी, गरम, गर्मयानौ, गर्मयाँनों
४७. गाय – गौ, गइया, गौमाता, गऊ, धेंन, गौधन
४८. गाली – गारीं, गारियाँ, गालियाँ, गरयाबौ, अनूतरें, कोसबौ, गाली–गलोच, बदजुबानी, मन बिगार, मों गंदौ करबौ।
४९. गुफा – चुल, माँद, घोंघ, खोह, कंदरा
५०. ग्रीष्म – गर्मी, गर्मियँन, जेठमाँसन, जेठमाँस, लू लपट में
५१. गंदा – गंदौ, घिना, दलुद्दरी, भिनका, भिनकांयदौ, मलच्छी, म्लेच्छ, अघोरी, घिनहा, घिनट्टा
५२. घबराना – अखल–बखल, जी चुरवौ, अकुलाबौ, उकलाबौ, आकुल–व्याकुल, उकताबौ, जी उचटवौ,
५३. घरोंदा – घरमूला, घरभूला, घरूला, घरगूलौ
५४. चकराना – तिलमिली छूटबौ, तमारै, इंदयारै, छाबौ, अंदयारे उतरबौ,
५५. चतुरता – चतराई, हुसयारी, हुँसयारी, बुधमानी, अकलमंदी, दिमाक दौरबौ, चतरइ, बुद्दमाँनी
५६. चलना – निंगबौ, हींटबौ, चलबौ, डगरवौ, पाँव फरारे करवौ, रप्पूं–रप्पूं, रेंगवौ, पदवौ, निगवौ, सरकबौ, खिसकबौ, रस्ता–नापबौ, चला फिरी
५७. चलाना – पुरैंटवौ, रगेदबौ, खदेड़बौ, पदेड़बौ, पछेटौ, पछेटा, रपेटबौ, खरखेटवौ, पाछौ करवौ, हाँकबौ
५८. चाचा – कका, ककाजू, कक्का, काका, कक्कू, ताऊ, नन्ना, चच्चा
५९. चाची – कक्को, काकी, कक्की, ताई, चच्ची
६०. चाँटा – धौलथपरिया, चनकट, तमाचा, रपाटा, रापटौ, तड़ाकौ, तड़ाका
६१. चापलूसी – मों देखी, हाँ में हाँ, खुशामद, मख्खनबाजी, चिकनी–चुपरी, कैबो, हाँहजूरी, चिकनपट्टी, मिठबोलपनौ, चाटकारी, चाटुकी, बढ़ा–चढ़ा कें कैवो,
६२. चारपाई – खाट, खटिया, खटोली, चरपइया, मचिया, माचा, खड़ुलिया, पलका, पलँग, सेज, सइया
६३. चिढ़ना – चिराबौ, तिनगावौ, छुड़काबौ, चिड़ावौ, चिड़कांबनी, तंगावौ, अनुवां, खुद्दरौ, चोंटयावौ
६४. चिन्ता – सोस, फिकर, धड़कौ, साँसत, चितभंभ, फिकरें, सोच बिचार, सोसन, सोच, सोचन
६५. चुपचाप – मोंगे–मोंगे, मनइँमन, अपनेऐरें, चुपकें चुपकें, सरोदे में, सरौदो, सान्ताई, बे चूँ चपाट, बाला कालइं, मसगइं, मसकडं, सन्नाटे में, बालां, चुप्पी, चिमाई, चिमाकें, चिमाबौ
६६. चूहा – चुखरा, चुखरिया, चौंखरँ, मूसक, चुखरवा–चुरवरियां, चुखरो
६७. चोर – भँड़या, चोट्टा, नकवजन, दसनम्बरी, चरचटया, बदमांस, चपैया, झड़ैया,
६८. चोरी – भँड़याई, अफरातफरी, चपावौ, गोलकरवौ, सटकावौ, चुरावौ, उड़ावौ, मारवौ पारकरबौ, झाड़बौ, हांत साफ करबौ, चपेटबौ, झड़वौ, झड़वाई
६९. छड़ी – लबुदिया, बुदरिया, बेंत, सांटी, छरी, पेंनिया, लठिया, टेंकनू, लट्ठी, संटिया
७०. छिपाना – दुकाबौ, लुकाबौ, छुपाबौ, परदा, दुरावौ
७१. छेद – छेदौ, छिद्दौ, छिद्दा, टुलबौ, टुलका, तकका, तक्कौ, तका, बेदौ, टुकलो, टोंका
७२. जल – पानूं, नीर, वारि, पानूंपंगल, पनियाँ, पांनी
७३. जलाना – परचावौ, सिपचावौ, सुलगावौ, सिलगावौ, बारबौ, जरावौ, लेसबौ
७४. जल्दी – उलात, उलायते, ब्यारै, सौकारूँ, झट्ट, झट्टई, झट्टफट्ट, तुरत, तुरतइं, फौरन, फौड़न, फौरनइँ, फटाफट, फटाकसें, भड़भड़ी, आनन–फानन, तड़ाक–फड़ाक
७५. जीवन – आबर्दा, जिंयन ज्योरिया, जिनगानी, जीवौ, जिन्दगानी, जिन्नगांनी, जिन्दगी
७६. जूता – पनइयां, मुड्डा, बूट, पनहीं, उपानह
७७. झगड़ा – तूतूमैंमैं, किड़ीकोंको, बतवड़याव, न्यॉव, निआव, झगरा, झांसौ, झंझटयाई, अगराझाँसौ
७८. झंझट – रिल्ल, दांद, दंद, रोंजों, रोंझौ, चकल्लस, टंटौ, टंटा, अरसेट, अलसेट, उरझंटौ, ब्याद, बिदौना, ईदकबीदा, उरझन, बवाल, रगड़ौ, रट्टौ, रावला, भावइ, बिबूचन
७९. टोकना – खुट्ट, खुट्टबौ, खूँटवौ, टोका, टोकबौ, असगुन, खुट्ट करबौ, टोकाटोकी,
८०. ठिगना – बूँटा, बूँटौ, बन्टानीं, बूटानी, ठिनगौ, ठिनगा, गिनठौ, गिन्ठा, बंटा,
८१. डंडा – डँड़ोंका, डेंड़पा, लट्ठ, लट्ठी, घोंटा, सोंटा
८२. डरना – डरवौ, ससकवौ, अकबकाबौ, फूँद सरकबौ, मूंतयावौ, पोंदफटबौ, ठाँड़े सूकवौ, सपेतपरवौ, धक्क उड़बौ, छक्के छूटवौ, रोंगटे खड़े होबो, साँस फूलबौ
८३. डोरा – तागा, तागौ, धगा, धागौ, डोर, डोरी, रेसा
८४. तनिक – तनक, तन्नक, तनक–मनक, थोरी, थोरौ, चुटू सौ, नांवखों, बार–विरोबर, नाँव के लाने, नाँवचार

८५. तनी – धजिया, धजी, फित्ती, फत्ती, पट्टी

८६. तमाचा – झापड़, झापड़ौ, थापड़, थप्पड़, लपाड़ा, चनकट, थपरिया, लापड़, लापड़ौ, लपाड़ौ, चांटा, रांपट, रापटौ

८७. तर करना – तरकैटी, चपोरबौ, चकचकौ, तरबतर, चिपचिपौ, सरबोर, सराबोर

८८. तलाशी – नंगाझोरी, छछोबा, छचोबा, झरयावौ, नंगयाबौ, नगयावौ

८९. ताकत से – भरतागत, कसकें, जोरसें, तानकें, करें कें, जोर लगाकें

९०. तोता – सुआ, सुअना, पट्ठ, चित्रकोटी, सुग्गा, मिट्ठू, गंगाराम, सुअटा,

९१. तौलिया – साफी, स्वाफी, स्वापी, अंगोछी, गमछा, अंगुछिया, पटकी,

९२. थकित – थकेमाँदे, हारे थके, थकवाय चड़बौ, थकांद, थकयाए, रैआये, थकन भरे, थकाई भरे, थकौ

९३. थैला – झोरा, खलता, खल्ता, झोरा, बसता,

९४. थोड़ा–थोड़ा – तन–तन, तनां–तनां, तनक–तनक, थोरी–थोरी, थोरो–थोरो, तिलतिल, तिला–तिल

९५. दया – दुया, तरस, पसीजवौ, पिगलबौ, करुना

९६. दर्पण – सीसा, तक्ता, तकता, ऐंना, आँइंना, तगता, शीशा, आरसी, मुकुर

९७. दबजाना – चिपलबौ, पिचलबौ, कुचरबौ, खुँदबौ, दबबौ, नेंचूंआबौ,

९८. दर्द – पीड़ा, पीरा, तड़कन, पीर, कसालौ, पिरातौ, चट,चींबन, फटन, फूटन, ऐंड़न, विथा, कसकन, किलपन

९९. दाढ़ी – डांड़ी, ठेका, पखा, दाँड़ी

१००. दाँत से काटना – चबा खाओ, खकलबौ, खकलखावौ, चबाबौ, कुतरबौ, चींथबौ, चींथडारो, चगलवौ, मुरावौ, काट खाओ, काटलओ, चबड़वौ,

१०१. दाह संस्कार – अंतिम संसकार, नकरिया दैबौ, जराबौ, बारबौ, दाहलगावौ, अग्निसंस्कार, किरियाकरम्, पंचतत्वन मिलाबौ, आगी छुबाबौ, माटी ठिकाने लगाबौ, पंचनकरिया, क्रियाकरम

१०२. दुखी – दुखयारी, दुखयारौ, दुखभरी, बिलखत दुखभरो, रुआंयदौ, रुआँयदी, रीनीं, रींनै, रुबइयां, रोनौं, रोंउन

१०३. दुर्बल – टिटइं, टुटउंटूं, पकुआं, दूबरी, दूबरे, दूबरौ, सुकट्ट, सुकट्टी, सुकट्टू, मरियल, मरियां, मरगुल, मरगुल्ला, मरगुल्लू, मरोसो, मरीसी

१०४. देखना – हेरबौ, तकबौ, ताकवौ, चितवौ, निहारवौ, विसूरबौ, दीदार निषाकरबौ, निषादैबौ, नजर डारबौ, टकर टकर, नजरबौ

१०५. देखादेखी – सुमी, चड़ाचड़ी, होड़, नकल, बिरोबरी, होड़ाहोड़ी, चुनांद, सरीगत,

१०६. देर – झेल, अबेरा, कुबेरा, बेरा, दार, अबेर, देरी, कुल्लदार, कुल्लदेर, देरसबेर, बिलम्ब, विलम्भ, ढील–ढाल, झेलमझेल, झेलझाल

१०७. दौड़ना – गदबद, कुरूं, धौरवौ, फर्राटौ, पदड़का, तिराट, रफूचक्कर, चम्पत, सरपट, उड़नछू, पदौड़

१०८. दृष्टि – हेरन, तकन, निहारन, देखन, नजर, चितबन, निगा, निगाह, निहेरन, चितोंन, दीद

१०९. दुःख – विषाद, बिखाद, कष्ट, पिरातौ, तकलीब, पीरा, शोक, रंज, दरद, तरफन, गम, दुक्ख

११०. धरती – धरा, वसधा, धरनी, बसुन्धरा, भूम, भू, भूमात, भुम्मका, जनमभूम, देवभूम

१११. धक्का – धका, धक्कौ, ढका, ढकौ, धक्कामुक्की, धकयाबौ, ढक्का, ढकयाबौ, ढक्कौ, हुरका

११२. धूल – भस, रगदा, धूरा, गर्द, गरदा, धूर, धूरि, करकट, खाक

११३. धोती (जनानी) – धुतिया, साड़ी, इकलाई, सारी, अंगोछा, धुत्ता, साड़ी

११४. निकालना – निकारबौ, काड़बौ, काढ़बौ, बायरें करबौ, निकासवौ

११५. निकलना – निकसवौ, निकरवौ, कड़बौ, कड़ भगवौ, कढ़वौ, बांयरें करवौ, बायरें होवौ

११६. नष्ट – खतम, तासनास, रनबन, नांस, बट्ठठियां, सत्यानास, सम्पटस्वाहा, विनाश, खटवौ, उकठवौ, बिलाबौ, चौपट, चौपटा, चौपटौ, नामनिशांन मिटबौ, वाराबाट

११७. नाई – नाऊ, नउआ, खबास, छत्तीसे, नापित, बार–बनउआ, खबासजू

११८. निन्दा – कुबड़ाई, बुराई, निंदरबौ, बुराई, अपजस, निरादर, अपमांन, अनादर, अपकीरत

११९. निवास – रहस, मुकाम, रुकबौ, ठैरबौ, नसीकौ घर–बखरी, बसीगत, अतौपतौ, बसवौ, रहन, अतापता, रात, रत, रहत

१२०. निर्वाह – नँदारौ, नदावरौ, निबावरौ, निभावौ, निवाहवौ, निबावौ, निभाव

१२१. निरुत्तर – झंपी बंदबौ, संटमुंट, मौ सिमवौ, अवाक, वाक न फटवौ, चुप, चुप्पी, नानी मरबौ, सूझ न परबौ, घिघ्घी बँधवौ, बोल ना आबौ,

१२२. नीचे – नीचें, नैंचूं, नींचूं, नैंचें, नैंचेइँ, खालेंइँ, तरेंइँ, नरें, खालें, धरती पै, तरीमें,

१२३. निरंतरता – क्रमशः लगीतात, लैनडोर, क्रम, डोर न टूटबौ, लग्गर, लगें–लगें, जुटें–जुटें, पाछें परकें

१२४. नौचना – नोचवौ, लोंचबौ, नरोटवौ, बकटौ, नोंचिया, नछीलबौ, च्योंटिया, खरोंचबौ, नों मारबौ, नोंचा–चोंथी

१२५. पंडित – बामुन, बम्मन, बमना, ब्राह्मण, महाराज, पंडिज्जू, बाबाजू, पुरेत, आचारजू, पुरेत

१२६. पगड़ी – पाग, पगा, साफा, स्वाफा, पग्गड़, पगड़ौ, पगिया, पाग्गै, मुरैठौ

१२७. पत्र – चिट्ठी, पाती, पतिया, पतियां, चिठिया, पत्री

१२८. पता – पतौ, ठौर–ठिकानों, अतौपतौ, मुकाम, अतापता, निवास, आबास, बसीगत, वसीकत, बास

१२९. पति – सइयाँ, बलमा, धनी, खसम, मुंस, भरतार, धरवारौ, लुगवा, मरद, कंत, पिउ, भर्ता, भतार, आदमी, सजन, सजना, बलम, बलमवा, बलमू, साजन नाह, जनौ, मालिग, स्वामी, प्रीतम, सरताज, सुहाग, राजा, गुसइयां, धरइया, घरकें, घरवारे, घरैया

१३०. पति–पत्नी – लोग–लुगाई, खसम लुगाई, मर्द, औरत, जने–जनीं, धनांधनीं, धरनी–धरैया

१३१. पत्नी – धरनी, धनां, सजनी, दुलैन, दुल्लू, दुलइया,

मिहरिया, मिहरारू, तिरिया, तिया, जनीं, घरवारी, औरत, लुगाई, जोरू, नार, दारा, बहू, बहुरिया, सजनियाँ, प्रिया, प्रियतमा, व्यावता, व्यावबरी, मालकिन

१३२. पहले – पैलां, पैलूं, आंगु सें, अँगाड़ें, अगतां, पैलउं, पैलइं, पैलसें, व्यारें, अक्तां, पैले कौरा, मिल्लां, अक्तां, अगाऊं

१३३. पहाड़ – गिर, गिरि, परवत, पहार, पारबा, पारिया, टौरिया, पहड़िया, पहरिया, पहड़वा

१३४. पागल – सिर्री, सिर्रिन, बैकल, पगला, पगली, पगलू, पगले, पपगया, पगलो, बाउरौ, पगल्याँनीं, पगल्यांनों, दिमाग–बिगरवौ, दिमाग फिरबौ, दिमाग फैल होबौ,

१३५. पान – पाँन, बीड़ा, बीरा, गिलौरी, ताम्बूल, नाँगबेल

१३६. पिता – दद्दा, दद्दे, दद्दू, डुकर, डुकरा, बाप, बापू, बाबू, बापू, जनक

१३७. पिरौना – पिरोबौ, गूँथवौ, पोबौ, गोबौ

१३८. पीटना – पीटबौ, कुटाई, माँरवौ, मार, कूटवौ, धुनाई, सुटाई, दुचलाई, दुचलबौ, उदेरबौ, ठोकबौ, धुचलबौ, पटीलबौ, धुनकबौ, धुचलाई, धौल–धपरिया, लात–पनइयाँ धपड़्याबौ, बजड़वौ, भंजड़बौ,

१३९. पीछा करना – पुरैंटवौ, रगेदबौ, खदेड़बौ, पछेटवौ, पदेड़बौ, पछेटौ, छूवौ, चरपेटवौ

१४०. पुत्र – पूत, बच्चा, तनय, मोंड़ा, लरका, छोकरा, टुकवा, बचकानों, बेटा, बिट्टू, लड़ांयतौ, टुरवा, लाड़लौ

१४१. पुत्री – कन्या, बिटिया, मोंड़ी, लरकिया, लरकी, छोकरी, बेटी, बिटिया, टुकिया, टुरिया, बिही, बिट्टो, बिन्नू, बिटयाना, बाई, लाड़ली, लड़ांयती, लाड़ौ, रानी बिटिया,

१४२. पकड़ना – पकरबौ, गहबौ, डुरयावौ, जकरवौ, बांह गहवौ, पकड़–धकड़, पकरा–धकरी

१४३. पुरुष – मुंसेलू, मांस, मुड्डु, लुगवा, मर्द, आदमी, जन, जनौ, जनें, नर, इंसान, मनुज, मानव

१४४. पुष्प – फूल, फुलवा, गुल, सुमन, फूला

१४५. पूजन – पूजवौ, पूजा–रचा, पूजा–पाठ, हवन–पूजन, संध्या, आरती, कीर्तन, ढारपूजी, होम–हवन, ध्यावौ, जाप, जप–तप, भजन–पूजन, इबादत, कथा–पुरान

१४६. पूर्णतः – पूरी तौर, सबयार, सब्यार, जरभूर सें, पूरीतरां, झरां, इकजाई, चुमाचुम, सवरौ, पट्टाझार, पूरौ, सिगरौ, सबतरां, हरतरां, सफा

१४७. प्रजा – रइया, रइयत, रियाया, जनता, बनता–जरार्दन, पिरजा, परजा, लोग, लोगवाग,

१४८. प्रणाम – परनाम, पन्नाम, डंडौत, पालागन, पालागों, पालागूं, पांवपरवौ, पांवपरइ, पांवपराई, नमवौं, परवौ, चरणछूवौ, सासटांग, डण्डौत, सीसझुमावौ, मुजरा

१४९. प्रतीक्षा – वाटजोवौ, बाट तकवौ, ऐरौ लैबौ, रस्ता, देखवौ, इन्तजार, इन्तजारी, तकें रए, तकवी, ठेरवी, ठैरेंये, बाट हेरवौ, राह देखवौ, परतीच्छा, बाट जोहबौ, पलक पाँवड़े डारवौ, आँखें बिछावौ, बाट जोही

१५०. प्रथा – ढलाचला, ढर्रो, चाल, चलन, सनातनी, परम्परा, रीत, परपाटी, पिरथा, रूढ़ी, चला

१५१. प्रशंसा – बड़वाई, तारीफ, बढ़ाई, बड़वारी, बाभा, वाहवाही, स्यावासी, बड़ाई, कदर

१५२. प्रसव – होबौ, भओ, जनवौ, ब्यावौ, व्यांन, ब्रीवौ, जनमबौ, वीपरवौ, पजवौ, पजे, पजो,

१५३. प्रारम्भ – ऊँ, अनामासी, श्रीगणेश, शुभारंभ, शुरू, लग्गा, सड़बैठारवौ, विसमिल्ला, सुरुआत

१५४. प्रिय – अच्छौ, भलौ, प्यारौ, मनकौ, रूचकौ, नोंनौ, प्राननप्यारौ, भावतौ, भावौ, चहेतौ, चाउत, पसंद,

१५५. पसन्द – चाउत, रुच, रुचकौ, पुसावौ, सुहावौ, पुसात, सुहात, भात, भावौ, मनकौ, रुचिकर, रुचीली

१५६. पश्चाताप–पछताव, पछताबौ, पसताव, अफसोस, गलतीमनाबौ, माफी मांगबौ, भूलमानवौ,

१५७. फुरसत में – सरतारे, सरतरया, सुसतई, सुसते, फुरसतया, औकास, फुर्सते, बेकाजू, बेकाम, अकाजलौ, फुरसतयाई, फुर्सतपाव

१५८. फेंकना – फेंकबौ, मेंकबौ, मिचकवौ, फिचकवौ,

१५९. बदमाश – बदमांस, निंयतखोरा, बेईमान, बईमान, चालाक, चालू, चालबाज, चरचटया, कुनयाई, उठाईगीरा, उचक्का, घाघ, घाती, उस्ताज, गुरु, दंदीफंदी, नम्बरी, दसबम्बरी, रुंटया, रुगंटया, बरबादअली, छाकटा

१६० बदमासी – बेईमानी, बेरीमानी, कुनयाव, कुनयाई, रुन्टयाई, रुगंठयाई, धांदली, दंदफंद, छलबौ, धांदलगरदी, उस्ताजीं, धूराझोंकबौ, ठगी, ठगविद्या

१६१. बनावट – बन्नक, बनक, नाक–नकसौ, बनाब, बानक, छव

१६२. बनावटी – नकली, नकल, झूंटमांट, झूंटी, लत्ता लपेड़ी

१६३. बदला – बदलौ, बल्दौ, गुर्र भंजावौ, लग्गी भंजावौ, लगी भंजाबौ, भड़ास काड़बौ, भरी निकारबौ,

१६४. बमन – कै, उलटी, उल्टी, फटकार, मितली, उबकाई, उमछाबौ, उपकाई, बुकरवौ

१६५. बरसना – बरसबौ, झमाझम, बूंदाबांदी, झिन, टिमटिमाबौ, मूसराधार, टपकबौ, छिमछिमाबौ, झला

१६६. बरसात – चौमासौ, बसकारौ, चौमासें, बरखा, झला झींकरौ, घिरोंगौ, बरसारित

१६७. वर – बना, बन्ना, बनरा, बनरौ, बनरे, दूला, ढाई दिनां कौ बास्सा, बन्ने

१६८. बधू – बनी, बन्नौ, बनरी, बन्नी, दुलैंन, दुल्लू, दुलैया, बहू, बोंटिया

१६९. बहरा – बैरा, बैरौ, बहरौ, बैर बलाय, सुनवहरा, ऊंचो सुनैया

१७०. बातचीत – बतकाव, बतकही, बतकहौ, चरवद, चरवदयाव, गुदारा, चपरकुटौ, बत्तू, चवड़–चबड़, बोलाचाली बकबक, बकझक, बकर–बकर, चपठुकौ

१७१. बार – दार, दफै, दफा, बेरा, बेरा, बेरीं, दारीं, बिरिया,

बिरियाँ, धाँई, दइयाँ, दाँईं, बेर, मर्तवा,
१७२. बांधना – गँठयावौ, बाँदवौ, गठरयावौ, बांदाबूँदी, बांधाबूँधी, लेपड़वौ, लपेटवौ, बंधलगाबौ,
१७३. बारीक – नानों, महीन, सूछम, नान–नान, पीसा, पिसो, पतरी–पतरी, पतरौ,
१७४. बहिन – बेंन, बैना, बिन्ना, बिन्नू, सहुद्दरा, बिना, बइया, बिन्नी, बहनी, बहना, बहनियां, वहिनी,
१७५. विवाह – व्याव, चँइयां–मँइयां, भांवरें, विआल, पाणिग्रहण, रमदी, निकाह, भांवरी
१७६. विवाहित – व्यावबरौ/री, व्याओ, व्याई, ब्याववरे/री, व्यावता, बिआवता
१७७. विवेक हीरता – झक्क, तुनक, सनक, पगलोंई, सिर्रपनौ, कटासिरंपन, तुनकमिजाज
१७८. विनय – बिनती, बिन्तवारी, रिरयावौ, बिनैं, बिनै, प्रार्थना, निहोरे, गिगयावौ, नववौ, झुकबौ, निहुरवौ, हाहादइया
१७९. बीमार – रुगैल्या, बेजरया, बीमरया, दिक्क, बेजार, रोगी
१८०. वियोग – विजोग, बिछुरन, बिछुरवौ, बिछोह, बिछोड़, फुट्टफैल, विलग, दूर–दूर
१८१. विभिन्न – बन्न–बन्न, भाँत–भाँत, रिकम रिकम, तरा–तरा, मेंर–मेर–किसम किसम, फेर–फेर
१८२. बुरा मानना – मों फुलाबौ, मों फेरबौ, अखरवौ, रुठवौ, चिनचिनौं, वुरवासन, तकुआ टेढ़े होवौ, मोंवनाबो
१८३. बुलाना – बुलउआ, टिरउआ, बुलवाबौ, बुलापठैवौ, गुहार, टेरवौ, कहापोंचावी
१८४. वृद्ध – बुजरक, बुजरग, सिआने, बूड़े स्यांने, बड़े–बूड़े, बुढ़उ, बुजुर्ग, बड़ौ बूड़ौ, डुकरा, डुकर
१८५. वृद्धावस्था – डुकरयाबौ, बुड़ापौ, स्यांनपनौ, चौथौपन, बुढ़ाइँदार, बुजुर्गी, सफेतीदार
१८६. बृक्ष – विरछ, विरछा, रुख, बिरवा, गुल्ला, पेड़ौ, तरवर, पौदा, पेड़, तरू
१८७. बुड़की गीत – लमटेरा, रमटेरा, बमबुतिया, भोले के गीत
१८८. बुरा– बुरव, खराब, रद्दी, गलत, दुष्ट, दुण्टी, दागी, दोसी, अखरत, दुराचारी, दुर्जन
१८९. बेश्या – पतुरिया, पातुर, रंडी, बेड़नी, नचनारी वंग, छूत, कंजड़िया, नचनियां, जगरानी, बड़याल
१९०. व्यापार – बंज, बंजी, रुजगार, व्योपार, बेपार, खरीद–फरोग, बेंचवौ, वेवपार
१९१. वृद्धि – बढ़ोतरी, बढ़ोत्तरी, तरक्की, बढ़वौ, उन्नती, बिकसवौ, बड़वार, बढ़न, पड़पड़ाबौं,
१९२. बैल – बैला, बैलवा, नटवा, नंदी, नाँदिया, बरदा, बरधा
१९३. भइया – वीरन, बीर, बिरन, वीरो, भैया, भ्रात, सहोदर, मांजावौ, राजाबेटा
१९४. भविष्य – आँगू, अंगाँडू, आंगें, अंगाऊँ, अग्गू, भावी, होतव्व, भविस्स, आंगे की,
१९५. भरोसा – बलबूतें, मत्थें, माथै, माथे, आसरौ, बल, आसरे, बलपै, भरोसैं
१९६. भाभी – भौजी, भुज्जी, भावज, भवज, भौजाई, भुजाई, भावी
१९७. भीड़ – कबदस, भगदड़, रेलमपेला, रेला, घसापुसी, ठसा, भड़क्का, चरपेटौ, पिचन, चौरवौर
१९८. भुजा – बाँह, बाँय, भुज, हाँत, बइयाँ, हांथ, हत्ता, कर
१९९. भूत – अतीत, वितीत, पाछूं, पछांई, पाछू, पिच्छूं, गओ टैम, बीतो
२००. भोग – प्रसाद, चरनामित, परसाद, परसादी, प्रसादी, चन्नामृत
२०१. भोग विलास – रमण, रमाबौ, सहवास, सम्भोग, सैवास, रमवौ, रमाओ, रमरए
२०२. भोज – पंगत, पाँत, ज्योंनार, बड़ार, जैंबोरवावौ, खावापीवी, दावत, पारटी
२०३. मच्छर – भगदर, बगदर, मछरा, डाँस, नाली चंद, गड्डा प्रसाद, भन्नमन्न
२०४. मनाकरना – आँहाँ, नइँ, ना, रांनदो, रोकवौ, रनदौ, भगौमांय, बरजबौ, वस्स, ठैरौ, नैकरो, मानौ, हटकबौ, हटकी, नाईं, मनाही, नटबौ, ना करवौ, मुकररी
२०५. मनचाहा – मनचाओ, मनकौ, जीचावो, मनमाँनां, जीभर, मनमाफिक, मनमीत, मनचाई, जीकौ,
२०६. मजबूत – सैजोर, टिकाऊ, खटाऊ तगड़ौ, सगड़, पक्कौ, ताकतवर, नींचट, आखम,
२०७. मनाना – मनौवा, मनुहार, मनावौ, मनामनौअल, राजीकरबौ, सैमतकरवौ, बिनै, बिनती–वानती,
२०८. मां–बाप – मातापिता, बापमताई, बाईदद्दा,, डुकरा–डुकरिया
२०९. माते – बरउआ, माते, महते, ढीमर, रैकवार, कहार, धीवर, पनभरा, पलकया
२१०. मार्ग – गैल, गली, कुलिया, पगडंडी, गड़वांत, बाट, गलयारौ, ढर्रा, गोला, डगर, रस्ता, राह
२११. मंहगाई – मांगाई, तेजा, तेजी, तेजाई, भाव बढ़वौ, कीमतें चढ़वौ
२१२. मित्र – मेरी, मिंत, हितू, यार, हितुआ, जोड़ीदार, मीत, संगाती, संगी, सरवा, मित्र, मितरा, लंगुटया, दोस, दोस्त, यार
२१३. मित्रता – मिताई, यारी, मेर, रसाई, दोस्ती, मित्रता, दांतकाटी
२१४. मिलन – भेंट, मिलाप, मिलबौ, भेंटमलाई, मेंटकवार, मिलामेंटी, गरेंमिलवौ, आलिंगन, बाँहन, भखौ
२१५. मुक्का – धूंसा, धमूसा, धमुक्का, गतकौ, ठूंसा, मुड्डा, गुमकौ
२१६. मूर्ख – ठस, बुद्दू, पोंगा, मूसरचंद, पोंगू, छिंपोंगा, भोंदू, अड्डू, गचपेंदा, जाड़, बकचोद, लिपोड़ा, निपोरा, मुसरया, बैबूजा, होलट, बौडम, बकलोल, गवांर, लल्लू, अकल के पूरे, अक्कल के दुसमन
२१७. मेंढक – मितकरवा, गूलर, मेंदरौ, टर्र–टर्र, मितकरिया
२१८. मोटा – मोटोताजौ, मुटल्ला, मदल्ला, मोटू, डम्प लाट, मस्त, हांती
२१९. यथार्थ – असलियत, निराठ, निचाट, जसतस, बेलाग,

बेलौस, ठक्काठाई, हूबहू, सांसीसांसी, हकीकत

२२०. यथावत – जथारत, निचाट, जसकोतस, ज्यों की त्यों, सर–सई

२२१. रक्त – रकत, खून, खूं, लोहू

२२२. रजाई – सुपेती, पल्ली, रजइया

२२३. रसिक – रसिया, छैल चिकनियां, छैला, रंगीलौ, मनचलौ, रँगिया, रसीलौ, रंगीनमिजाज, शौकिया, शौकीन

२२४. रात्रि – रात, रैन, निंश, निसा, रजनी

२२५. रात्रि जागरण – जगनर, जग–बार, रतजगा, रतजगौ,

२२६. रिपटना – सरकनौ, सरकबौ, खिसलबौ, फिसलबौ, रिपटबौ, रिरकबौ, रिसकबौ, रिसकौनों

२२७. रिस करना – रिसाबौ, झुकरवौ, भुकुरवौ, मचलबौ, नखरयावौ, चोंचले, ठनगन, रूठवौ, रिसभरवौ

२२८. कुठन्त – रूठबौ, रिसाबौ, ठुनकबौ, रिसबौ, तिरिया चरित, पिनकवौ, तकुआ टेड़ेकरवौ,

२२९. रूंदन – रौबौ, रोंना, अंसुआ ढारवौ, बिलाप, बिलपवौ, बिलखवौ, भपकवौ, सिसकवौ, फुसकवौ, रोबागाई

२३०. रौब दौब – धाक, भपकौ, चलतौ, चलता, तूती बोलवौ, बोलवालौ, दवदवौ, रुआब, रुतवा, चरचराटौ, भपका

२३१. ऋणी – रिनियां, करजी, दिवार, कर्जीलौ, रिर्ली,

२३२. लकीर – डड़ींच, रकील, रेखा, लेंन, लाँइन, तूर, रेख

२३३. ललकारबौ – असीली धरावौ, धूर दैवौ, पुरखन लौ जैवो, जुद्धआमंत्रण,

२३४. ललाट – लिलार, माथौ, मांथौ, मस्तक, मत्था, मत्थौ, करम, भाग्गथल, पेसानी

२३५. लाज – शरम, हया, लज्जा,सकोस, सकोच, संकोच, अकस, अचक, अचकवौ, उकस, सकुसवौ, झैंप, चमक

२३६. लाभ– प्राप्ती, फायदौ, वारौ–न्यारौ, पौबारा, फायदा, छप्परफटवौ, नफा, फलद्दया, बरककत, परतौ

२३७. लालचपन – चिखौ, लपकों, चस्कौ, चस्का, चट, चटपन, लारगिरावौ, ललच्यावौ,

२३८. सदृश – साई, घांई, नांई, जैसौ, तैसौ, सरीखौ, सरीकौ, बत, साइ, समान, बिरोबर, बिरोवरीकौ,

२३९. सनक – झिक्क, झक्क, पिनक, सरैदें सरैदौ, अपने ऐंं झक्कपनौ,

२४०. सनकी – झिक्की, पिनका, मूड़ी, झक्की, पिनकी, कवसिरौ, अदपगला

२४१. सम्बन्ध – नतैती, नातेदार, रिश्तेदारी, सग्वाट, नातैत, घरइकें, घरकें, परवारकें, घरौट

२४२. सम्बन्धी – नतैत, नांतेदार, रिश्तेदार, सगे, नातैती, घरौबा, मैरथये, धरके, जुड़े, परवारी, गसेंफंसे

२४३. सफेदी – सुपेती, झक्काटो, झक्क–फक्क, उजरइ, सफेती, सफेदी, सेत,

२४४. समय – बेरा, बिरियाँ, जोर, बेराँ, टैम, दार, समै, दारक, पल, छिन, घरीक, घरी, मिंट,

२४५. समयपूर्व – व्यारें अक्तां, पैलांसें, पैलइं, पैलसें, पैलउं, अँगाउँसें,

२४६. समाधान – हल, निनोरा, निनवारवौ, निरवारवौ, निरोरवौ, उपाव, समाहार,

२४७. समाना – समावौ, अमावौ, भरवौ, बनजावौ, विलावौ, भरजावौ, ठूँसठाँस, ठूँसवौ, धँसबौ

२४८. समाप्ति – खातमा, खतम, खेलखतम, समापन, समापन, बढ़ावौ, अंत, खलास, नष्ट

२४९. समीप – ऐंगर, नेंगर, लिंगां, निंगां, इतइँ, नीरें, निअरौ, ऐंगरइं, नेंगरई, नगीच, नगीचें, पासइ, ऐंगरें, नेंगरें

२५०. सर्वत्र – सबरेहार, सबकउं, जांतां, सबइजांगां, जांगा–तांगा, असफेर में, चौगिरदां, सबरें, मुलकभरेमें, सबरइँ

२५१. सलाह – सलांय, रायसलाय, मत, मतौ, मसबिरा, मसविरौ, गैलबतावौ, विचार, सला,

२५२. संकोच – सकोच, लिहाज, झिझक, शरम, लाज, अकस, झेंप, सकुचवौ, चमकवौ, लजावौ, झिझकवौ

२५३. संतति – संतानें, लिड़धार, बाल–बच्चे, लरका–बिटियां, बालगोपाल, संतत, मौंड़ी–मोड़ा, बंशवेल

२५४. संसार – सिंसार, सिंसारी, मुलक, दुनियां, लोक–लोकन, जगती, जग, जगत, भव, जहान, जहां

२५५. सहेली – सखी, आली, ओबिना, बिन्नासेरी, ओजू, यार, संगिन, साथिन, सहेलिन, सखी, अली, सखीरी

२५६. संध्या – संजा, गोधूरी, गंगधूरी, दिनाछित, संझा, झुलीपरें, अथय, तराउयें, दिनढलें, दिनमुंदें, दोईबेरा

२५७. सामर्थ्य – बूतौ, बलबूतौ, सत्तया, हियाव, छमता, ह्याव, बुतौ, बस, बसकौ, विसात, विरतौ, ताव, सात्वकास, मुक्तास

२५८. सिंगार – श्रंगार, सजनई, सजधज, सजवौ, वनवौ, संवरवौ, सजाधजी, साजसम्हार, चटकपटक, सजनोंट

२५९. सिर – मूंड, मुंड़ी, मुन्डी, खुपड़िया, कपाल खपरिया, खोपरी, खोपड़ी, खपड़ी, खपरी, मस्तक, चेंथी, सीस

२६०. सीधा – सूदो, सूदौ, भोरो, भोरौ, भोरोभारौ, भोलौभालौ, निर्गुड़ौ, सरल, सही, सज्जन, सुजन, भलौ

२६१. सुन्दर – नोंनों, सलौनों, छबीलौ, गोरोनारौ, दिखनौसू, बांकौ, रसीलौ, छवदार, नमकीन, सुवरन, चीकनौ, चादवौ

२६२. सूनापन – सूनौ, सूनर, सन्नाटौ, सुन्नसांन, सनाकौ, वियावान, विहूनौ, बीहड़, वीहर, भांय–पांय, सांय–सांय

२६३. स्तन – दूद, आंचर, छतियां, छातीं, दूध, चुचीं, चिचीं, जोबन, जुबना, दुद्दू,

२६४. स्त्री – औरत, महिला, जनीं, नारि, नार, तिरिया, त्रिया, तिय, लुगाई, बाला, बाल, नारी, मिहरिया, कामिनी

२६५. स्वर्ग – सुरग, परलोक, देवलोक, सुरग, लोक सरग, सरगलोक, सरगधाम, जन्नत, इन्दरलोक, सुरधाम

२६६. स्वागत – आवभगत, आवआदर, सत्कार, खतरी, खातरदारी, बड़कें लैबौ, हांतन हांतन लैबौ, मानराखवौ

२६७. स्वप्न – सपनों, बरोटी, बरोंटिन, सपननं, सपनिन, सपना

२६८. स्वस्थ – चंगौ, हट्टौकट्टौ, मुसतंडा, संडमुसुंड, रुष्टपुष्ट, हिस्टपुस्ट, चेंगारौ, टटकरौ, तंदुरुस्त, टिंच, टंच

२६९. स्वतः – उपतकें, अवढ़ायें, खुदइँ, खुद, अपने आप, अटकापै, अटकीपै, उमज परें

२७०. स्मृतिचिन्ह – चिनों नामना, चिन्हारी, चादगारी, भेंट, चीनां, चीनों, चिनारी, चीन्हौ, यादगार, ध्यांन कों, निसांनी

२७१. सुबह – सबेरौ, भुनसारौ, तड़कौ, अंदयाई, पौफठौ, भुकाभुकौ, दिनउयें, सकारौ, म्यानों, झुटपुटौ, अंदयारी, दिनउयें, फजर

२७२. संलग्न – रत, निरत, जुड़ा, जुरो, दतबौ, दतपरबौ, नत्थी, जुरबौ, लगजाबौ, लगवौ, टिकवौ, जुटवौ, दत्तचित्त

२७३. सादृश्य – उनजस, अनुहार, वन्नकौ, बैसइ, ऊसई, बैसौ, ऊसौ, ओई–बन्तक, समानता, एकसे, एकसौ

२७४. शपथ – सों, सोंह, साग, कसम, किरिया, आंन, कौल, ध्वाई, धुआई, धइं, करार, इकवालिया

२७५. शानशौकत – ठाठबाट, तड़क–भड़क, भपकौ, चमक–दमक, रौबदीव, भक्काटौ, लाटसाबी, बड़प्पन, रसूक, धूमधड़ाकौ, ठसका

२७६. शिशु – गबवारौ, नन्नौ राइभरौ, छुटका, छुटकौ, गोदी में कौ, आँचर कौ, बच्चौ, बचकानी, बचकानों

२७७. शीघ्र – फटाफट, चटपट, तुरत, तुरतइँ, झट्ट, झट्टइं, झट्टपट्ट, सपाटौ, तालाबेली, तुर्तफुर्त, लगीतान, सपाटे में, हश्वर

२७८. शीतऋतु – जड़कारौ, जाड़ौ, जाड़े, ठंड, ठंडी, ठंडन, जाड़िन, ठंडियन में, जाड़नमें,

२७९. शुभचिन्ह – स्वास्तिक, साँतिया, सुराँतू, चौक, रंगोली, बन्दनवार, तुलसीधरा, दीप

२८०. शैतान – उदमया, अनारी, चाली, ऊदमी, ऊधमी, कुपाठी, सम्मनया, दोंदरया, अठाई, ऐवी, हुरदंगा, सरारती

२८१. शैतानी – ऊदम, बमचक, दमचक, अनार, चाल, हुरदंग, सनयाव, धोंचाल, हुल्लड़, दोंदरा, शरारत,

२८२. शोरगुल – हल्लागुल्ला, रैरैचारौ, शोरशराबौ, चिल्लपों, भन्नाटौ,

२८३. शौचजाना – टट्टी फड़ाकत, बार जैबो, झाड़े जंगल, निस्तार, झाड़े, निपटबे, फिरवे, बड़े घरै जाबौ, दिसामैदान

२८४. शौचालय – कनांत, संडास, पाखाना, टट्टी, पाखानौ

२८५. हंसीमजाक – ठिठौली, दिल्लगी, मसखरी, बुकल्यावौ, चिरवन, चौलें, चुहलें, ररियां, चटकें,

२८६. हथेली – गदिया, गद्दी, गदेली, हांत, हंतेरी

२८७. हर्ष – उराव, हालफूल, चँगनमँगन, खुसयारी, खुशी, आनन्द, खुसयाली, खुसहाली

२८८. हृदय – हिया, जिया, जी, जिउ, हिरदै, जियरा, चित्त, मन, दिल, उर, अन्तस, अन्तर,

२८९. हानि – निकसान, हॉनी, घाटौ, हाँन, नुकसान, दच्चौ, दच्चा, दच्च

२९०. हिम्मत – सत्तया, हिआव, तागत, सकती, जोर, दम, ताव, सामर्थ, साअस,

२९१. ज्ञान – ग्यांन, कूतखाँड़, रीज, बोध, बोद, मालूमात, जानकारी, जानबौ, आबौ, बुद्धिमान, अटकर पेंड़ौ, अनभव

२९२. ज्ञानी – विद्वान, जानकार, बुद्मान, बुझक्कर, ग्यांनवांन, सूझबूझवारौ, सिआनों, समझदार

२९३. स्नान – सपरा–खोरी, स्नानध्यांन, सपरवौ, नहावौ, अस्नान, सपरवौ, डुबकी लैबो, नहान

२९४. भोजन करना – खावौ, जेंवौ, खैवो, जीमवौ, भोग लगावौ, नरभरवौ, पेटपूजा, पावौ, जेंवाखाई

२९५. चेहरा – शकल, शक्ल, चौखटा, थोबरा, मों, चौखटो, चोंद, मुखरा, मुखड़ा, मुँह, आनन

२९६. निवासी – रहैया, रहबैया, बसइया, बसीकत, बसत, रैबौ, रिवइया, रत हैं, रतते

२९७. संकीर्ण – सकरी, संकरी, संकीरन, सकरोंदौ, समरोंदा, सकरौंद, कमचौंड़ी

२९८. मीठा – गुरीरौ, मीठौ, मीठी, मिठाई, मिष्टान्न, गुरतरी, मिठास, मधुर, गुरतरौ, मींठौ, मीठौपन, मीठपन, मीठपनौ,

२९९. संयोग – संजोग, जोग, सायत, घड़ी, घरी–स्यात, सुयोग, सुजोग,

३००. ईश्वर – ईसुर, पिरभू, प्रभु, विधना, जगदीस, बगपाल, परमपिता, हरी, परमातमा, रॉम, स्यॉम, भगवान, तिरलोकपति, तिरलोकी

३०१. शिव – भोलेबाबा, महादेव, बम–बम, विश्वनाथ, शमभू, पारवतीनाथ, बमभोला, बमभोले, तिपरारी, भोला

३०२. समय–असमय – टैम–कुटैम, चायजब, दोईबेरों, घरी–कुघरी, बेरा–कुबेरा, जाबेरा ना वा बेरा, समै–कुसमै

३०३. बचना – बचवौ, बरकबौ, विचकवौ, विदरबौ, बचकें, हटकें, बजाँईंहोबो, इक कोंदीं होवौ, बाजू होबौ

– शुक्लाना, छतरपुर म.प्र.

बुन्देली विकास संस्थान द्वारा सम्मानित विद्वानों की सूची

२००५ – १. डॉ. बलभद्र तिवारी, सागर
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
२. श्री गुणसागर सत्यार्थी, कुण्डेश्वर
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
३. डॉ. हरिमोहन पुरवार, उरई
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
४. डॉ. भगवानदास श्रीवास्तव, भोपाल
"दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान"

२००६ – १. आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, टीकमगढ़
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
२. श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल, छतरपुर
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
३. पं. रतिभानु तिवारी 'कंज', पृथ्वीपुर
"राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी स्मृति सम्मान"
४. डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव, सेंवढ़ा
"दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान"
५. श्री चुन्नी लाल रैकवार, कर्रापुर, सागर
"डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान"

विगत सात दशकों का बुन्देली संस्कृति का सार्थक संस्मरण –

हास्य रसावतार चतुरेश जी

– विंध्यकोकिल भैया लाल व्यास

हास्य रस के देश के शीर्षस्थ कवि श्री चतुरेश जी पर कलम उठाने और उनके अनछुए अंतरंग संस्मरणों पर सोचने लगा तो छतरपुर, दतिया क्या, बुन्देलखण्ड के सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, व्यावहारिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों के अनेक पहलू उजागर होते गये, जिनको लिखना आवश्यक लगा तो लिखना ही पड़ा। विस्तारबोध होते हुए भी कुछ अतिरेक मानो विवशता बन गया।

हमारे चतुरेश जी अपनी उदारता, हंसमुख स्वभाव, पुरानी मर्यादाओं, रिश्तों को निभाते सबके प्रिय रहे। अपनी आगे की पंक्ति के प्रति सम्मान, साथियों के प्रति सहजता और पीछे की पंक्ति के मुझ जैसे घटकों के प्रति प्यार दुलार बांटते हुये सभी के मार्गदर्शक और संबंध सेतु से सजे रहे।

जैसा कि मैंने अपने राष्ट्रीय रचनाओं के संग्रह ':जागा मेरा देश' की अपनी बात में लिखा है कि सन् १९३८ की होली के अवसर पर होने वाली कविगोष्ठी में मैंने अपना पहिला छंद पढ़ा जिसकी अंतिम पंक्तियां थी, 'टेढ़ी टांग वाला हिन्दवालों का सहारा है' यह गोष्ठी खैरापति हनुमानजी के अखाड़े के आंगन में हो रही थी। श्री वासुदेव गोस्वामी ने सराहा, श्री फलक जी ने पीठ थपथपाई, भैया बलवीर सिंह ने आशीर्वाद दिया तो चतुरेश जी ने गोद में उठाके नाचा और मेरे उज्ज्वल साहित्यिक जीवन के लिये शुभकामनायें दी, ऐसे उदारमना चतुरेश जी के हास्य कवि की ख्याति दतिया राज्य, प्रदेश फिर अखिल भारतीय स्तर पर होकर भी वे अपनों के लिए सदैव विनम्र निरीह से बने रहे। अहम् उन्हें छू नहीं गया, क्रोध का नाम नहीं, हर स्तर पर मुस्कुराहट उनकी दैवी दैन रही।

श्री चतुरेश जी अपने पहलवान, संगीतज्ञ, हंसमुख, सरल और दतिया राज्य के गुणी पिता के बड़े पुत्र थे। उन दिनों पहलवानी, संगीत साधना, गायन, वादन और साहित्य साधना काव्य सर्जना विशेष की प्रमुखता रही है। दतिया नगर के कोट के सात द्वारें के बाहर बगीचों में अखाड़ों में कसरत कुश्ती तथा भाषण संभाषण, चर्चाएं समारोहों में बसंत के उत्सवों पर भजन–गायन, वादन काव्यगोष्ठियों की गरिमा प्रमुख रही।

पीताम्बरा पीठ दतिया में जहां स्वामी जी का आज सभागार है वहां प्रसिद्ध अखाड़ा था। यहां से उपजे पहलवान बुन्देलखण्ड के क्षेत्रीय स्तर के प्रमुख पहलवान रहे।

मोदी बाग के अखाड़े से निकले गामा विश्वविजयी, तो इमाम बख्श भारत विजयी पहलवान होकर अपना विश्वकीर्तिमान स्थापित कर गये। वे दतिया को पहलवानी में अमर कर गये।

हमारे चतुरेशजी भी पहलवान संगीतज्ञ, गायक, तबला वादक और सफल नर्तक भी थे। अस्तु।

सोचना ये है कि वे क्या तत्व है जो पहलवानी, संगीत और साहित्य साधना से हमें संयुक्त रूप से जोड़े रहे। रजवाड़ों में इन तीनों कलाओं को विशेष सम्मान दिया गया। सामंतवाद को हम आज के प्रजातंत्र में कितना भी कोसें लेखक स्वयं सामंतवाद के शोषण के विरोध में रहा है। पर रजवाड़ों की इन कलाओं की साधना को सम्मान देना, उनका पालन पोषण करना, उनको हर तरह का संरक्षण देने का ही परिणाम है कि आज पहलवानी के अखाड़े संगीत के घराने, साहित्य के साधकों के मण्डल भारतीय क्षितिज पर चमकते हुये विश्व को आलोकित करते आ रहे हैं। आज का शासन मात्र कुछ जाने पहिचाने हुओं को पुरस्कार देकर आकाशवाणी, दूरदर्शन पर बुलाके कुछ पैसा देकर कला के प्रति अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देता है। फलतः भारत की कला, साहित्य, संगीत और पहलवानी घरानो की, अखाड़ों की, फड़ की, प्रतियोगिताओं की जो साधना थी सिसक रही है, स्वामी विवेकानन्द अनुसार हम अर्थ विकास से भले नहीं पर अपनी कलाओं से आज भी विश्वबंध रह सकते हैं, पर हम विदेशी कला के दास हो गये।

इस चिन्तन को और गहरा रूप देते हुये हमें इस सांस्कृतिक सारलेख को सार्थक करना समीचीन लगता है। सभी को पढ़ के आश्चर्य होगा पर एक सुखद अहसास भी कि हम जानें कि उन कारणों को जिसके आधार पर शरीर सौष्ठव के साथ हृदय और मस्तिष्क की महिमा को संजोए हमारी ललित कलायें पनपी हैं। विश्व विजयी गामा पहलवान अच्छे संगीतज्ञ थे, वे कत्थक नर्तक भी थे। इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी दस वर्ष की उम्र में गामा को उनके भानजे करीमबख्श, पहलवान की हवेली में स्वयं कत्थक नाचते देखा है और तुलसीदास उपाध्याय पहलवान भी बगिया में हनुमानजी के सम्मुख काली कवि के हनुमत पताका के छन्द पढ़ते हुए सुना है। पहलवानों की भंग छानने की गोष्ठी में ये सभी प्रसंग स्वतः चलते रहते थे।

ऐन साई पठान थे – निर्गुण शाखा के संत और ईशकशाह की टौरिया के अखाड़े के योद्धा भी थे। विश्व विख्यात पखावजवादक कुदऊ सिंह जी अच्छे मल्ल भी थे। पखावज परम्परा में दतिया के रघुवर उस्ताद (जिनके पुत्र रज्जन और सज्जन) रज्जन माधव संगीत विद्यालय से जुड़े प्रसिद्ध वायलिन वादक भी सुरंग की स्थिति के समर्थ तबलावादक थे। श्री साजन कन्या महाविद्यालय भोपाल मे संगीत में प्राध्यापक से निवृत्त होकर भोपाल में संगीत की शिक्षा दे रहे हैं। प्रसिद्ध ध्रुपदगायक गजर महाराज, जनक महाराज दतिया राज्य के साथ रायगढ़ के संगीतज्ञ महाराजा के दरबार के भी गायक रहे। गंगा प्रसाद पाठक उस्ताद आदि लाल धुन्नू उस्ताद भारत प्रसिद्ध गायक वादक रहे पथिक की संतति की राम स्पेटर्स, दिल्ली के पात्र होकर विश्व में राम विषयक औपैरा

के सफल अभिनेता है। आज की दतिया में स्व. नारायण. भट्ट की गायकी तथा लोक गायकी मध्यप्रदेश का वरदान बनी है। उनके लोककला मण्डल विशुद्ध लोक रागों को रेडियो और टी.व्ही. पर आज भी प्रस्तुत कर रहे हैं। वे विकृत लोकगीत नहीं शुद्ध के साधक हैं। श्री महेश कुमार मिश्रा मधुकर का लेखा गायन वादन और शास्त्रीय विवेचन स्तुत्य है। और हां, ये सभी गायक वादक और कवि, साहित्यकार सीधे अखाड़ा संस्कृति से अपनी बाल और किशोरावस्था तक जुड़े रहे। लेखक स्वयं भी कसरत और कुश्ती का एक समय तक लघुपात्र रहा है। उन दिनों कुश्ती कसरत एक कवि का विषय और रीति थी। आज भी उसे नकारा नहीं जा सकता। अन्य अनेकों के नाम विस्तार भय से नहीं दे रहा हूँ।

हरदौल के अखाड़े से उपजे संस्कार ओरछा टीकमगढ़ के कूड़ा देव के अखाड़ों से पले-पुसे टीकमगढ़ की संगीत परम्परा में केशवदास जी का काव्य और प्रवीणराय की गायकी को संजोते शंभूनाथ वर्णीकर और तैलंग बंधुओं की साहित्यिक और संगीत की कलाकीर्ति को अक्षुण्य बनाये हैं। वहीं साहित्य के पूज्य बनारसीदास के लीला काल से गौरीशंकर द्विवेदी, श्री चतुर्भुज पाठक आदि आज पर्यन्त पं. कृष्ण किशोर शास्त्री, डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, गुणसागर सत्यार्थी, दुर्गेश जी, कंजजी के कलरव के स्वर गुंजित हैं। टीकमगढ़ के श्री हरिविष्णु अवस्थी अध्यवसाय से संस्कारित हैं।

छतरपुर का एक छत्र चतुर्मुखी कलात्मक विकास खजुराहो का खण्ड खण्ड होकर अखण्ड कलातीर्थ वास्तु पुरातत्व, कला, संगीत, चित्रात्मकता, तंत्र और शिवत्व का दर्शन होकर हमें बाह्य और अन्तर से पावन करता है, उसी अखाड़े परम्परा का पोषक है। इस विषय (मेरी जरावस्था केवल कह सकती है) पर बड़े शोध की आवश्यकता है। गंगाधर काल से लेकर आज तक राजाराम शुक्ला, महादेव चौबे, रत्नेश, संतोष सिंह बुन्देला, श्रीनिवास शुक्ल, विमल बुन्देला, मालती श्रीवास्तव, शिरीष, और हरदेव संगीत का संयोजन इसी परम्परा की देन है।

छन्द विधा के आचार्यों में भी वहीं वे मल्लविद्या के जानकार और शास्त्रीय संगीत के उसी प्रकार मर्मज्ञ थे जैसे कि छन्द रस और नायिका के कुशल कवियों शरीर महाराज की साधना नागपंचमी के मेले के दंगल उनसे उपजी भजन, कीर्तन और गायक की गायकी, मोटे के महावीर की महिमा नहीं तो और क्या है? बड़ा सुखद है जान कवि छतरपुर के गायकी, रामलीला की अभिनव कला, सभी लालकड़क्का से उपजी संस्कृति, मल्ला विद्या से जुड़ी है जितने भी ख्याल, सैर के गायक हैं अखाड़ों से उपजे हैं, वे उसी के पोषक है यहां के मेलों से मेलमिलाप हमारी संस्कृति के समूल संवाहक रहे हैं। स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, डॉ. बरसैंया से समीक्षक, श्रीनिवास जी का संपादन, बिजावर के अखाड़े, जानकी निवास के मेले में पहलवानी, काव्यगोष्ठी और संगीत की सारगर्भित त्रिवेणी बहती रही है। राज कवि बिहारी जी, रसरंग जी आदि को स्मरण करना हमारी पुण्य परम्परा है। आज से तीन पीढ़ी आगे के बिजावर महाराज अपनी पहलवानी का बलिष्ठ शरीर लिये सिंह का शिकार किसी सवारी पर नहीं आमने-सामने करते थे। उन्हें अपने तन-बल तथा अचूक निशाने पर अटल विश्वास था। उनके दरबार के पनपे गायक-वादक, भक्त हमारे पूजनीय हैं।

हमारी देशी रियासतों की राजधानियां अपने मेला तथा कीर्तियों से अपनी चिन्हारी बनाये हैं। 'पन्ना के जुगल किशोर जू मुरलिया में हीरा जड़े हैं' 'दै राखौ राजा अमान हमाई खेलत बिंदिया गिरगई' और 'बरजाय पन्ना तेरौ बजार हमाई ननंद हिरा गई बटुआ सी।' ये लोक आस्थायें पन्ना से जुड़ी हैं, यहां भी तालाबों पर अखाड़ों की संस्कृति से शरीरी शक्तिप्राप्त बौद्धिक सम्पदा के धनी हुए हैं। पं. कृष्णकुमार तिवारी तरंग के वादक, गायकी स्कूल के गुरु, सौ. उर्मिला पाण्डेय इसी स्कूल की शिष्या हैं तो अनुज शिवकुमार विंध्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सचिव पन्ना शाखा के अध्यक्ष रहे हैं।

चरखारी का चातुर्य तो शताब्दियों तक चर्चित रहने वाला है। जहां बांदा, हमीरपुर, राठ के संयोग से चरखारी की पहलवानी प्रसिद्ध रही है वहीं आगाहश्र के नाटक, मंच, कला, चरखारी का मेला उसके भक्त रानियों के भजन आज भक्तिकाल की कीर्ति हैं। उसमें इन त्रिविध कलाओं का प्रदर्शक आज भी स्मरणीय है। राजा छत्रपति सिंह, अब चरखारी से जुड़े बिजना के राजा तथा मृदंगाचार्य (चंदला पूर्व चरखारी का भाग है) के गौरव है।

अजयगढ़ भी राजघराने से संत परम्परा की देन में विख्यात है वही अब साहित्यिक साधनाओं का संगम है श्री दिव्य वहीं की दिव्यता है।

तात्पर्य शब्द स्वर शरीर की साधना का यह त्रिमूर्ति रूप हमारे चतुरेश जी के शरीर शब्द स्वर और हंसी से ओत-प्रोत रहके आज भी उनकी स्मृति संजोये हैं। वे सभी इन स्थानों पर छाये रहके आज भी छाया बने हैं।

जब उस अखाड़ा संस्कृति का सोच मुझे बेचैन किये रहा। मल्ल विद्या शरीर की साधना और संगीत तथा काव्य का मेल-मेल नहीं अनिवार्यता, पर सोच चला। सौ. उर्मिला पाण्डे से मिला। श्री मातादीन पहलवान (मूल महाराजपुर के अभी खजुराहो में कार्यरत हैं।) बसारी मेले के कुश्ती कला के खलीफा हैं वे अपने समय के अखिल भारतीय पहलवान रहे हैं। आज भी चंदगीराम जैसे भारतीय मल्ल के मित्र हैं, से सम्पर्क किया कितना आश्चर्य और गर्व हुआ जानकर कि शरीर काम का व्यक्ति कला पर कितना पहुंच वाला है। मैं पहलवानी से संगीत और काव्य को प्रमुखता से उत्पत्ति पर सोचकर किसी परिणाम पर न पहुंचा कि इस खलीफा ने (भले वे पुस्तकीय विद्या के धनी न हों।) अपने एक वाक्य में हमारे विचार का समाधान दिया बोले – 'महाराज (वे मुझसे महाराज कहकर ही बोलते हैं) संयम का विस्फोट इन कलाओं को जन्म देता है। सुनके इस वाक्य की विविधता पर सोचा प्रसन्नता मिली शरीरी संयम से उपजी ललितकला, संगीत और काव्य के सृजन में ही संलग्न होती है। वहीं शरीरी असमय के भटकाव से उपजी कला में विलासिता और भोगवाद को जन्म देती है। आज

यही हो रहा है तो संयम का साकार रूप साहित्य संगीत की सिद्धि है। श्री मातादीन स्वयं अच्छे गायक, हजारों छन्दों के धनी स्वयं भी काव्य सृजन करते हैं।

हां, तो इस वातावरण में पले श्री चतुरेश जी स्थूलकाय लम्बे कद के गोल—गर्बीली मुखाकृति उन्नत ललाट, घुंघराले बालों की सुन्दरता के रूप थे। पहलवान पिता के स्थूलकाय पुत्र होने पर भी उनकी सक्रियता में कोई कमी नहीं थी। हास्य उन्हें प्रकृति ने मानो शारीरिक और मानसिक रूप से वरदान में दिया था, उनकी एक मूछ काली, तो दूसरी भूरी मटमैली थी, उनकी छवि सहज मुस्कुराती थी उन दिनों की वेशभूषा लम्बा साफा, कमीज कालरदार कोट और धोती तथा देशी सुन्दर जूती ही शिष्ट नागरिक की चिन्हारी थी। चतुरेश जी इन्ही वस्त्रों में फबते थे। चलने—फिरने में उनका सदा सहायक एक मोटा बेंत रहता था।

जबसे मैं उनसे जुड़ा वे दतिया नगर के नगर पालिका अधिकारी थे। आलस्य उन्हें छूकर नहीं गया था। स्थूलता उनकी सक्रियता थी, वे बड़े भोर निरीक्षण को निकलते और कहीं किसी घर कहीं किसी को आवाज देकर सुस्ताते थे। दतिया नगरी उन दिनों (सबसे अधिक) पैंतीस हजार की आबादी की बस्ती थी। इतनी बड़ी नगरी की गलियों में नित्य झाडू लगना, सफाई होना, नित्य की क्रिया थी, सूर्योदय तक यह क्रिया पूरी हो जाती थी। चतुरेश जी का चक्कर कब कहां किस सड़क, किस गली में लग जाय, सो सफाईकर्मी सजग रहते। सभी कर्मचारियों से उनके निजी सम्बन्ध से थे। अधिकारी के नहीं, उनकी भावनाशीलता, विनम्रता उनकी विशेषता थी। मेहतर—मेहतरानियां उन्हें महाराज से सम्बोधित करते तथा सबको प्रसन्न रहो कहके अपनी कर्त्तव्यपरायणता का पूर्ण निर्वाह करते थे। जहां वे निकलते महाराज डण्डौत, महाराज जैरामजी की, पायं लागै होती वे सबसे मिलते अपना भ्रमण पूरा करके समय पर कार्यालय में उपस्थित होते। वे व्यावहारिक हलों के हामी थे। कागजी प्रक्रिया के नहीं। सभी उच्चधिकारी यहां तक कि रियासत के दीवान के वे प्रिय अधिकारी थे। उनकी ये विशेषता उनके हास्य कवि को आगे बढ़ने और उनके कवि को अखिल भारतीय बनाने में सहायक सिद्ध हुई ये सत्य है।

फौजदार पर्वतसिंह (दतिया महाराज के दरबारी) उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी, संस्कृत के विद्वान, साहित्य के पारखी थे। उनकी हवेली में नित्य सायंकाल कवियों का जमावड़ा होता था। वे सभी की नित—नवीन रचनायें सुनते, परखते और सराहते थे। सर्वश्री फलक जी, वासुदेव गोस्वामी, चतुरेश, बृजेश, सुन्नूलाल पटैरिया, पथिकजी अन्यान्य सभी वहां एकत्र होते थे। श्री वर्मा जी, भी वहां अपनी गद्य धारा की विशेषताओं से सबको अभिभूत करते थे, मैं भी बहुत बाद में इसी मण्डली से जुड़ा और मेरी एक रचना जो न अब याद है, न लिखी प्राप्त है स्थानान्तरण के बाद दतिया में छूटी सभी सामग्री समाप्त हो गई। 'भिखारी' सुनकर फौजदार साहब ने मेरी भविष्य की कामना की जो फली, श्री बलवीर सिंह फौजदार उनके एक मात्र पुत्र संस्कृत और तंत्रशास्त्र के अच्छे ज्ञाता, पीताम्बरा पीठ के स्वामीजी के कृपापात्र थे। उन्होंने संस्कृत में तांत्रिक रचनायें लिखीं। ये हम सभी के वरिष्ठ मार्गदर्शक कविता लेखन के गुरु रहे हैं।

देशी राज्य होने से राष्ट्रीयता का विचार रखने, स्पष्ट करने, लिखने, का वातावरण नहीं था। इस दबाव के रहते इस समुदाय ने 'यशवन्त शंकर समाज' महादेव की मढ़िया तथा 'लोकेन्द्र साहित्य मण्डल' की स्थापना की जिनमें प्रत्यक्ष रूप से साहित्यिक गतिविधियों के साथ परोक्ष रूप में देश की राजनीतिक स्थिति पर चर्चा करना उस सन्दर्भ की रचनाओं का लेखन भी होने लगा।

इन संस्थानों के आयोजनों में धार्मिक अनुष्ठानों के संग साहित्यिक आयोजन होने लगे। कवि सम्मेलन भी आये दिन होते और झांसी—मऊरानीपुर, चिरगांव से सर्व श्री कवीन्द्र नाथूराम माहौर (सुख्यात क्रांतिकारी भगवानदास माहौर के मामा, जिनकी गिरफ्तारी पर 'दीन के आंसू' लिखी पुस्तक ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त की गई थी।) स्वयं भगवानदास माहौर, रामचरण हयारण मित्र, ब्रजभाषाचार्य सेवकेन्द्र, नरोत्तम पाण्डेय, राष्ट्रकवि घासीराम व्यास, पं. परमानन्द बुधौलिया जैसे राष्ट्रवादी विचारों के रचनाकार आते रचनायें होती, पढ़ी—सुनी जाती और सराही जाती रही हैं। इसी प्रकार दतिया के इस साहित्य संगम में शास्त्रीय छन्दों और अभिनव गीतों की विविध विधाओं की सर्जना का संयोग बढ़ता गया। साहित्य की समृद्धि होती गई। श्री वासुदेव गोस्वामी का आचार्यत्व, श्री फलक जी का भक्तिपरक कवित्त, 'ब्रजेश के गीत' रस संचार करते वहीं श्री चतुरेश का सटीक हास्य सभी को हर दिशा में आनंदित करता रहा। श्री वासुदेव जी क्षेत्रीय स्तर पर श्री फलक कुछ सीमित भारतीय स्तर पर और श्री चतुरेश जी अखिल भारतीय मंच के अनिवार्य श्रेष्ट कवि स्थापित होते गये।

हास्य रस के उन दिनों सर्वश्री बेढ़व बनारसी, बेधड़क बनारसी, कान्तानाथ पाण्डेय, चौंच, रमई काका और उज्जयनी के श्री पाण्डेय स्थापित कवि थे। श्री चतुरेश की रचनायें उनकी सहज सटीक शैली जिसमें बुन्देली पचहत्तर प्रतिशत रहती थी। सभी श्रोताओं को मुग्ध करती और इस प्रकार चतुरेश जी हास्य के शिरोमणि होते गये। सभी अन्य उनके आगे धुंधले पड़ते गये। दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में जब इनकी रचनायें सुनी गई तो सभी इनके भक्त हो गये। दूसरे दिन भी चतुरेश जी श्रोताओं द्वारा घेर लिये गये, उनके सैकड़ों पोज लिये गये उन दिनों साप्ताहिक हिन्दुस्तान की तर्ज पर 'संसार' (साप्ताहिक) था श्री चतुरेश के लेटे—बैठे उनके चित्र छपे और श्रोता उन्हें सुनते अघाते नहीं थे।

श्री चतुरेश का भारी भरकम शरीर उनका मेकअप बड़ा सुन्दर। जब कभी मैं उनके साथ होता तो देखा करता मंच पर जाने से पहिले उनकी तैयारी सहज कोई बनावट नहीं वे बीड़ी पीते थे सो माचिस की तीली के जरा सी राख अपनी हथेली पर मलके अपनी एक भूरी मूंछ पर मल देते। बस हो गया मेकअप। उनका परिचय विख्यात हर श्रोता के जवान पर चढ़ता दुहराया जाता था—

मैं कवि चतुरेश कहाता हूँ

दतिया का रहने वाला हूँ, नहिं गोरा हूँ नहिं काला हूँ।

औसत दर्जे का रंग मेरा, सूरत में अजब निराला हूँ।

ऐसा परिचय श्रोताओं के मन में कुछ गुद–गुदी पैदा करता और अपार जनसमूह वाह–वाह कह उठता था आगे–

रिक्शे वाले सब डरते हैं, तांगे वाले दम भरते हैं।

कुछ अधिक किराया ठगने को बातें मनमानी करते हैं।

ऐसी बातें जब सुनता हूँ मैं स्वयं ढुलकता जाता हूँ।

मैं कवि........।

दुर्बल जन फबती कसते हैं पाने को मांस तरसते हैं।

वे मुझे देखकर हंसते है मैं उन्हें देख हंस जाता हूँ

मैं कवि............

ये लम्बी रचना जब वे पढ़ते तो सभी तन्मयता से सुना करते थे।

दतिया के साहित्याकाश के नक्षत्रों में श्री वासुदेव गोस्वामी प्रत्युत्पन्नमति तथा श्री चतुरेश जी सहज स्थित हंसोड़ स्थिति को हास्य के अनुरूप ढालने की क्षमता उनमें थी। के वाक्पटु और आशु कवि भी थे। तो चतुरेश के अनेकों प्रसंग इनके व्यक्तित्व और कृतित्व के लेखे जोखे हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पहली ससुराल दतिया थी। वे यहां आते–जाते रहते थे। दतिया की काव्य मंडली सायं भ्रमण करते लाला के तालाब पर बैठती और 'काव्यशास्त्र विनोदेन' की रीति पर आनंद लेती। संयोग एक दिन ये सभी ख्यातलब्ध कवियों के काव्य की चर्चा करते हुए गुप्त जी की रचनाओं पर जी खोल के पैरोड़ी करते हंस रहे थे, कि गुप्त जी भी अपने संबंधियों के साथ कुछ दूरी पर बैठे थे। उन दिनों गुप्त जी पगड़ी, अंगरखा और धोती पहिनते थे। सो अलग से पहिचान नहीं थी। रचना चलते, पंचवटी की पंक्ति 'पंचवटी की कुटी खोल के स्वयं खड़ी क्या ऊषा थी?' तुरन्त चतुरेश जी कहते हैं ''खिरका खोल देख के रै गये तनक बची बस भूखा थी। सब हंस पड़े, गोष्ठी सम्पन्न होते जो लौटे तो एक सेठजी कहते है। चतुरेश महराज जे आपके गुप्त जी विराजे हैं। सब चकित–लज्जित रह गये पैर छुये क्षमा मांगी तो गुप्त जी कहते हैं कि 'जौ तौ ससरार को आनंद है जामें ऐसी का बात कै क्षमा मांगी जाय'।

चतुरेश जी गालब के शिष्य के नाते विदूषक का रोल और बृजेश उपविदूषक दोनों गेरुआ तनीदार टोपी बगल बन्दी घुटनों तक की गेरुआ धोती पहने मेकप से सजे मंच पर आते। यहां इन अवसर पर कथा के अनुरूप चतुरेश जी अपने रचे भजन–गीत पद गाते थे। सभी को सुनाते थे। वे ग्रीन रूप में मेरा मेकप भी करते थे। नाटक की जटिलता की तीन बार कृष्ण और सुभद्रा का मेकप करके अभिनय करना होता था। उल्लेखनीय है कि चतुरेश जी पत्नी (भाभी जी) लाल साड़ी, सफेद गोट की मुझे भाई थी। वह पहनाते, चतुरेश जी बड़े होकर भी कवि चुटकी लिया करते थे। इस नाटक का सफल मंचन हुआ इसके तीन जटिल दृश्य हिमालय, चित्रसेन का आकाश में भ्रमण और सुदर्शन चक्र का वध हेतु घूमना। इन दृश्यों को सफल बनाया था। दतिया के मिस्त्रियो ने, इंजीनियरों ने तात्पर्य सुख्यात गायक, वादक, नर्तक, नाट्य विशेषज्ञ, लेखक संपादक, डायलॉग का शोधन, तत्काल परिवर्तन के सभी कार्य श्री वर्मा जी निदेशक करते थे। नाटक बहुत सफल हुआ। नाटक में सबसे अधिक परीक्षा थी चतुरेश जी की। उनके विदूषक रोल की जो नाटक के कथा तन्तु को जोड़े रहके दर्शकों को अपने मनोरंजन से बांधे रहता था। नाटक की मूल कथा और कथानक का विस्तार विविधता लिये गंभीर था कि मनोरंजन की भूमिका प्रमुख हो गयी थी। चतुरेश जी मूल कथा से जुड़े विदूषक रूप में अपने गीत गाते और भावों का सफल प्रदर्शन करते, दोनों विदूषक शिष्य भंग घोटते, गाते, 'नित उठकर सांझ सबेरे गहरी छान ऐ विजया है।'' हर पंक्ति पर अभिनय कौशल का आनन्द प्रस्तुत करना उनका कौशल था। रचनाओं की विशेषता दृश्यानुकूल प्रदर्शन उनकी विशेषता होती। बात और कठिन तब हो जाती। जब किसी बड़े दृश्य की तैयारी में समय लगने के कारण मूल कथा से अलग ड्राप सीन पर्दे पर विदूषक को अपने दर्शकों को हाव–भाव गायन नर्तन से बांधे रखना पड़ता।

ऐसे दृश्यों में चतुरेश की कभी सिपाही बनके (उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध हो रहा था) रिक्रूट भरती के लिए स्वांग करते –

'भरती हो जा मेरे भैया तेरे द्वार खड़े रंगरूट।

इतै मिलै नई फटी पनैया उतै मिलैंगे बूट।'

इतै मिले नई जुनई की रोटी उतै मिलै बिस्कूट।

इतै जुहारै करत टूट रये, करहा उतै सलूट।।

इस प्रकार गायन और अभिनय से दर्शकों को बांधे रहते।

एक दृश्य में निदेशक ने उनसे गवाया –

'मेरी पतरी कमर नारा झब्बेदार लइयो'

चतुरेश जी और पतरी कमर, नृत्य में तो वे पारंगत थे, पर इस पंक्ति का अभिनय जब सामने चिकटे साहब विराजे हो बड़ा कठिन था। पीछे से जब वे नाचते और नैपथ्य में दिखते तो एक ओर वर्मा जी दूसरी ओर वासुदेव जी कमर पर हाथ रखके फिरकीदार नृत्य करने को वाध्य करते इस द्वन्द में अभिनय को संभालते। अंतत: चतुरेश जी ने दोनों पर हाथ रख के ज्यों ही गाया 'मेरी पतरी कमर नारा' कह हाल ठहाकों से गूंज उठा। चतुरेश जी अपना धर्म निभा गये और नैपथ्य जाके दोनों निदेशकों को बनावटी गुस्सा से हेरने लगे।

एक बड़ी विशेषता नाटक समाप्त होने पर चिकटेसाव अंदर आये, सभी अभिनेताओं को सराहा, विषयवार व्याख्या की और चतुरेश जी की पीठ पर हंसके हाथ फेरा। चतुरेशजी को मानो सब कुछ मिल गया। इसी क्रम में फिर कई ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक खेले जाते रहे। छतरपुर की भांति दतिया का वार्षिक गोविन्द मेला बड़ा भव्य और नाटकों, नौटंकियों, प्रदर्शनों, गोष्ठियों के चलते महत्वपूर्ण होता था, इस मेले में हम लोगों द्वारा नाटक खेले गये।

सुरैयों के इस मैदान में अब गल्लामण्डी बन गई मात्र कुछ जगह हॉकी के स्टेडियम के लिए रखी गई जहां स्टैडियम का निर्माण होकर दतिया की प्रसिद्ध हॉकी परम्परा को कुछ जीवित रखे हैं। दतिया की हाई स्कूल स्तर की हॉकी टीम क्षेत्रीय विजेता टीमों में रही है। पास में झांसी होने से हॉकी के जादूगर ध्यानचन्द्र का मार्ग दर्शन, साथ खेल का प्रोत्साहित करने के क्रम से ये टीम श्रेष्ठ बनती गई। उन्हीं दिनों बुन्देलखण्ड की राजनैतिक राजधानी पोलिटिकिल एजेन्ट के रहते नौगांव (बुन्देलखण्ड) थी। यहां प्रतिवर्ष बुन्देलखण्ड वीक होता था जिसमें सभी राजे–महराजे और उनके राज्य की खेल मण्डलियां हॉकी विशेष भाग लेती थी। यही बुन्देलखण्ड वीक नौगांव वीक बना और आज नौगांव मेला कहलाता है। यहां एक बार तो दतिया की हाकी टीम इस बुन्देलखण्ड वीक में हाकी के सेमीफायनल तक पहुंच के किचनर कॉलिज की सशक्त टीम से भिड़ चुकी थी। नौगांव का ये किचनर कॉलिज तब भारतीय सेना के प्रशिक्षण का सर्वोत्तम संस्थान था। यहां लेफ्टीनैन्ट स्तर के अधिकारी प्रशिक्षित होते थे। आज ये महत्व देहरादून मिलेट्री अकादमी को मिला है। लार्ड किचनर की आदम कद प्रतिभा बाद में धुबेला संग्रहालय में शोभा पाती रही अब पता नहीं।

कहने की मंशा है कि दतिया की प्रसिद्ध हॉकी टीम के चतुरेश जी भी खिलाड़ी रहे हैं। उन दिनों गोलकीपर केवल पैड पहनते थे। आज की भांति अन्य रक्षा कवच नहीं। तो चतुरेश जी जब गोलकीपर बनते तो कई बार तो विरोधी की गोल हिट को अपनी छाती पर रोककर के गोल बचाके, दर्शकों को चकित कर देते थे। ये इनकी स्थूल परपुष्ट काया और साहस का ही बल था जो इतनी जोखिम उठा सकते थे। कालान्तर में अकिंचन भी हाईस्कूल की फर्स्ट एलेवन का राइट आउट खेलता रहा। प्रसंगवश डॉ. मो. इजराइल भी बाद में दतिया अपने मामा सकूर अली कोतवाल के पास रहकर जब पढ़ते थे तो हॉकी के मजे खिलाड़ी थे। इनकी ड्रिबलिंग, स्टिक वर्क देखते ही बनता था। बाद में तो छतरपुर में फुटबाल के प्रख्यात बनर्जी टूर्नामेन्ट के सक्रिय प्रमुख घटक बने रहे। नये पनपे खिलाड़ियों को यहां बता देना आवश्यक है कि झांसी की हीरो क्लब ध्यानचन्द्र के नेतृत्व में उन्हीं दिनों विश्व की जानी मानी हॉकी टीम थी। इसके टूटने पर ये सभी खिलाड़ी महाराज वीरसिंह द्वारा वेतन पर टीकमगढ़ में बुला लिये गये और भगवंत क्लब नामकीय टीकमगढ़ की हॉकी टीम तब भारत के सर्वोच्च आगा खां टूर्नामेन्ट की अनेक बार विजेता रही।

समय पलटा, पाकिस्तान बना, इस टीम के कुछ खिलाड़ी पाकिस्तान चले गये। टीम बिखरी और आज टीम के खिलाड़ियों के उत्तराधिकारी विश्व की सर्वश्रेष्ठ दो हॉकी टीमों के सदस्य भारत और पाकिस्तान के प्रतिद्वन्द्वी हैं। टीकमगढ़ आज भी अपनी हॉकी की इस श्रेष्ठता को बनाये रखते प्रतिवर्ष अखिल भारतीय हॉकी टूर्नामेन्ट करता है और टीकमगढ़ के खिलाड़ी प्रोत्साहित होकर हॉकी के मंजे खिलाड़ी आज कहे जाते हैं।

दतिया राज्य के समय तुलसी जयन्ती का विराट मेले जैसा आयोजन होता था। रियासत भर की रामायण समाजें पूर्व संध्या से एकत्रित होतीं, स्थान, साज सज्जा, पूजा नैवेद्य, दक्षिणा का, विदाई का प्रबन्ध, अवध बिहारी के मंदिर से होता। विराट प्रांगण में सभी समाजें एकत्र होतीं। रात्रि भर रामायण गान, दूसरे दिन शोभा यात्रा, तुलसीदास जी की पूजा, बौद्धिक और काव्य गोष्ठी होती। चतुरेश जी इन सब कार्यक्रमों के सर्वप्रिय पात्र होते थे। उनके मंदिर में प्रवेश करते ही सब समाजें बुलातीं। कहीं वे रामायण बांचते, कहीं भजन गाते, कहीं तबला पर संगति करते, तो कबीरपंथी मंडली में पहुंचते ही खंजड़ी लेकर गाते, नाचते, सबको भाव विभोर करते थे। विविधता की उनकी ये प्रतिभा दैवीय देन थी।

छतरपुर में भी तुलसी जयन्ती के भव्य आयोजन होते रहे। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के संयोजन में तुलसी साहित्य और बुन्देली भाषा, संस्कृति पर गोष्ठियां होतीं। बाहर से विद्वान मनीषी आते थे। बाबू कन्हैया लाल अग्रवाल की प्रेरणा और अग्रवाल धर्मशाला के ट्रस्ट से वित्तीय प्रबन्ध होके ये दो दिनी आयोजन काव्य गायन से समाप्त होता था। अब कहीं कुछ नहीं। सरस्वती सदन के, छत्रसाल सदन के, साहित्यिक सांस्कृतिक आयोजन श्रीनिवास जी शुक्ल की क्रियाशीलता की शून्यता से सभी चुक से गये, आगे सोचें।

लोकेन्द्र साहित्य मण्डल दतिया के हम सभी लोगों ने कवि दरबार की नाटकीय श्रृंखला प्रारंभ की थी, इनका नाटक जैसा मंचन होता। सभी बौद्धिक, सामाजिक और जो जिसका भक्त हो। उस कवि की वेशभूषा, भाषा, काव्यपाठ का अभिनय करता था। अकिंचन इस आयोजन का निदेशक बनाया गया था। श्री वर्मा जी लेखन, वासुदेव जी ग्रीनरूम और श्रीरामरतन तिवारी इन्द्रदेव तथा सिलारपुरिया, अन्य इन्द्र के दरबारी बनते। चतुरेश जी तो स्थापित विदूषक होते ही। इन्द्र का दरबार सजता, वन्दना होती, नृत्यांगना नृत्य करती और कविदरबार का शुभारम्भ होता। चोबदार (दरवान) चांदी की छड़ी, पगड़ी, अंगरखा, और चूड़ीदार पंजामें में दरबार में जयकारे से प्रवेश करता। कवि के आने की सूचना देता, इन्द्रदेव की आज्ञा से प्रवेश मिलकर अब कवि अपनी रचनायें उसी वेशभूषा और स्वरों में सुनाते, आते–जाते। चन्दवरदायी से लेकर जगनिक और अधुनातन कवि इसमें भाग लेते। चतुरेश, बीच–बीच में आकर उस कवि की कविता की पैरोडी सुनाकर भरपूर मनोरंजन करते थे।

एक बड़ा महत्वपूर्ण और सुखद संयोग छतरपुर की साहित्य और संस्कृति से सजे श्री केलकर उन दिनों दतिया के कलेक्टर थे। वे दरबार में दर्शक के रूप में आये। एकाग्रता से सभी को देखते रहे। उनका मन मंच पर आने को हुआ, मुझे बुलाया गया, चर्चा हुई, निर्णय हुआ कि एक दृश्य डाला जाये, तो कलेक्टर साहब ने सहर्ष पगड़ी बांधी, शेरवानी पहनी, चूड़ीदार पजामा पहना, दुपट्टा डाला और चोबदार के घोष के साथ इन्द्रदेव के दरबार में प्रवेश किया। इन्द्रदेव को प्रणाम करने पर उनके मृत्यु लोक से आने का कारण पूछा गया। तो दतिया के कलेक्टर ने विनती की कि महाराज उनका नगर पालिका अधिकारी, बिना छुट्टी के गायब है। ज्ञात हुआ है वह आपके दरबार में है। इन्द्रदेव की

आज्ञा से विदूषक चतुरेश को बुलाया गया। चतुरेश जी हाथ जोड़े कांपते अपराधी की भांति उपस्थित हुए। इन्द्रदेव की आज्ञा से कलेक्टर अपने अधिकारी का हाथ पकड़ के ले गये। दृश्य समाप्त हुआ। कवि दरबार फिर यथावत चलता रहा। इस दृश्य से दतिया के कविदरबार की कीर्ति और फैली साथ ही माननीय केलकर साहब दतिया के जन–जन के जाने लोकप्रिय कलेक्टर के रूप में कार्यरत रहे। बाद में छतरपुर के मेले में ऐसे दरबार के आयोजन हुए। चतुरेश जी और लोकनाथ पटैरिया (दोनों स्थूलकाय) विदूषक बनते रहे। १९५५ पं. उर्मिला प्रसाद शुक्ल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, महाराजा महाविद्यालय के निर्देशन में कोणार्क का मंचन हुआ। इसमें मनोज जी कोणार्क के राजा बने थे। इसमें पहली बार जमना बाबू (हिन्द फर्नीचर्स, छतरपुर के स्वामी) परिवार कदाचित सरजू बाबू की बेटी ने गीत गाये।

कहना होगा कि केलकर जी के बाद बाबू कन्हैया लाल दतिया के कलेक्टर बने तो उन्होंने चतुरेश जी समेत सब कवि साहित्यकार और संस्कृति के साधकों को प्रोत्साहित करके परम्परा कायम रखी। जब तक हम सभी एक–एक कर स्थानांतरित नहीं हो गये। बाबू जी के प्रियजन रहे। आज भी बाबू जी चतुरेश, वासुदेव को भूले नहीं है, मुझे अपनत्व दिये हैं। ये छतरपुर के उदात्त संस्कृति का उदाहरण है। चतुरेश जी १९८० तक सतत रूप से छतरपुर से जुड़े रहे। अपने शिक्षक पुत्र पण्डित जी के रहते वहां उतरते बाद में मेरे यहां या स्वामी प्रसाद खरया के यहां रहते थे। प्रतिवर्ष मेले के कवि सम्मेलन में वे प्रमुखता से भाग लेते रहे। बाद में चतुरेश जी की पन्ना में पदस्थापना हो गयी। पन्ना जैसी बुन्देली संस्कृति की नगरी में चतुरेश जी विन्ध्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक आयोजन के संग अनेक कवि सम्मेलनों के आयोजन किये। इन आयोजनों में चतुरेश जी स्वयं अखिल भारतीय कवि होकर भी एक सेवक के रूप में सभी आगन्तुकों का स्वागत करते, स्वयं भोजन कराते। दो–तीन दिन गोष्ठियां होती, साहित्य की, कविता की गहराई की परख होती। तब कवि विदा लेते। विदाई में उनको जो उनका यात्रा में तथा व्यवस्था में व्यय हुआ। बस उससे कुछ ही अधिक भेंट किया जाता था। तब के कवि विचारक, साहित्यकार हिन्दी साहित्य के सम्वर्धन, हिन्दी की स्थापना के लिए मिशनरी के भांति आते थे। पैसा लूटने, मौज उड़ाने के लिए नहीं, उनके पास, सर्जना का भण्डार होता था। हर विधा या छन्द, कविता, गीत प्रस्तुति सहज बात थी। आज की भांति मात्र दो चार रचनाओं और चुटकुलों पर वे निर्भर नहीं होते थे। तब साहित्य का सृजन हो गया। आज इसकी व्यावसायिकता एक कलंक बनके हिन्दी की कीर्ति को कलुषित कर रही है। हमें हिन्दी प्रेमियों को इसे रोकना होगा। श्रोताओं में चुटकुलों में बहकना नहीं शुद्ध साहित्य सर्जन के प्रति रुचि दर्शाके साहित्य को बचाना होगा। विख्यात कवि स्व. राजेश दीक्षित आगरा की पुत्री ने ''हिन्दी के प्रचार में मंचीय कवियों का योगदान'' नामक ७०० पृष्ठों का शोध ग्रन्थ लिखा, प्रकाशित हो गया। इसमें श्री चतुरेश जी, राजा संतोष सिंह बुन्देला, वासुदेव गोस्वामी, और मुझे स्थान प्राप्त है। श्री चतुरेश तो सिरमौर हैं।

श्री चतुरेश की रसना पर सरस्वती विराजमान थी। जब जो देखते, अनुभव करते, तुरन्त लिखते, हँसी उनकी कविता में सुगन्ध की भांति रची–पची थी। उनकी हर रचना सरल, सहज पर रससिद्ध छन्द अलंकारों से सज्जित लगती है। इनकी परिचय रचना के कुछ अंश पूर्व में लिखे जा चुके हैं। लगभग ७० प्रतिशत ठेठ सहज बुन्देली में उनकी प्रभावी अभिव्यक्ति श्रोताओं के हृदय में हिलोरें भरती थी।

अमृतध्वनि संस्कृत का संश्लिष्ट छन्द हिन्दी में भी समर्थ कवियों द्वारा लिखा गया है। ध्रुपद गायकी की गमकदार पद योजना शुद्ध गंभीर विषयों पर इस छन्द को लिखना शास्त्रीय कवियों की सामर्थ थी।

हां, चतुरेश जी का चातुर्य इसमें भी अपना हास्य रस खोज लेता है। प्रस्तुत है – एक सेठ जी का पीतल का बड़ा लोटा, जीने में हाथ से छूटा, गिरता, लुढ़कता और उसके टूटने के भय से सेठ के मनोभावों का चित्रण इस छन्द में देखिये –

ढड़कत आवत सौन सों लोटा एक विशाल
धड़कत है चित सेठ सुनि शब्द ध्वनि विकराल
शब्द ध्वनि विकराल, ध्वनि पुन पुन
०० ०० गुनगुन
लोटा एक विशाल सौन से आवत ढड़कत
सुनि शब्द ध्वनि विकराल, सेठ चित धक–धक धड़कत।

इस छन्द का प्रारंभिक शब्द अन्त में उसी प्रभाव से पिरोना, इसकी विशेषता है। बसंत वर्णन तो चतुरेश जी का सबसे चहेता था। इनका बसन्त तो अलग सा होगा ही –

दार हो बसन्ती कढ़ी भात हो बसन्ती
बरी हों बसन्ती और बरा बसंती हों।

यह तो ठीक पर टपरा ही बसन्ती और खपरा भी बसन्ती हों। घर के कबेलू भी बसन्ती होने की उड़ान, चतुरेश की ही हो सकती है। पद्माकर जी भले ही बाग में, परागन में, राग–अनुरागन में बसंत खोजते हों। पर चतुरेश जी की बसंत ऋतु ने तो –

लारी मे सवारी में अगारी सीट पाई है।
बेरन में ढेरन बसंत ऋतु आई है।

ग्रीष्म जैसा विषय जिस पर कम ही कलम चली है। पर गर्मी की गहराई का सटीक चित्रण चतुरेश ने किया। पसीना से लेकर सभी प्रकार की अनुभूतियां उन्होंने कहीं हैं –

बखरी में नई चैन परौ, तो ढावे पर डारी चरपैया।
कैसी गरमी पर रई दैया।। आदि

वर्षा तो कवियों का प्रिय विषय है ही और फिर चतुरेश का वर्षा वर्णन न स्वयं भीगा है वरन हिन्दी श्रोता को भिगोया है कि वे सब आज भी भीगे लगते हैं–

''पनीली सी दार और पनछीली सी बरी लगीं।
चकिया रिसानी और चूलौ सिरानौ परौ।
परौं से परे हैं फांक पावस झरी जगीं।''

१८५७ की क्रान्तिकारी छतरपुर की रानी 'झड़ कुँअरि'

– भगवानदास श्रीवास्तव

अपने देस के सुराज के लाने महारानी लक्ष्मीबाई ने अपनो राज को त्याग दयो हतो और अपने जीवन की बलि देकर बुन्देलखण्ड तथा देस के जन जन को हिम्मत दै गई। देस के सामने जीवन को बलिदान, एक पुण्य काम है, और जेई से बुन्देलखण्ड को नाव, सबसे सिखर पर है। एई सिलसिलन में जालौन की राजमाता ताई माई और छतरपुर की रानी झड़ कुंवरि को नाव कोई न भूले। अंग्रेजन ने जालौन की राजमाता ताईबाई (सागर में जन्मीं) को कैद करके और राजबंद करके मुंगेर निर्वासित कर दयो तो।

छतरपुर की रानी झड़कुंवरि पर तो खास व खास कसूर हतो तो। उनने अपने बड़े चाचा के लरका देशपत विद्रोही को अंग्रेजी राज्य के खिलाफ बगावत करने के लाने रुपयन पैसन, फौज फाटक व गोला बारूद इत्यादि की भरपूर मदद की। महारानी के अहलाकार भी देसपत की मदद करते थे। रानी ने देसपत को पैलऊ से राजगढ़ को किलादार बना दयो तो।

सन् १८५७ की बगावत में लाखो पुरुषों, महिलाओं तथा वयस्कों ने शहादत (बलिदान) को अंगीकार किया, वहीं पर देखवे में आव है के अनेक राजा, रईसों ने धन देकर, सेनानियों के परिवार का पालन पोषन (अपरोक्ष रूप से) किया, तथा धन आदि दें के स्वतन्त्रता के दूतों को मदद दई हती चाहे वे राजा रईस थे, किसान, मजदूर या भिकारी, फकीर आदि उने भी हमें याद करना चाहिये, पूजना चाहिये। दौलतराव सिंधिया की महारानी बैजाबाई, जालौन की राजमाता ताईमाई, धार की रानी जीजाबाई और छतरपुर की रानी झड़कुंअरि के नाम जब पढ़बे, सुनने में आउत हैं तो गर्व से हमाओ सर ऊँचो हो जात है। महारानी लक्ष्मीबाई तो इन सब से ऊपर है जिन्होंने राज्य, धन और अपने किलों को बलिदान कर दयो और उनने ही बुन्देलखण्ड को, इस में सर ऊपर उठा दओ।

छतरपुर की रानी को भरोसेमंद साथी हतो उसके बड़े भैया के लरका देसपत को जिन को लड़बे लाने, अंग्रेजों को भगाव के लाने, ई सभी ने फौजफाटें से, रूपइन पैसन से भोतई भोत मदद दई हती। जून १८५७ में जब अंग्रेजों को नौगांव छावनी से बलवा होने पर भाग जाना पड़ा तो शरणार्थियों की हालत में बचते बचते छतरपुर आउने पड़ो। जब वे छतरपुर आये तो छतरपुर के अधिकारियों ने रानी के इशारे पर, उनकी सहायता एवं ठहरने पर जबरदस्त रोक लगा दी, उन्हें रानी ने लुगासी का रास्ता दिखाओ। इ पे लेफ्टीनेन्ट गवर्नर ने सरकार को अपनी राय दई के छतरपुर राज्य को जब्त कर लयो जाये।

अब देखो तो हरेक विपरीत घटना पे ब्रिटिश सरकार की शक की नजर छतरपुर राज्य पर जाने लगी। भारत सरकार ने रानी पर जो भी जुलम लगायो कि छतरपुर राज्य स्वयं ही अपनी ४ अप्रैल १८०६ की संधि के अनुबंधों के खिलाफ काम कर रहो है। सितम्बर १८५४ में देसपत की हार भई ती तोऊ के करीब तीन सौ साथियों को छतरपुर रानी ने अपने यहाँ रख लओ तो, ई तरा से छतरपुर रानी, क्रान्तिकारियों मदद देत रही, इ पे ब्रिटिश सरकार कत ती छतरपुर राज्य की बदौलत कि ये एसे जे बागी अबे तक पकरे नहीं जा से। ई पे ब्रिटिश सरकार ने छतरपुर राज्य को जुम्मेवार ठेराव और कहा के रियासत को फौरन देसयत को पकर कर अंग्रेजी सरकार को सुपुर्द करें। एजेन्ट ने अपनी स्मृतियों में इस बात का भी उल्लेख किया है कि "विद्रोह प्रारंभ होने पर देसपत, छतरपुर राज्य से बहुत समय तक आर्थिक तथा अन्य प्रकार लेता रहा है, बल्कि तात्या टोपे को भी सहायता मिलती रही।''

जब तात्या टोपे चरखारी विजय (अभियान) के बाद मऊरानीपुर होता हुआ झांसी आ रहा था, उस समय तात्या टोपे का छतरपुर रानी के लिये पत्र आया था कि देसपत की फौज व अदमियों के लिये भोजन की व्यवस्था करे और घोड़े आदि जानवरों के लिये घास आदि का भी। देसपत को, छतरपुर रानी अनजरेन में गुप्तरीत से फौज–पल्टन, रुपअय पैसन से और गोला बारूद आद ले मदद देत ती जी से भारत सरकार ने २ अप्रैल १८५७ को लिखो कि – ''रानी की मित्रतापूर्ण व्यवहार को दोहराया जरूरी नहीं है और न ही उचित है कि जिन बातों पर कमिश्नर ने धारणा बना ली है उसके तसदीक की जावे। यह ऐसा मानता है कि जिससे लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सोचता है कि देसपत और उसके दल में जिन जिलों को अपने आक्रमणों से अशान्त और बरबाद किया है। और जहाँ जहाँ उन्होंने अपने ठहरने का मुकाम बनाया ह। उनके बारे में स्थानीय अधिकारियों की रिपोर्ट ही अंतिम मानी जावे और यह भी देखा जावे कि छतरपुर राज्य तथा गर्रोली जागीर के प्रति भी अन्याय न हो पावे। इस प्रकार छतरपुर राज्य ने अपने १८०६ में अनुबंध की धाराओं को तोड़ा है जिसके तहत अंग्रेज सरकार के शत्रुओं को पनाह देना वर्जित है।''

'कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट में यह भी बताया है कि छतरपुर राज्य से देसपत तथा उसके गिरोह को सक्रिय सहायता, गोलाबारूद आदि भी दिया जाता है। यही नहीं, जहाँ कहीं देसपत के विरुद्ध अभियान छोड़े गये, छतरपुर राज्य का अलग रहना या टालने आदि का ब्रिटिश सरकार, के अहसानों के बिलकुल विपरीत है।

ई पे, भारत सरकार ने २ अप्रैल १८५९ को लिखो के 'रानी की अमित्रतापूर्ण कारनामे को दुहराना जरूरी नहीं है। और न अभी उचित ही है कि जिन बातों पर कमिश्नर ने धारणा बना ली है उसकी तसदीक की जावे। यह ऐसा मामला है कि लेफ्टीनेन्ट गवरनर सोंचते हैं कि देसपत और उसके दल ने जिन जिन गांवों को अपने आक्रमण से अशान्त और बरबाद किया है और जहाँ जहाँ ठहरने का अपना मुकाम बनाया उनके बारे में स्थानीय अधिकरियों की रिपोर्ट की अंतिम मानी जावे।'' लुगासी जागीर के जिन ६ गांवों को देसपत ने लूटो हतो अंग्रेजी सरकार का हुकुम हतो कि इनसे करतूतों पर, छतरपुर राज्य से ही हरजाना वसूला जावे, और छतरपुर को रीजेन्ट रानी को चुकता करने परो।

भारत सरकार ने रानी पर यह भी इल्जाम लगाया है कि छतरपुर राज्य स्वयं ही अपनी संधि, ४ अप्रैल १८०६ के अनुबंधों के विपरीत कार्य कर रही है जिसके तहत अंग्रेजी सरकार के शत्रुओं को पनाह देना, मदद देना वर्जित है।

– एच–२५, बघीरा अपार्टमेन्ट्स
अरेरा कॉलोनी, भोपाल

बुन्देली उत्सव–२००५ का प्रतिवेदन

– योगेन्द्र प्रताप सिंह 'गुड्डू राजा'

बुन्देली कला, संस्कृति व खेलों को देश के कोने–कोने तक पहुँचाने हेतु प्रति वर्ष बसारी में बुन्देली उत्सव का आयोजन होता है। विगत वर्ष १७ फरवरी २००५ दिन गुरुवार को नौवें बुन्देली उत्सव का उद्घाटन पर्यटक ग्राम बसारी (बुन्देलखण्ड) के सजे धजे स्टेडियम में मध्यप्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री बलराम जाखड़ ने किया। इस कार्यक्रम में मुख्य रूप में चंदला विधायक श्री विजय बहादुर सिंह बुन्देला, डी.आई.जी. एम.पी. द्विवेदी, छतरपुर रेन्ज, कलैक्टर छतरपुर अजातशत्रु श्रीवास्तव, पुलिस अधीक्षक, छतरपुर उपस्थित थे।

उद्घाटन समारोह को बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने एक विशेष गरिमा प्रदान की। सन्मति विद्या मन्दिर तथा मरियामाता कॉन्वेन्ट स्कूल, छतरपुर के बैण्ड ने राष्ट्रीय धुनें बजायीं, वहीं ड्रीमलैण्ड स्कूल के बच्चों के समूह नृत्य गायन में ''हम हैं भारत के लाल'' कहिओ विदेशियों से'' और सन्मति विद्या मन्दिर के बच्चों का ''उठो बतन के वीर सपूतों'' गीत पर समूह नृत्य तथा डिलाइट इंग्लिस स्कूल के बच्चों ने भी मनमोहक प्रस्तुतियां दी। इसके साथ ही पर्यटक ग्राम बसारी के बाल कलाकारों द्वारा दिवारी नृत्य एवं ढिमरयाई नृत्य की प्रस्तुति से उद्घाटन समारोह को गरिमा प्रदान की।

उद्घाटन समारोह के उपरांत कुश्ती (दंगल) प्रतियोगिता प्रारंभ हुई जिसमें म.प्र., राजस्थान, उ.प्र., बिहार, पंजाब, हरियाणा के प्रसिद्ध पुरुष एवं महिला पहलवानों ने अखाड़े में दांव आजमाए। दंगल प्रतियेगिता का शुभारम्भ महामहिम राज्यपाल डॉ. बलराम जाखड़ ने पहलवानों का हाथ मिलाकर किया। महामहिम डॉ. बलराम जाखड़ जी के द्वारा ही राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान बुन्देली साहित्यकार कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) निवासी पं. गुणसागर सत्यार्थी को प्रदत्त किया गया जिसमें सम्मानपत्र, शॉल, श्रीफल, तथा ११००/– रुपये की नकद राशि प्रदत्त की गई।

नौवें बुन्देली उत्सव के दूसरे दिन १८ फरवरी २००५ अश्व नृत्य प्रतियोगिता हुई जिसमें उ०प्र० तथा म०प्र० पचास प्रतियोगियों ने भाग लिया। अश्वनृत्य प्रतियोगिता के मुख्य अतिथि कृषि उपज मण्डी, छतरपुर के अध्यक्ष डीलमणि सिंह रहे। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान रूप सिंह यादव, ग्राम सुरा, ने प्राप्त किया। मुल्ली पाल ग्राम गंज को दूसरा तथा प्रेम नारायण अवस्थी ग्राम नैंगुवां को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। विजेताओं को मुख्य अतिथि द्वारा पुरस्कृत किया गया। रोमांच और मनोरंजन से भरी इस प्रतियोगिता का दर्शकों ने खूब लुफ्त उठाया। अश्वनृत्य प्रतियोगिता के पश्चात् जोधपुर (राजस्थान) के कठपुतली नृत्य की विशेष प्रस्तुति हुई जिसे दर्शकों ने खूब सराहा।

नौवें बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन १९ फरवरी बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें बुन्देलखण्ड के जहाँ एक ओर प्रचलित व्यंजन बनाये गये वहीं कुछ ऐसे व्यंजन भी बनाये गये जो अब लुप्त होते जा रहे हैं। इस स्वादिष्ट प्रतियोगता में एक दर्जन प्रतियोगियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता के मुख्य अतिथि अजय सिंह ''राहुल भैया'' पूर्व मंत्री म.प्र. शासन रहे। अजय सिंह ने प्रतियोगियों के स्टॉल में जाकर विशुद्ध बुन्देली व्यंजनों का स्वाद चखा। प्रतियोगिता के निर्णायकों ने विजेता का चयन व्यंजन के स्वाद, सजावट, साफ–सफाई तथा प्रस्तुतीकरण के आध ार पर किया। जिसमें प्रथम स्थान प्रियंका व रिंकी अग्रवाल को श्वेता अग्रवाल को द्वितीय तथा सोनिया गुप्ता को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ।

नवमें बुन्देली उत्सव २००५ की तीसरी शाम १९ फरवरी २००५ बच्चों के बुन्देली आधारित कार्यक्रम एवं बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। स्कूलों, बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम में २२ कार्यक्रम प्रतियोगिता के रूप में हुए जिसमें छतरपुर, खजुराहो, नौगांव जैसे शहरों के बच्चों के साथ–साथ, गंज, बसारी, बरेठी, आदि ग्रामों के बाल कलाकारों ने भी भाग लिया। यह कार्यक्रम डॉ. गोविन्द सिंह, विधायक व पूर्व मंत्री म. प्र. शासन के मुख्य आतिथ्य में हुआ। समूह नृत्य में बक्सवाहा के स्वामी प्रणवानन्द स्कूल के बच्चों के प्रथम तथा ग्राम बसारी के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के दिवारी नृत्य को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। एकल नृत्य की प्रस्तुति में कुं. आकांक्षा खरे ने प्रथम तथा कपिल मिश्रा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। समूह गायन की प्रतियोगिता राजा बलवन्त सिंह हाईस्कूल राजनगर ने प्रथम तथा शासकीय कन्या शाला बसारी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ।

नवमें बुन्देली–उत्सव की तीसरी शाम का विशेष आकर्षण रहा बुन्देली पोषाक प्रतियोगिता जिसमें सीनियर/जूनियर वर्ग की प्रतियोगिताऐं हुईं। सीनियर वर्ग में जुझार सिंह को प्रथम तथा द्वितीय पुरुस्कार बैजनाथ नामदेव को प्रदान किया गया जूनियर वर्ग में धीरज गुप्ता ने बाजी मारी। अतिथियों ने विजेताओं को पुरस्कृत किया।

नौवें बुन्देली उत्सव २००५ के चौथे दिन २० फरवरी २००५ राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारे बैलगाड़ी दौड़ का आयोजन डीलमणि सिंह 'बब्बू राजा' अध्यक्ष, कृषि उपज मण्डी समिति, छतरपुर की उपस्थिति तथा मुख्य आतिथ्य में हुआ। इस प्रतियोगिता में कुल २५ प्रतियोगियों ने भाग लिया। बेहद रोमांचक मुकाबलें में सुरेश यादव ग्राम मझगुवां ने बाजी मारी जबकि दूसरा स्थान सीताशरण ग्राम नदया, तथा तीसरे स्थान पर परा निवासी घन्सू पटेल रहे। मुख्य अतिथि ने विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये। इस प्रतियोगिता को विदेशी सैलानियों ने भी देखा।

नवमें बुन्देली उत्सव २००५ की चौथी शाम २० फरवरी २००५ बुन्देली नाटकों और कछयाई तथा चमरयाई बैठक की धूम रही। कार्यक्रम निवाड़ी क्षेत्र के विधायक बृजेन्द्र सिंह राठौर के मुख्य आतिथ्य तथा कार्यक्रमं की अध्यक्षता पन्ना रियासत के महाराजा लोकेन्द्र सिंह ने की। चौथी शाम की प्रथम प्रस्तुति में नाटक का मंचन किया गया जिसमें प्रथम स्थान एकता लोक कला मण्डल को ''अपनों गांव भलौ'' के लिये तथा द्वितीय स्थान छतरपुर के भारतीय

जन नाट्य संस्थान 'इप्टा' के ''घोर घोर रानी इत्तन इत्तन पानी'' के मंचन को दिया गया। इसी क्रम में तीसरा स्थान तरुण जागृति मंच, छतरपुर के ''आखिर क्यों?'' के मंचन के लिये दिया गया। इन नाटकों के मंचन को उपस्थित दर्शकों ने खूब सराहा व उत्साहवर्धन किया।

इसी तरह कछयाई गायन में भवानीपुरा बसारी के कलाकारों को प्रथम तथा नारायण सिंह कुशवाहा एण्ड पार्टी दतिया को द्वितीय पुरस्कार दिया गया। चमरयाई बैठक प्रतियोगिता में श्यामरीपुरवा के लक्ष्मन अहिरवार व साथियों को द्वितीय तथा कर्री के चुन्नाई अहिरवार को तृतीय पुरस्कार दिया गया। कार्यक्रम देर रात तक हजारों दर्शकों तथा गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में चलता रहा।

नवमें बुन्देली उत्सव २००५ की पांचवी शाम आधे दर्जन से अधिक गायन तथा नृत्य की आकर्षक प्रस्तुतियां हुई। जिसमें दिवारी नृत्य, दलदल घोड़ी नृत्य, राबला, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, गारी, बनरे तथा सैर प्रतियोगिताओं में प्रतियोगियों अपनी कला का प्रदर्शन किया। आज के मुख्य अतिथि यादवेन्द्र सिंह 'जग्गू राजा' पूर्व मंत्री म.प्र. शासन रहे। बनरा गायन में बजरंग मण्डल बसारी को प्रथम तथा बसारी की ही रेखा अहिरवार को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। लमटेरा में रवीन्द्र लोक कला अकादमी, छतरपुर के कलाकारों को प्रथम तथा भवानीपुरा के भागचन्द व साथियों को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। दिवारी नृत्य में दिवारी पार्टी बसारी ने बाजी मारी तथा दूसरा स्थान ग्राम पारवा की दिवारी पार्टी को प्रापत हुआ। दलदल घोड़ी नृत्य में बसारी के रमेश रजक तथा कर्री के गद्दू अहिरवार को क्रमशः प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। उत्सव की पांचवी शाम का एक और आकर्षण उरई म.प्र. से मिट्ठूलाल की आतिशबाजी रही जिससे पर्यटक ग्राम बसारी का स्टेडियम आधे घंटे तक आतिशबाजी से रोशन रहा। उपस्थित जन समूह ने आतिशबाजी का भरपूर आनंद लिया। बुन्देलखण्ड के लोकगायन तथा लोकनृत्य के अतिरिक्त उत्सव की पांचवी शाम का प्रमुख आकर्षण जयपुर (राजस्थान) से आये अतिथि कलाकारों ने घूमर् नृत्य तथा चढ़ी नृत्य की विशेष प्रस्तुतियां देकर उपस्थित दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया इसके अतिरिक्त दक्षिण मध्यप्रदेश सांस्कृतिक केन्द्र, नागपुर के कलाकारों द्वारा अखाड़ा नृत्य की भी विशेष प्रस्तुति हुई। बकस्वाहा के रामराजा व्यायाम शाला ने भी अपनी व्यायाम शैली की आकर्षक व मनोरंजक प्रस्तुति देकर दर्शकों का ध्यान अपनी ओर खींचा।

नवमें बुन्देली उत्सव की छठवीं शाम अर्थात् २२ फरवरी २००५ को लोक विधाओं की प्रस्तुतियों से गूंजता रहा ग्राम बसारी का कलामंच। आज की प्रतियोगिताओं में ढिमरयाई, बहुरूपिया, कांडरा, कार्तिक गीत, गोट गायन, सोहरे, दादरे, बिलवारी, फाग तथा आल्हा गायन के उत्कृष्ट प्रतियोगियों ने अपनी कला से कला मंच को पूरी रात रोशन रखा। आज की प्रतियोगिताएँ देश के प्रसिद्ध कवि, गीतकार और साहित्यकार, श्री विट्ठल भाई पटेल, पूर्व सांसद सत्यव्रत चतुर्वेदी और पूर्व मंत्री म.प्र. शासन मानवेन्द्र सिंह 'भंवर राजा' की उपस्थिति में सम्पन्न हुई।

आज हुई प्रतियोगिताओं के निर्णायकों ने ढिमरयाई गायन जिसमें कई प्रस्तुतियों के साथ कड़ी प्रतियोगिता रही जिसमें प्रथम स्थान शाहगढ़ के पूरनलाल को तथा इसी विधा में द्वितीय स्थान सपना रंग मण्डल, बसारी को दिया गया। सोहरे गायन में भी कई प्रस्तुतियां हुई। जिसमें हटवाहा की मीरा देवी एवं साथियों को पहला स्थान दिया गया। दादरे गायन में किशोर कला मण्डल, गुंदारा की पार्टी को उनकी अद्भुत प्रस्तुति के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया। कार्तिक गीत गायन में रंजना एवं साथियों, झांसी को प्रथम तथा रिछाई के गिरधारी लाल पटेल को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह फाग गायन में बसारी की अहिरवार समाज पार्टी तथा बसारी के ही कालीचरण अनुरागी को क्रमशः प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। आल्हा गायन में खन्ना निवासी भोला यादव ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी तरह गोट गायन में दतिया के छोटे लाल कुशवाहा को उनकी अनोखी प्रस्तुति के लिये प्रथम तथा डौरिया के किशन लाल एवं साथियों को द्वितीय पुरस्कार दिया गया। इसी तरह बहुरूपिया, कांडरा तथा बिलवारी की प्रस्तुतियों ने हजारों दर्शकों का मन मोह लिया। कार्यक्रम के अन्त में अतिथियों द्वारा विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' ने उरई जिला जालौन के डॉ. हरिमोहन पुरवार को राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान प्रदान किया।

नवमें बुन्देली उत्सव २००५ की अंतिम शाम अर्थात २३ फरवरी २००५/समापन की शाम पूरी रात राई तथ बधइया नृत्य के रस में डूबा रहा अपार जन समुदाय। समापन के अवसर पर मुख्य अतिथि दतिया रियासत के महाराजा एवं विधायक कुं. घनश्याम सिंह रहे तथा वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की तथा समापन के अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में नेहरू युवा केन्द्र ग्वालियर के क्षेत्रीय समन्वयक श्री बी.एस. खोसा उपस्थित थे।

समापन समारोह में सर्वप्रथम उत्सव में प्रतिवर्ष इतिहास के क्षेत्र में कार्य करने वालों को बुन्देली विकास संस्थान की ओर से दिया जाने वाला दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान भोपाल निवासी श्री भगवान दास श्रीवास्तव को प्रदत्त किया गया। सम्मान में ग्यारह सौ रुपये की राशि, सम्मान पत्र, शॉल, तथा श्रीफल अतिथियों द्वारा प्रदान किया गया।

बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाली स्मारिका 'बुन्देली बसन्त' का भी विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। बुन्देली उत्सव की सातवीं शाम की शुरुआत राई तथा बधइया नृत्य की प्रतियोगिताओं से हुई। राई नृत्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान दीन संगीत कला मण्डल, ढाना सागर, तथा दूसरे स्थान पर आदिवासी राई पार्टी, बसारी रही। इसी तरह बधाई नृत्य में पहला स्थान नवल प्रयास कला केन्द्र, सागर को तथा दूसरा स्थान सपना रंग मण्डल, बसारी के कलाकारों को मिला। इस तरह सप्ताह भर चले इस कला संस्कृति के महाकुंभ बुन्देली उत्सव का शहरी, ग्रामीण और दूर–दूर से पधारे गणमान्य नागरिक उपस्थित हुए। इस उत्सव में प्रशासनिक अधिकारियों, साहित्यकारों तथा राजनीतिज्ञों ने नवमें बुन्देली उत्सव २००५ में पधारकर आयोजन समिति का मार्गदर्शन किया। कलाकारों के उत्कृष्ट प्रदर्शन से तथा कार्यकर्ताओं का अपार परिश्रम पदाधिकारियों की दिनरात की मेहनत और हजारों लोगों का सहयोग ही इस आयोजन की सफलता का आधार है।

– राजमहल के पीछे, छतरपुर

चिट्ठी मिली अपुन की -

बुन्देली बसन्त प्राप्त हुआ। पढ़ने की शक्ति यद्यपि कम है फिर भी मैंने पूरा पढ़ लिया। बुन्देली बसन्त परिवार को कोटिशः बधाई। आपके पास अनेक उद्‌भट विद्वानों की समीक्षाएं पहुंची होंगी किन्तु मुझे जो इसे पढ़के लगा, उसे कविता में प्रस्तुत कर रहा हूँ-

लेख कवितन कछु कछु छाने छांट ज्ञान छन्ना से
चुअत चुआ टपका रस ई में, है पन्ना पन्ना से
औझ बड़ी कै फौज कहानी सांचउं लगी सुहानी
नई बइयर खूंखार जनावर रीछ, हार ना मानी
औझइ से अंग्रेज सिपाइन से उरझी 'झलकारी'
तौलीं निकर गई वाई थी कोसन दूर अगारी
काइरन को है सीख सुभट्टन मर्दन को है तानो
लक्ष्मीबाई की औझइ थी गोरा दल थर्रानो
औझइ से 'बाँकर' गोरा की फौज भगी लिड़छेरा
कांप रहो था उन गोरन को पड़ो 'ओरछा' डेरा
बुन्देली इतिहास उघारो ई तो हतो जरूरी
दानवीर, बलवीर, धीर, भये कर पुनीत गये धूरी
मुगल फौज नृप छत्रसाल से भगी मानकेहारी
जब लाचारी भई बुलाके 'बाजी' बाजी मारी
वे लाला 'हरदौल' पूज्य भये क्षेत्र बुन्देल समूचे
नुतें पैलतें, वे व्याहन में भरंत लखन सम ऊंचे
'अवध' धाम से 'रामलला' को गणेशकुंवरि ले आई
भयो ओरछा तीर्थ तवइ से, अवध धाम की नाईं
'तुलसी', 'केशव', 'देव', बिहारी, 'व्यास' इसी थल जन्में
तुलसी तो जगपूज्य हो गये जौलौं मानुष जग में
पढ़ें कानियां मुखड़ो लेखक, हैं आलमपुर वारे
'बुन्देली' में जानकर है, सांसउ क्षेत्र हमारे
'गुलगुचे' में इक्यावन रचना बुंदेली में छाईं
उनमें सुनी कितेकउ सबने, मंचन आन सुनाई
सुकुमारिन की बात पुरानी ई में पढ़ी उघारीं
जुगति बुंदेली कवियन की रई रये ऊंचे श्रृंगारी
'बृज' में छोरा छोरी इतमें बिन्नू लला प्रकारें
विमल प्रेम ऐसी वानी पै कोटि नुछावर डारें
युद्ध देश यह रहो, वीरवर भये यहां पे कांके
रखी आवस बुंदेलन की भले करे हों फांके
राजा न्यायी रहे, जबहिं लरिका देखो अन्यायी
दही डार कूकर झुलकारे, लरिकादेह चिथाई
बुंदेली सभ्यता संस्कृत ई में अमित उड़ेरी
सीखें मिलें कानियां पढ़कें सरल सहज बहुतेरी
सम्पादन की कला श्रेष्ठ है सुन्दर श्रेष्ठ छपाई
'बुन्देली बसंत' को समझो, है पुराण पर्यायी

- हरीबाबू गंधी 'सरल', लहार (भिण्ड)

बुन्देली बसन्त पत्रिका मिली, बुन्देली से जुड़ा साहित्य और बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत को सहेजने का स्तुत्य प्रयास है। यह प्रयास अनूठा और अनुकरणीय है।

- वीरेन्द्र सिंह चन्देल
चन्देल भवन, आलमपुर (भिण्ड)

बुन्देली बसन्त का प्रकाशन बुन्देली संस्थान का एक अच्छा सांस्कृतिक प्रयास है। बुन्देलखण्ड के साहित्य व संस्कृति को लेकर कुछ अकादमिक शोधकार्य हो रहा है। यह जानकारी इस पत्रिका से मिली।

- अनिल सिन्हा
३/३, पत्रकारपुरम्, गोमतीनगर, लखनऊ(उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००५ देखी। आकर्षक लगी। इसके पहले डॉ. कान्तीकुमार जैन के सम्पादन में निकलने वाली ईसुरी के कुछ अंक देखे थे। उसके बाद यह प्रयास आपका सराहनीय है।

- नन्दलाल सिंह
दमोह (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त हाथ लगा। कौतुहल, जिज्ञासा, विस्मय, आश्चर्य और विस्फारित नेत्रों से पत्रिका (ग्रंथ) को निहारते रहने का विरल अवसर ... आपको बधाई।

- डॉ. सत्येन्द्र शर्मा
श्यामायन, सहकार मार्ग, सतना (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त का अंक मिला। आभारी हूँ। मुखपृष्ठ पर प्रकाशित चित्र प्रभावी है। मेरा साधुवाद।

- उदय शंकर दुबे
करेरुआ, मिर्जापुर (उ.प्र.)

बुन्देली उत्सव २००५ की स्मारिका बुन्देली बसन्त मिली। इसको देखकर लगता है कि बुन्देली विकास संस्थान बसारी समर्पण भाव से निस्वार्थ सेवा बुन्देलखण्ड की कर रहा है।

- नरेश अवस्थी
सागर नाका, दमोह (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००५ अंक मिला यह अंक सर्वांग दृष्टि से उत्कृष्ट है। यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र के शोधार्थियों के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में उपयोगी होगा, इतनी महत्वपूर्ण और शोधपरक सामग्री आपने इस अंक में संकलित कर दी है। इतिहास, पुरातत्व, साहित्य समाज, संस्कृति, अर्थशास्त्र, राजनीति, शिक्षा आदि सभी अंगों पर

विद्वानों के गद्य-पद्यमय विचार अत्यन्त श्रेयस्कर हैं।

- डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव
अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त का अंक प्राप्त हुआ, एतदर्थ आप एवं समिति के प्रति आभार आपने मेरे जैसे अकिंचन के प्रति अनुराग भाव प्रकट किया, यह मुझे अप्रत्याशित लगा। आपके श्रेष्ठ सम्पादन कौशल के प्रति मैं श्रद्धावनत् हूँ। अंक में शोध-परक, प्रामाणिक और साहित्यिक रचनाओं का अपूर्व संकलन है। जो संग्रहणीय है। पूरे अंक में बुन्देली रज की महक, बेतवा की कलकल तथा बुन्देले वीरों की लोकहित भावना का उदात्त स्वर सुनाई देता है।

- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी
शास. महाविद्यालय, राघोगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त पूरी पढ़ गया। मैं इसको पढ़कर महसूस करता हूँ कि इसमें लोककथाएं व अन्य सामग्री स्तरीय हैं। पत्रिका का प्रकाशन होता रहे और बुन्देली जनजीवन से लोग परिचित होते रहें। पत्रिका प्रकाशन हेतु बधाई।

- डॉ. जगमल सिंह
२/४८, प्रताप नगर, ब्यावर (राजस्थान)

बुन्देली बसन्त प्राप्त हुयी। इसकी रचनात्मकता देखकर मैं प्रसन्न हूँ।

- रामेश्वर प्रसाद गुप्ता 'इन्दु'
बड़ागांव, झांसी (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त प्राप्त हुआ। सम्पादकीय प्रभावित कर गयी। आपकी लेखन शैली लोक के समग्र चिन्तन को समेटे हुए है और वर्तमान पर भी पैनी नजर रखती है। बुन्देली बसन्त नई सजधज के साथ आया है।

- गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त
रामपुर, जबलपुर (म.प्र.)

नई साज सज्जा के साथ बुन्देली बसन्त की लेखकीय प्रति प्राप्त हुयी। एतदर्थ धन्यवाद। बुन्देलखण्ड की भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व के विभिन्न स्वरूपों के सहज दर्शन बुन्देली बसन्त में हो गये। बुन्देली काव्य और गद्य भी सशक्त है।

- ब्रजलता मिश्रा
नानकगंज, सीपरी, झांसी(उ.प्र.)

BUNDELI VIKAS SANSTHAN, CHHATARPUR [M.P.]

INCOME & EXPENDITURE ACCOUNT FOR THE YEAR ENDED
ON 31ST MARCH 2005

EXPENDITURE	AMOUNT	INCOME		AMOUNT
Salary	2,400.00	By	Membership Fee	4,680.00
Stationery & Postage	24,790.00	By	Smarika Advertisement	25,000.00
photocopy Expenses	5,000.00	By	Anudan Received	12,68,000.00
Bank Commission	100.00	By	Bank Interest Received	30,910.00
Travelling Expenses	1,514.00	By	Excess of Expenditure over Income	1,07,717.00
Audit Fee	3,500.00			
Bundeli Utsav Exp.	13,27,540.00			
Interest to Bank	14,019.00			
Plantation Exp.	10,246.00			
Agriculture Training & Seed	14,570.00			
Kavi Sammelan Exp.	24,500.00			
Chhatrasal Mukarba (Repairs)	6,500.00			
Sundry Expenses	440.00			
Depreciation on Dead Stock	1,188.00			
TOTAL:	**14,36,307.00**		**TOTAL:**	**14,36,307.00**

PRESIDENT **SECRETARY**

For- Arvind K. Gupta & Co.
Chartered Accountants
(Arvind Gupta)
Proprietor

Place : CHHATARPUR
Date : 24-11-05

बुन्देली उत्सव २००६ हेतु समितियाँ

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति
१. श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला
२. श्री भारत कृष्ण देव सिंह बुन्देला
३. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
४. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला

स्वागत व्यवस्था समिति
१. श्री रामसेवक अग्रवाल
२. श्री संतोष अग्रवाल
३. श्री केदार नाथ अग्रवाल
४. डॉ. अवध किशोर अवस्थी
५. डॉ. मुराद अली
६. डॉ. जगदीश अरजरिया
७. श्री वृन्दावन रैकवार/परमा रैकवार
८. श्री सिब्बा रैकवार
९. श्री जगदीश रैकवार
१०.श्री शिब्बू रैकवार (पुन्नू)
११.श्री कल्लू रैकवार
१२.श्री रामस्वरूप रैकवार (दसुवा)

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वित० समिति
१. श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पंगू) प्रभारी
२. श्री अखिलेश्वर चौबे
३. श्री धर्मेन्द्र खरे
४. श्री संजय खरे

मंच सज्जा एवं बैठक व्यवस्था समिति
१. श्री शोभालाल गुप्ता
२. श्री अच्छेलाल यादव
३. श्री बारे लाल पाल
४. श्री मुल्ली यादव ५.श्री लल्ली पाल
६. श्री हीरा पाल ७. श्री मन्नू पाल
८. श्री बलराम अहिरवार
९. श्री पंचम लाल विश्वकर्मा
१०.श्री सुनील वर्मा

गेट व्यवस्था एवं झंडा बैनर समिति
१. श्री महादेव यादव, प्रभारी
२. श्री रामस्वरूप रावत
३. श्री जब्बार खान
४. श्री मुल्ली अहिरवार
५. श्री आशाराम अहिरवार
६. श्री पप्पू अहिरवार
७. श्री भगवान दास/कमतू अहिरवार
८. श्री हीरालाल अहिरवार/दुल्ला
९. श्री दीपेन्द्र अहिवार
१०.श्री देवराम अहिरवार

चाय नाश्ता समिति एवं जल व्यवस्था
१. श्री सुरेश अग्रवाल 'पप्पू', प्रभारी
२. श्री सुधीर अग्रवाल
३. श्री राजेश रैकवार
४. श्री संतोष रैकवार५. श्री सुरेन्द्र रैकवार
६. श्री विन्द्रावन रैकवार/महादेव रैकवार
७. श्री सिब्बा रैकवार
८. श्री रमेश रैकवार
९. श्री राकेश रैकवार
१०.श्री रामस्वरूप/खड़ियां रैकवार

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति
१. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
२. श्री संजय सिंह ३. श्री मन्नू यादव
४. श्री भज्जू यादव ५. श्री खुमान रजक
६. श्री मुकेश साहू

स्टेडियम कार्यालय प्रभारी
१. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला
२. श्री नवल किशोर अग्रवाल
३. श्री वृन्दावन राजपूत 'घस्सू'
४. श्री ग्याप्रसाद साहू

बैठक व्यवस्था स्टेडियम में
१. श्री सिराज खान
२. श्री कन्हैया लाल यादव
३. श्री लखन लाल यादव
४. श्री भागीरथ यादव
५. श्री मथुरा यादव
६. श्री जस्सू सोनी
७. श्री स्वामीदीन कुशवाहा
८. श्री भागचन्द कुशवाहा
९. श्री विश्वनाथ कुशवाहा
१०.श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
११.श्री राकेश अहिरवार
१२.खन्जू कुशवाहा १३.श्री छन्नू हरिजन

अखाड़ा व्यवस्था समिति
१. श्री मातादीन रैकवार
२. श्री रामस्वरूप पटेल
३. श्री शेराब खान
४. श्री अजय बाल्मीक
५. श्री कमलेश कोरी
६. श्री चिरोंजी लाल कोंदर
७. श्री महादेव कोंदर

स्टेडियम सुरक्षा व्यवस्था समिति
१. श्री हीरालाल पाल
२. श्री रामू अहिरवार 'चौकीदार'
३. श्री मातादीन अहिरवार
४. श्री द्वारका अहिरवार
५. श्री दुर्झी कोंदर
६. श्री अमरा अहिरवार

मेला व्यवस्था समिति
१. श्री बाबूलाल खरे, प्रभारी
२. श्री कैलाश अग्रवाल
३. श्री केदार नाथ अग्रवाल
४. श्री सरजू यादव ५. श्री अनारी राजपूत
६. श्री पुन्ना अहिरवार
७. श्री छोटा अहिरवार
८. श्री दरवारी अहिरवार

५. श्री रमेश अहिरवार (हरजुआ)

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के तीन कमरों में)
१. श्री लखन यादव, प्रभारी
२. श्री भागवत राजपूत
३. श्री राजू रैकवार
४. श्री गोपाल रैकवार
५. श्री मुकेश विश्वकर्मा

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के अन्य तीन कमरों में)
१. श्री युनिस खान (इद्दू खाँ), प्रभारी
२. श्री परमानन्द यादव
३. श्री कलन रैकवार
४. श्री सुखलाल अहिरवार
५. श्री देशराज अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्रमांक १)
१. श्री प्रभूदयाल यादव 'प्रभारी'
२. श्री रतन यादव
३. श्री हरिश्चन्द्र कोरी

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्रमांक २)
१. श्री राजेश अग्रवाल, प्रभारी
२. श्री कल्लू रैकवार
३. श्री छिद्दी अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(नया कार्यालय भवन गेट नं. २, स्टेडियम के सामने)
१. श्री राजू कुशवाहा
२. श्री विजय रैकवार
३. श्री भगवान दास अहिरवार

टेन्ट व्यवस्था समिति
१. श्री राममिलन रैकवार, प्रभारी
२. श्री सुरेश अहिरवार
३. श्री गज्जू अहिरवार

पंजीयन समिति
१. श्री राममूर्ति नामदेव
२. श्री कृपाराम पटेल

चित्रकार समिति
१. श्री प्रेमकिशोर खरे
२. श्री धीरज सिंह परमार
३. श्री सुनील बाल्मीकि
४. श्री रमेश अहिरवार

लाइट व्यवस्था समिति
१. श्री अजय रजक
२. श्री बराती रजक
३. श्री बिहारी कोरी
४. श्री परमलाल कौंदर
५. श्री रम्मू रैकवार

...य जवान   जय किसान

बुन्देली लोक संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन हेतु आयोजित
दसवें "बुन्देली उत्सव-2006" के आयोजन पर हार्दिक शुभकामनाएं

कृषि उपजमंडी समिति, छतरपुर

कृषि उपजमंडी में किसानों के लिए उपलब्ध सुविधाएं :

1. मंडी प्रांगण में छायादार दो टीन सेड।
2. मंडी प्रांगण में पीने का स्वच्छ पानी।
3. मंडी प्रांगण में सुलभ कॉम्पलेक्स।
4. मंडी प्रांगण में सीसी व डब्ल्यूबीएम रोड।

कृषि उपजमंडी में भविष्य की कार्य योजनाएं :

1. कृषकों के लिए कोल्ड स्टोरेज का निर्माण।
2. इलैक्ट्रॉनिक्स धर्मकांटा की व्यवस्था।
3. व्यापारियों के लिए शॉप के साथ गोदाम की व्यवस्था।
4. कृषक विश्राम गृह की व्यवस्था।
5. कृषक उपज रखने हेतु 500 मी.टन गोदाम।
6. मंडी प्रांगण में नकद विक्रय प्रारंभ कराना ।
7. प्रांगण में विद्युत की व्यवस्था।



किसान भाइयों को मिले उपज का सही मूल्य,
उन्नत हो पैदावार और खुशहाल हो किसान यही कामना है।

डीलमणि सिंह (बब्बूराजा)
अध्यक्ष
कृषि उपजमंडी समिति, छतरपुर



कृषि उपजमंडी का विकास हो, मंडी में ही मिले किसानों को,
साधन और सुविधाएं यही हमारा संकल्प है॥

महेश खरे प्रसाद खरे
सचिव
कृषि उपजमंडी समिति, छतरपुर